"आदमी कभी अकेला नहीं होता, उसकी एक जिन्दगी के साथ न जाने कितनी जिन्दगियों का ताना बाना बुना होता है, उलझा होता है और उसमें से एक तार भी यदि खिंचे तो उसका प्रभाव एक घर पर, एक कुटुम्ब पर और सारे समाज पर पड़ता है।"

—इसी उपन्यास से

अधूरे आधार
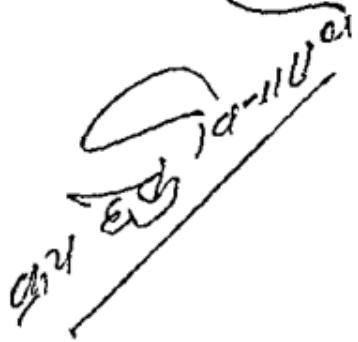
ADHOORE AADHAR

(NOVEL)

सस्करण प्रथम १९८३

प्रकाशक	मुद्रक
स्मृति प्रकाशन	जय हनुमान प्रिंटिंग प्रेस
१२४, शहरारा बाग, इलाहाबाद	1-C बाई का बाग, इलाहाबाद

मूल्य

सजिल्द बीस रुपये मात्र

अजिल्द बीस रुपये मात्र

"स्त्री कितनी ही शक्तिवान और सामर्थ्यवान क्यों न हो, पुरुष का आधार उसकी नियति है।"

यह उपन्यास ऐसी ही एक स्त्री की करुण गाथा है जो स्वयं सामर्थ्यवान होते हुए भी पुरुष के सम्बल के खोज में भी भटकती रही किन्तु अधूरे पुरुषत्व और टूटे हुए कन्धों के अतिरिक्त उसे कुछ न मिला। प्रेम, कर्त्तव्य ममता और विवशता के मध्य संघर्ष करते हुए एक साथ कई जिन्दगियाँ जीने वाली रमा की अपनी कोई जिन्दगी नहीं थी।

तरल संवेदनीयता से भीगा हुआ यह उपन्यास आपको मार्मिक ही नहीं लगेगा, वरन् नारी के सामाजिक अस्तित्व के कई प्रश्न आपके मस्तिष्क में छोड़ जाएगा।

—प्रकाशक

मूल लेखक
डॉ. पिनाकिन दवे
अनु. डॉ. नवनीत गोस्वामी
अधूरे आधार

एक

ऊषा की प्रथम किरण के साथ ही अपने नये घर मे कुभ-स्थापन करना है। घर नया और पति भी नया।

मन में अनेक विचार उफनते हैं। जब कोई समीप नही होता तब विचार मन पर छा जाते हैं। हर विचार के साथ एक चित्र जुडा होता है।

चालीस वर्ष की स्त्री के लिए नया घर कैसा दु खदायी होता है! और मुझे तो कुछ भी नया पसद नही क्योकि विगत की माया छूटती ही नहीं। बचपन मे खडी पट्टी का फ्रॉक मुझे इतना प्रिय था कि फट जाने पर भी मैं उसे पहनती ही रही। चिढकर मेरी मा ने उसे छिपा दिया था।

छ माह बाद आश्रम छोड कर एक घर मे जा बसना है, श्रीमान् सतीश कुमार के साथ। सतीश कुमार को मैं चार-एक दिनो से जानती हूँ। इसके पूर्व वे और मैं इसी शहर म रहते थे पर अज्ञात दिशाओ मे। चार दिन पूर्व उन्हे मेरे परिचितों के ससार म लाया गया और अब हमारा सहवास प्रारम्भ होना है। इसे सहवास ही कहा जा सकता है। वे मेरे समाज सम्मत पति नही हैं और न मैं उनकी कानूनी पत्नी, रखैल भी नही।

इस प्रकार किसी अजाने पुरुष के साथ रहना किस स्त्री को पसद होगा? किन्तु मुझे किसी एक ऐसे पुरुष की जरूरत है जो मेरी देख-भाल रख सके, मुझे हिम्मत दे सके। डॉ० ऐसा मानते हैं, केशू भाई ऐसा मानते हैं, सतीश कुमार भी ऐसा मानते हैं।

लोग क्या मानते हैं इसकी मैं परवाह नही करती। इस तरह तो दुनिया मे जिया ही नहीं जा सकता। और आदमी को भले ही वह कुछ न कर सके उसे जीना तो पडता ही है।

या तो मैं बयानीफाइड गर्ल हूँ, और मुझे जीना पड़े ही—ऐसा कुछ नहीं। मृत्यु को मैं अविलम्ब आमंत्रण दे सकती हूँ! क्योंकि मैं सबसे सगी अनेक दवाओं को मेरे हाथ पहचानते हैं। ऐसी अनेक दवाइयाँ रोगियों को जीवन देने के लिए वर्षों से देती रही हूँ। उसमें से एक-आध बार मैं, मरने के लिए दो घूँट पी सकी होती।

ऐसा नहीं कि ऐसे विचार न आते हों। पिछले कुछ महीनों से तो दिन में एक बार ऐसा विचार आता ही रहा है पर, विचार क्रिया में बदल नहीं पाया। शायद किशोर इसका कारण हो। ज्यॉर्ज टाउन, यू० एस० ए० से लिखे एक पत्र में उसने लिखा था कि यहाँ दूर रह कर भी तुमसे मिलने की काफी इच्छा होती है। मैं, भले ही थोड़े समय के लिए, भारत आना चाहता हूँ और तब तुम्हें देखूंगा, वर्षों बाद तुम्हारे वक्ष पर सिर रख कर सो जाने में कैसी शान्ति मिलेगी!

मैं किशोर की प्रतीक्षा करती हूँ। शायद ऐसा न भी हो। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि किशोर मिठबोला है। अपनी अमेरिकन पत्नी को भी उसने इसी प्रकार लुभाया होगा, अन्यथा धवल मोम की पुतली सी अमेरिकन गुड़िया उसके हाथ कहाँ से लगती!

यों तो केशु भाई ही मुझसे कहते हैं—सतीश कुमार जैसा आदमी तुम्हें कहाँ से मिल सकता है? गरज न हो तो कोई चालीस वर्ष की स्त्री को घर क्यों कर बैठाये?

मुझमें अब यौवन की एक भी रेखा शेष नहीं है। चाहे जितना मेक-अप करूँ, मुह पर पड़ी झिल्लियाँ छुप नहीं रहतीं। और आँखों को घेरे स्याह वतुल मेरी चालीस वर्ष की कमाई हैं। दर्पण में देखती हूँ तो आँखों को समेटे स्याह वतुल गहरी धारा सा दीखते हैं और उसमें मेरी आँखें मरी हुई मछलियों की तरह उतराती सी दीखती हैं।

लगता है सतीश कुमार को मेरी उम्र ही पसंद है। अब तक उनकी दो शादियाँ हो चुकी हैं। दोनों से उन्हें असंतोष रहा। इस समय उनकी उम्र ५२ वर्ष की होगी। एक बड़ी विदेशी कम्पनी में एकाउन्ट्स क्लर्क हैं।

उनकी आय मे कुटुम्ब का अच्छी तरह से पोषण हो सकता है।

केशु भाई को उनकी यह योग्यता अनुकूल लगी थी।

वह तुम्हे अच्छी तरह से रखेगा रमा बहन, वह तुम्हें हथेली के फफोले की तरह रखेगा। उनकी पहली पत्नी रूठ कर मायके चली गयी सो चली ही गयी। वर्षों तक उसे मनाने का प्रयत्न किया, केस कोर्ट मे गया, जीत भी पर सब व्यर्थ। उस स्त्री ने पति के घर लौटने की अपेक्षा कुएँ मे कूद कर प्राण त्याग देना पसंद किया।

कुछ वर्षों तक तो वह स्त्रियों से खिंचा खिंचा रहा पर एक स्त्री उस तक पहुँच ही गयी। कहते हैं कि उस समय उस स्त्री की उम्र इक्कीस वर्ष की थी और उनकी उम्र सैंतालीस की। सतीश ने उस लड़की के मां बाप को चार हजार रुपए दिये थे। बाद मे भी वे सतीश से रुपये ऐंठते ही रहे। सच तो यह था कि उन्होंने सतीश को चूस ही लिया था। और फिर वह लड़की भाग गयी थी। पुलिस स्टेशन मे केस दर्ज कराया गया पर उस समय सतीश की बात सुन कर वहाँ लोग इस तरह हँसे थे कि फिर कभी सतीश उस ओर नहीं भटका।

'ऐसा लज्जाशील है वह', केशु भाई ने सतीश का प्रस्ताव रखते समय कहा था।

केशु भाई से मना कर देने की मेरी हिम्मत नहीं होती। दूसरे दिन वे सतीश को साथ लेकर आये। सतीश—कलप लगाये हुए, चिपकी दाढ़ी, देखने मे भोला लगता है। उसे देखते ही दया उत्पन्न होती है—'बिचारा' शब्द फूट पड़ता है। उसे देखते ही मैं अपने आपको भूल बैठी और उसकी आँखो से दुनिया देखने लगी।

मानो कि दुनिया ने हम आज तक कड़ुआ पानी ही पिलाया है, मीठे जल के लिए हमेशा हम हाथ-पैर मारते रहे हैं और किसी के सामने आशा से खड़े रहे। लगता था वह अपनी आँखो की भिक्षा-झोली फैलाए मेरी ओर खड़ा था। उसकी आँखों में असंख्य मिन्नतें थी। मैं पूछे बिना न रह सकी—'तुम्हें मुझसे क्या मिलेगा। देने को मेरे पास कुछ भी नहीं है।'

तब मन कह रहा था कभी बहुत कुछ था पास पर सब रास्ते मे ही बिखर गया और अभी तो लम्बा रास्ता बाकी था। रास्ता देखते आँखें थकतीं पर उसका छोर नहीं दीखता था।

वह लगभग आजीजी करता हुआ बोला—'बस, मेरा घर सम्हाल लोगी तो भी बहुत है। काम से लौट कर वापस आऊँ तो घर पर कोई हो।'

'जो प्रसन्न मुख स्वागत करे, गरमागरम भोजन के लिए आग्रह करे।'

'नहीं, नहीं, ऐसी अपेक्षा नहीं है। इतन वर्षों स्वय ही रसोई की है। ऐसा ही होगा तो मैं ही रसोई बना लिया करूँगा, मेरे हाथ की रसोई खा कर तुम प्रसन्न हो जाओगी। कोई मेरा स्वागत करे—प्रसन्न मुख—ऐसी कोई अपेक्षा मैंने नहीं रखी है। मेरे मन तो घर में कोई हो तो, इतना ही बस है।'

बीच मे ही केशु भाई बोले, 'बात यह है कि रमा बहन को भी किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो उनकी देखभाल करे। हाल में तो इन्हें विचार-कटको ने घेर रखा है जिसके कारण चक्कर आ जाते हैं। कई बार तो ये रास्ते मे ही गिर पडी हैं। अब ये काम नही कर पातीं। इतन वर्ष तो हॉस्पिटल मे नर्स की नौकरी करके काट दिए, अब आप जैसे किसी व्यक्ति का आधार मिल जाय तो जिंदगी को सहारा मिल जाय। आप भी अकेले हैं, जिंदगी से ऊब गये हैं और इन्ह भी कुछ कम मुसीबतो का सामना नही करना पडा है।'

'तो क्या मैं जिंदगी से त्रस्त हो उठी हूँ!'

'मानसिक रोगो के विशेषज्ञ ने इन्हें बताया था। दवादारू के अलावा पारिवारिक वातावरण की जरूरत पर अधिक भार दिया था उन्होंने। अब परिवार कहाँ से लाया जाय? इनका अपना परिवार है—दो पुत्रिया हैं, और सब भी हैं। किन्तु रिश्ते टूट चुके हैं। मेरे परिवार मे आकर घुल-मिल जाने के लिए अनेक बार कहा पर यह इन्हें उचित नहीं लगता। इसीलिए मैं सोचता हूँ कि आप जैसे किसी व्यक्ति का इन्हें सहवास मिल

जाय तो एक दूसरे के लिए आधार हो रहे ।'

'हाँ, मुझे भी इतना ही चाहिए, घर का कुछ आधार हो ।'

और तब मैं अपनी बात कहे बिना कैसे रह सकती थी ? मैंने तुरन्त कहा—'मुझसे कोई अपेक्षा रखना व्यर्थ है । मैं नौकरी नहीं करूँगी, कमाऊँगी नही । हाँ, तुम्हारा घर चला लूँगी । तुम्हारा भी, बन सकेगा उतना ध्यान रखूगी । किन्तु तुम मेरे लिए सर्वथा अपरिचित हो । इस समय तुम्हारे मन मे मेरे लिए दया भाव के अलावा और क्या हो सकता है । यदि तुम मेरे प्रति कोई अन्य भाव पैदा कर सको, अपने प्रति मेरे मन मे लगन पैदा कर सकोगे तो मैं उनमे की हूँ जो अपना अस्तित्व भी न्यौछावर कर दे । तुम्हे सर्वस्व दे दूँगी । किन्तु इस समय अपने मन मे कृपा करके कोई आशा न बांधना । अन्यथा दु खी होगे और मुझे दोष दोगे ।'

'मैं किसी को दोष नही देता । दोष तो मेरे भाग्य का है जिसने मुझे आज इस उम्र मे भी ऐसी स्थिति में रखा है कि कोई दिशा ही नहीं सूझती । न जीवन दीखता है न मृत्यु ।'

'तुम्हारे अन्य कुटुम्बी तो होगे न ?'

'मा बाप भाई-बहन तो कोई नहीं, दूर के सगे हैं । पर उनमे से कोई मेरी खबर क्यो कर लेगा ?'

फिर सतीश ने मुझसे पूछा 'तुम्हारा तो कोई कुटुम्बी होगा न ?'

'मेरे तो हैं ही । मेरे पति अभी जीवित हैं । वे पूना या उसके आसपास कही रहते हैं । मेरी पुत्रियां हैं । ये केशु भाई हैं, इनके अलावा भी कोई होगा । पर मैं इन किसी के साथ रहना नही चाहती । मैं बोझ बन कर नही रहना चाहती । मैं कभी किसी का बोझ नही बनी । बनना भी नही चाहती । इसीलिए मैं तुम्हारे साथ रहने के लिए तैयार हूँ । मैं तुम्हे घर दूँगी और तुम मुझे आधार देना ।'

सतीश के मुह पर प्रसन्नता स्पष्ट दीख रही थी । उसी समय मुझे आश्चर्य हुआ था—सतीश मेरे बीते दिनो को जानकर भी अनजान कैसे रह सकता है । मुझ टूटे खिलौन सी स्त्री का घर लाकर वह क्या करेगा ?

टूटा खिलौना न तो किसी के खेलने के ही काम आता है और न शो-केस मे ही रखा जा सकता है। मैं उसके लिए ऐसी ही थी।

पर डाक्टर ने कहा है कि मेरी मानसिक स्थिति ठीक नही है। व्यर्थ के विचार आते रहते हैं, काम के बेकार और ऐसे भी जो समझे न जा सकें। अब स्मृति भी ठिकाने नही रही। बहुत कुछ उलझ गया है। परिचितो को कई बार अन्य नाम से पुकारती हूँ। डॉक्टर का कहना है कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो किसी दिन मस्तिष्क की नस फट जायगी अथवा मस्तिष्क पर का नियन्त्रण चला जायेगा। तब क्या होगा इसकी कल्पना मुझे डराती है। इसीलिए मुझे आधार की जरूरत है। इसीलिए मैं सतीश के साथ रहने के लिए तैयार हूँ।

☐

पौ फटते ही सतीश आ पहुँचा। वह टैक्सी लेकर आया था। उसने सफेद शर्ट और सफेद पैन्ट पहन रखी थी। कोई नही कह सकता कि इसकी उम्र पचास वर्ष की होगी। रुआब के साथ वह टैक्सी से उतरा। मैं बाहर लॉबी म ही खडी थी। पर उसने सिर उठा कर नही देखा, नही तो मैं हाथ हिलाये बगैर न रह सकी होती।

आश्रम की एक नौकरानी ने ही उससे पूछा 'किससे काम है ?' सुनते ही वह इतना नरम बन गया मानो किसी ने उसे चूस लिया हो! चुसे आम की तरह।

आज पाँचवाँ दिन है—उससे परिचय का—सतीश को मैं ठीक से पहचान नहीं सकी हूँ किन्तु किसी दूसरे की हाजिरी मे वह तुरत ठडा पड जाता है—इतना तो मैं समझ पायी ही हूँ। पुरुष होकर ऐसा क्यो करता होगा ? प्रश्न पैदा होता है पर उसे मन म ही दफना देती हूँ। शायद इसी कारण तो स्त्रियाँ इसे छोड जाती होंगी।

इसीलिए तो इसने मेरे सामने भिक्षा की झोली फैलायी है। नहीं तो जिन हाथों म अब मेंहदी का रग भी नहीं चढ़ सकता—उन्हें सहला कर उसे क्या मिलता है ?

मैंने ही ऊपर से कहा 'इन्हें आने दो। मुझसे मिलने आये हैं।'

मेरे इन शब्दों से लगा उसे सहारा मिल गया हो, अपने पूरे शरीर से प्रसन्नता व्यक्त करता सा वह ऊपर आ गया।

मैं तैयार ही बैठी थी। खूब सवेरे जाग गयी थी। शायद ही आँख मिच गयी हो, वैसे रात जागते ही बीती थी। 'अब क्या होगा, जिंदगी कैसा आकार धारण करेगी—इसका कोई कौतूहल नहीं चिंता थी। किशोर क्या समझेगा, रीटा और प्रियगु—मेरी दोनों बेटियाँ क्या सोचेंगी? और यदि मेरा पति यह जान गया तो क्या करेगा—क्या कर बैठेगा?'

पर ज्योंही मैं जागी, बिस्तर से उठ गयी। वैसे अलार्म लगाकर सोई थी। सतीश के आने के पहले ही मुझे तैयार हो जाना था। कौन सी साडी पहननी है यह तो रात ही निश्चित कर लिया था। कुछ भी हो मुझे आकर्षक तो दिखना ही चाहिये। मैं जानती थी कि सतीश को इसकी कोई जरूरत नहीं पर शायद मैं डरती हूँ कि कहीं मेरी ढलती उम्र मुझे उससे दूर न ले जाय। दर्पण के सामने बैठ कर खूब मेक-अप किया और बिंदी भी लगायी।

ऊपर आने के बाद सतीश का पहला वाक्य यही था 'बिंदी से तो तुम्हारा रूप खिल उठा है। आज जैसी तो तुम पहले कभी नहीं लगी।'

कुछ भी हो मुझे यह अच्छा लगा था। यह सच है कि मैं सुन्दर नहीं लग सकती। मुझे यदि कोई सुन्दर कहे तो मजाक ही लगेगा। पर मेरा रूप खिल भी सकता है—यह एक नयी बात थी।

मेरी भी इच्छा सतीश को केन्द्र मे रखकर कुछ कहने की हुई पर कहूँ क्या? अंत में मैंने कह ही दिया 'तुम सफेद कमीज और पैन्ट मे बहुत स्मार्ट लगते हो। तुम पचास के होगे ऐसा कोई नहीं कह सकता।' वह खिलखिलाकर हँस पडा। उसकी हँसी बेहूदी लग रही थी। बोला 'तुम मजाक कर रही हो।'

मैं हँसी मे उसके साथ शामिल हो गयी और मजाक मे ही कहा 'यदि ऐसा न होता तो पचास वर्ष के आदमी को यहाँ आते यानी स्त्रियों

के आश्रम में आते कोई क्यो रोकता ?'

सतीश इसका कोई माकूल जवाब ढूढ नही पा रहा था। सिर पर हाथ फेरते और बात काटते हुए बोला

'तुम्हे जैसा ठीक लगे।' फिर बोला 'नीचे टैक्सी खडी है, मीटर चढ़ रहा है और फिर मुहूर्त भी बीत जायगा।'

'चलो', कह कर मैं उसके आगे-आगे हो ली। केवल एक थैली हाथ मे थी।

'सामान साथ मे नही ले चलना है ?' उसने आश्चय से पूछा।

'सामान अभी भले ही यही पडा रहे। एकाध माह मे, यदि मुझे अनुकूल रहा तो ले जाऊँगी।'

मैंने देखा, मेरे उत्तर से उसका मुँह उदास हो आया था। मुझे लगा इस तरह मैं उसके प्रति अविश्वास प्रकट कर रही हूँ। मेरे लिए ऐसा करना उचित नही था। परस्पर के प्रथम प्रसग मे ही मैंने उसे निराशा पिला दी थी। पर इस बाबत मे मैंने पहले से ही यह सोच रखा था। मुझे यही उचित लगा था। सतीश मेरी बात सुनकर ऐसा उदास हो जायगा—ऐसा तो मैंने सोचा भी नहीं था।

मानो बात चुभ गयी हो—वह बोला 'तुम्हे मुझ पर विश्वास नही ?'

'विश्वास न होता तो तुम्हारे साथ आती ही क्यो ? मेरे सामान की कीमत मुझसे ज्यादा नहीं है। जबकि मैं अपने आपको ही तुम्हें सौंप रही हूँ—सामान मे क्या धरा है ? विश्वास के बल पर ही मैंने अपनी नौका छोड दी है पर डूबने का भय तो है ही। मेरे भूतकाल को जानोगे तब मुझे पहचान पाओगे। मेरी सी परिस्थिति में फँसी स्त्री अन्यथा क्या कर सकती है। इस समय दुनिया मे मेरे लिए कोई दूसरा ठिकाना नही है। *आश्रम की यह छोटी सी कोठरी ही मात्र आधार है। इस समय यदि इसे* छोड दूँ और दुर्भाग्य से लौटना पडे तब कहाँ भटकूगी ? इसीलिए सामान फिलहाल यहाँ रहे और इस कोठरी पर मेरा अधिकार रहे ऐसा सोचा है,

फिर भी यदि तुम कहो तो '

'न न मेरा यह उद्देश्य नही। शायद तुम ठीक ही सोच रही हो। अभी बाकी है मेरे लिए तुम्हारा विश्वासपात्र बनना। चलो, देर हो रही है। मुहूर्त बीत जायगा।'

मेरे पैर उठ नहीं रहे थे मानो किसी ने सिर पर भारी बोझ लाद दिया था। भार लेकर मैं नये घर जा रही थी जबकि मुझे मुक्तमन जाना चाहिये था। द्वार बद कर और चाबी पर्स मे रख हम दोनों नीचे उतरे। मैंने सचालिका से मिल लिया। बाहर जा रही हूँ—ऐसा कह दिया—अपने एक सम्बन्धी के साथ।

सचालिका के ऑफिस से निकली तो सतीश ने मेरा स्वागत करते हुए टैक्सी मे मुझे बैठाया और फिर वह बैठा।

अदर बैठते ही उसने पूछा—'सामान की चचा से तुम्हे दु ख हुआ लगता है ? मुझे सचमुच इसका दु ख है। मुझे तुम्हारे सामान की कोई अपेक्षा नही थी, यू ही पूछ बैठा था। मैंने सोचा था कि तुम आओगी तो सामान भी साथ लेती चलोगी। इसीलिए टैक्सी लेकर आया था। खैर अब इसे भूल जायें। मैंने अपन नये घर को तो सजा ही लिया है।'

उसके नये घर की कोई कल्पना मेरे मन मे उभर नही पा रही थी। उसके घर पहुँचने पर भी मन मे किसी प्रकार की प्रसन्नता पैदा न हो पायी। मकान मालकिन आगन में झाड़ू लगा रही थी। झाड़ू को एक ओर रख अपने आचल को सम्हालती वह बोली

'तुम समय से आ गये। तो ये तुम्हारी पत्नी हैं ?'

सतीश इसका क्या उत्तर देता है, इस जिज्ञासा से मैंन उसकी ओर दखा पर तब सतीश मेरी ओर देख रहा था। शायद वह सोच रहा था कि क्या जवाब दे जो मुझे उचित लगे या कम से कम बुरा तो न लगे!

मुझे उसकी ओर हमदर्दी भरी निगाहो से दखना चाहिये था पर मुझे ऐसा सवाल अच्छा नही लगा था। मैंने मुह फेर लेना चाहा था पर वैसा न कर पाकर सतीश की ओर ही देखती रह गयी थी। मानो मैं उसकी

परेशानी से प्रसन्न हो रही होऊँ। सतीश ने सिर हिलाकर ही हाँ कहना ठीक समझा। और पतलून की जेब से चाभी निकालकर कमरा खोलने लगा।

दो रूम थे। वस्तुत एक कमरा और एक रसोईघर। अदर प्रवेश करते ही उसने 'स्वागतम्' लिखे तोरण की ओर मेरा ध्यान दिलाया। 'यह तुम्हारा स्वागत कर रहा है। मान लो यही मेरी जगह तुम्हारा स्वागत कर रहा है।'

एकाएक मुझे लगा कि मेरे सिर का बोझ हट गया है। मैं हँस पडी। कैसा बनावटी पर मधुर ढग से बोल रहा है यह व्यक्ति! तब मन में विचार आया कि क्यो दो-दो स्त्रिया इस जैसे भोले आदमी को छोड गयी होंगी?

कमरे मे टेबल और एक कुर्सी रखी थी। टेबल पर लैम्प रखा था। बिलकुल नया लग रहा था। टेबल पर और कुछ नही था। टेबल क्लॉथ भी नही। आलमारी मे एक तेल की शीशी, हजामत का सामान, कुछ पुरानी डायरियाँ, चार-छ पुस्तकें और दूसरे खाने म कुछ कपडे थे। नहाने और कपडे धोने का साबुन भी था। मेरी नजर घर की तलाशी ले रही थी। टेबल के नीचे चमडे की दो बेग पडी थी। कमरे मे एक ओर पलग बिछा था। उस पर घर की धुली हुई एक चादर बिछी हुई थी। मैं सतीश के साथ ही रसोई घर म गयी। वहाँ घर-गृहस्थी की वस्तुएँ थी। सामने एक आलमारी थी। उसके साथ एक छोटी सी दूसरी आलमारी थी जिसके बाहर एक दीवट रखा था जिससे मैंने अनुमान लगाया कि घर म पूजा पाठ होता होगा।

एक नयी मटकी दिखाकर सतीश ने उसे भर लाने और दीप जलाने के लिए कहा।

सतीश की आवाज में उत्साह था। मैंने चप्पल उतार दीं और मटकी लेकर चलने लगी तो उसने मुझे छत्ता दिया और नल बताने के लिए साथ हो लिया। छत्ता लगाकर मैं मटकी भरने लगी। मकान मालकिन बाहर

ही बैठी थी। सामने के मकान से किसी ने उससे पूछा 'तुम्हारे नये किरायेदार आ गये ?'

'हाँ आज ही आये हैं। कुभ-स्थापन कर रहे हैं।'

न चाह कर भी मुझे उसकी ओर सस्मित देखना पडा। मन मे घबराहट भी थी कि यदि आस-पास की स्त्रियाँ मुझे घेर कर प्रश्नो की वर्षा करने लगेंगी तो क्या जवाब दूँगी ? इसके पहले कहाँ रहती थी ? घर क्यो बदलना पडा ?—इन सारे प्रश्नो के मेरे पास उत्तर नही थे। सतीश से मैंने पूछा भी नही।

मैं कुभ भर कर अदर पहुँची तो सतीश एक कटोरी मे रोली भिगोये तैयार था। मैंने कुभ रख दिया। वहाँ एक थाली मे अक्षत-पुष्प रखे थे। दीपक भी रखा हुआ था। मैं बोल पडी 'ये सारी तैयारी मैं कर लेती।'

'तुम्हे सारी चीजें बतानी तो पडती ही न !'

मैंने कुभ स्थापित कर पूजन किया, दीपक प्रकट किया और सिर झुकाकर नमस्कार किया। सतीश ने भी मेरे साथ पूजन वदन किया।

वह बोला 'मेरे जीवन मे नयी आशा का दीपक जलाया है तुमने।'

न जाने क्यो ऐसा लग रहा था कि वह याद किया हुआ सा सवाद बोल रहा है। किसी पुस्तक मे लिखा हुआ पढ जा रहा हो। मैं उस आशा के प्रकाश का अनुभव कर प्रसन्न होना चाहती थी पर वैसा न हो सका। मन मे एक साथ अनेक दीप जल उठे। एक पूना मे प्रकट हुआ था, दूसरा इन्दौर मे और अब एक यहाँ। ये दीपक कुछ भी प्रकाशित नही करते। शायद मेरी दीवट ही छोटी थी, उसमे बहुत थोडा सा घी समाता और थोडी देर दिया टिमटिमा कर बुझ जाता। आज एक नया दीप जलाया था पर उसकी लौ मे प्रकाश नही था। लौ म तो शायद अपने पिड से प्रकाश पूरना पडता है, पर मेरे पिंड मे तो प्रकाश की जगह काजल भरा पडा था।

उस समय सतीश मेरी ओर देख रहा था। अपेक्षाओ के मृग उसकी आँखो मे फुदक रहे थे। पर मैं किसी वीराने सी थी।

मेरे हाथ ने सतीश के हाथ का स्पर्श अनुभव किया। उसके रक्त का कपन उसकी अंगुलियों को पार कर मेरी त्वचा का स्पर्श कर रहा था। उसने मेरा हाथ पकड लिया। मैंने उसे रोका नहीं। उसने मेरी हथेली को अपने गालो से लगा कर ओठो का स्पर्श दिया। उसके ओठ काप रहे थे। विह्वलतावश उसकी आँखो मे लाली तैर रही थी। धीरे से मैंने अपने हाथ को छुडा लिया। इसी प्रकार मैं रीटा के हाथ से खिलौने ले लेती थी और पढने बैठा देती थी।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि उसके स्पर्श से मुझे कोई अनुभूति नही होती थी। स्पश स उत्तेजित हो उठनेवाली सवेदनशीलता की उम्र मैं शायद बिता चुकी थी। पर मुझे ऐसा करना नही चाहिए था। यदि मैंने उल्लास से उसे आलिंगन में ले लिया होता तो वह बेहद खुश होता। पर मैं प्रेम का नाटक नही कर पाती। हमे परस्पर आधार की जरूरत है। वह मुझे घर देगा तो मुझे भी उसे कुछ देना होगा। पर मेरे पास देने के नाम क्या धरा है! जो खुद मुफलिस हो वह दूसरे को क्या देगा?

जानते हैं मेरे इस व्यवहार का सतीश पर क्या असर पडा? उसका मुँह दयाजनक हो गया। पर दयावश प्रेम करना या अपेक्षा रखना कितना विचित्र है।

उस दिन हलुआ बनाया। सतीश खा-पीकर नौकरी पर गया। मैं अपने घर पर अकेली थी। दपण के सामने खडी हुई। जूडे मे बँधी वेणी उतार दी और दरवाजा बन्द कर पलग पर लेट गयी।

सोच रही थी कि अपनी अटैची ले आयी होती तो ठीक रहता। और कुछ नहीं तो किशोर का फोटो ही निकाल कर देखती। उसके पत्र पढ़ती। आज किशोर बेहद याद आ रहा था। पुरानी यादो को दफना कर जब कि नयी शुरुआत करनी है—लगता है भूल जाना मुश्किल है। व्यतीत कभी भी पीछा नहीं छोडता और जब कि विगत ने इतना हचमचा दिया हो कि वर्तमान में स्थिर रह पाना कठिन हो जाय! ● ●

दो

मैं नहीं जानती मैं किशोर की कौन हूँ ? लोग इन्दौर मे हमारे सबधो को लेकर क्या चर्चा करते होंगे—नही जानती। शायद, किशोर पर छा जाने वाली पिशाचिनी कहते हो मुझे।

किशोर से मैं कम से कम दस वर्ष बडी थी और किशोर मेरे प्रेम मे पडा था। मैं उसे लिपट न देती तो वह बेचैन हो जाता था। समझाती तो रूठ जाता। खाना पीना छोड रोने बैठ जाता था। मुझे उसे सिर पर हाथ फेर-फेर कर मनाना पडता था जैसे मैं रीटा को मनाया करती थी। तुझे इस तरह रोते मुँह देखकर जाती हूँ तो पैर टूट जाते हैं—और फिर सारे दिन काम करना होता है। तुझे क्या मालूम नर्स को सारे दिन दौड-धूप करनी पडती है।—रीटा से कहती।

'किशोर, ऐसा करके तू मुझे नर्वस कर देता है। पुरुष होकर इस तरह मुँह फुलाकर बैठ जाना ! इस तरह से हम बहुत देर तक साथ नही रह सकते। मैं परिणीता हूँ, दूसरे की पत्नी हूँ और फिर एक नर्स। हमारी तो जाति ही बदनाम है। तुम्हारा हॉस्टेल म रहना ही ठीक है। तुम्हारा अभ्यास बिगड—यह मुझे पसद नहीं। पढ लिख कर जब स्वतत्र बन जाओ तब मुझे बुला लेना। कहेगा तो मैं तुम्हारे घर नौकरानी बन कर भी रह लूँगी।'

'यह मेरी गलती होगी यदि मैं तुम्हे अपन स्वार्थवश बाँध रखू। तुम छोटे हो मुझसे, उम्र मे और समझ मे भी। मेरा कहना मानो और हॉस्टेल मे रहने लौट जाओ। कभी-कभी मिलने आते रहना। मैं इसके लिए कब मना करती हूँ ? इस तरह तो साथ नहीं रहा जा सकेगा।' यादें दौडती हैं।

किशोर एक रोगी के रूप मे आया था। मैं जिस हास्पिटल में काम

करती थी वहाँ एक स्पेशल रूम मे दाखिल हुआ था। मेरी ड्यूटी उसी रूम में थी। उसे किडनी की तकलीफ थी। ऑपरेशन शीघ्र होना था। कोई सगे-साथी या नहीं पाये थे।

होश में आने के बाद डॉक्टर ने मेरा परिचय कराते हुए कहा था—'रमा बहन—जिन्होंने खडे पैर तुम्हारी चाकरी की है।'

उस समय ही, उसने जिस दृष्टि से मुझे देखा था—उसमें आभार ही नही आसक्ति भी गुथी हुई थी।

डॉक्टर के चले जाने के बाद ड्रेसिंग करते समय मेरे हाथ को पकड कर एक रुग्णस्मित के साथ उसने कहा था 'धन्यवाद'। इसमे आश्चर्य-जनक कुछ भी न था परन्तु बाद मे हर बार मेरे हाथो को पकड कर दबाता—अपने हाथो को आगे फैलाता। न जाने क्यो मैं उसे रोक नही पाती थी।

एक बार उसने पूछा 'मेरे आपरेशन के वक्त तुम हाजिर थी?'

'हाँ, क्यो?'

'डाक्टर ने जिस समय मेरा पेट चीरा था उस समय तुम्हे कैसा लग रहा था?'

'तुम्हे रोगमुक्त करने के लिए डाक्टर ऑपरेशन कर रहा था और मैं तो अपनी ड्यूटी पर थी।'

'तुम मुझे स्पश करती हो, अन्य रोगियो को स्पश करती हो—इससे तुम्हे कैसा लगता है?' छोटे बालक सा कुतूहल लिए यह पूछता।

'हमें कुछ भी नही लगता।'

'एक प्रकार का कंपन। तुम जब मुझे स्पश करती हो—मेरी श्वासें तीव्र हो जाती हैं। इस समय भी मेरी यही स्थिति है—चाहो तो हाथ रख कर देख लो।'

मेरी इच्छा हुई यह जानने की। अपन स्पश स किसी के बढे हुए धबकारे देखना किसे अच्छा न लगे? मैंने जब देखा तो सचमुच उसका हृदय जोरो से धडक रहा था। मैं हँस पडी और बोली

'किशोर बाबू इस तरह से हृदय का धडकना ठीक नही।'

'तुम पर कोई प्रतिक्रिया नही होती ?'

'हमे कभी कुछ नही होता। हमारे लिए तो मनुष्य का शरीर केवल एक नाली है। हम उसे साफ करते हैं—स्वच्छ रखते हैं। हमारे हृदय मे उसके प्रति कोई लगाव उत्पन्न नहीं होता। तुम्हे भी इस प्रकार के लगाव से दूर रहना चाहिए। वैसे तुम्हारी इस उम्र मे इस प्रकार की अनुभूतिया स्वाभाविक हैं पर अच्छे लडके इनसे दूर रहते हैं।'

मुझे लगता था कि मैं उसकी अनुपस्थित मा के स्थान की पूर्ति कर रही थी।

'तुम्हारी माँ, पिताजी, क्यो कोई आया नही ?' बात बदलते हुए मैंने पूछा।

'मेरी मा इस दुनिया मे नही है। सौतेली मा है। सौरी आनेवाली है। अंतिम दिन चल रहे हैं, कैसे आ सकती हैं ? पिताजी आज कल मे आ जायेंगे। खर्च की कोई चिन्ता नही है, फिर वे हो या न हो क्या फर्क पडता है ? और ऑपरेशन कोई गम्भीर थोडे ही है।' वह व्यर्थ बचाव कर रहा था।

'तुम जिस समय दाखिल हुए थे उस समय तुम्हारी हालत सचमुच ठीक नही थी। फिर किडनी स्टोन का ऑपरेशन सामान्य नही माना जाता।'

'पर पिताजी की दृष्टि मे तो यह मामूली ही है। उनके लिए तो किशोर भी मामूली ही है। असली बेटा तो उनकी नयी पत्नी के गर्भ मे बढ रहा है।' कहते-कहते किशोर भावावेश मे लाल हो आया था। उसने मुँह फेर लिया। उसकी आँखो मे आँसू भर आते दीखे।

मैं उसके सिरहाने बैठ गयी। माथे पर हाथ फेरते हुए कहा

'किशोर, मन उदार रखना चाहिए। बडो के दोष नही देखे जाते। उनके विषय मे ऐसा अनुचित सोचना भी नही चाहिए। नयी पत्नी के प्रति कुछ अधिक खिचाव स्वाभाविक ही है पर इसका यह अर्थ नही होता कि उन्हे अपने बच्चो पर प्यार नही। ऊपर से भले ही यह दीखता न

हो पर मन मे तो ममता रहती ही है । अब शान्त हो जाओ ।' उसके आँसू पोछते हुए उसके सिर पर, कपाल पर, गाल पर हाथ फेरा और जाते हुए कहा 'अब चुपचाप सो जाओ ।'

उसकी नजरो ने कब तक मेरा पीछा किया—मालूम नही । सच तो यह है कि मैं उसे अशात बनाकर चली आयी थी । पर मैं भी शात न रह पायी थी । उसके रूम से बाहर निकलते समय मेरे पैर कांप रहे थे । एक नर्स के लिए यह सब उचित नहीं था । तब मेरे मन मे उसके प्रति एक मधुर लगन के अलावा और कुछ नही था ।

किशोर का मन मेरे लिए अस्पष्ट नहीं था, फिर भी मैंने वही किया । कई बार उचित अनुचित समझ मे नही आता और जब आता है तब तक पैर गलत रास्ते पर चल चुके होते हैं ।

कई बार ऐसा लगता है कि कोई अपरिचित हाथ हमे अनृत-शिला पर पटक देता है । किशोर की ओर मैं इस प्रकार क्यों झुकी—इसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं है । किसी ने मुझे किशोर को जिंदगी मे छोड दिया था । मैं ऐसा नही मानती कि किशोर को मेरी जिंदगी में छोड दिया गया था ।

किशोर—पौन छ फुट लम्बा गौरवण नवयुवक था । हॉस्पिटल से लौटते वक्त उसका वजन १२६ पौंड था । हल्की मूछें थीं । मुझसे सिर मे सुगंधित तेल की मालिश करवाता । हॉस्पिटल में आते समय कंघा भी साथ लाया था जिसे उसने तकिए के नीचे रख लिया था । ऑपरेशन थियेटर मे जाने से पूव उसने अपने बाल संवार लिए थे । उसे बिखरे हुए बाल अच्छे नहीं लगते थे ।

बचपन मे बिखरे बालों को देखकर पिता जी लडते थे—अब तो आदत पड गयी है ।' उसने बताया था ।

उसने आग्रह करके मुझसे सुगधित तेल की शीशी मँगायी थी । यह मैं अपन पैसे से लायी थी । तकिए के नीचे धरे पर्स को निकाल कर वह कीमत देने लगा ।

'पैसे की जरूरत नही है।' मैंने कहा—'तुम्हे प्रिय है इसलिए लायी हूँ। इसे मेरी भेंट मान लो।'

'और तो कुछ नहीं, तेल की शीशी की भेंट ?' वह हँसा।

'सुगधित है न, इसलिए।'

'इससे अधिक सुगध तो तुममे है—तुम्हारे अतर मे।' उसन कहा।

'आदमी के अदर सुगध कहाँ होती है—वहा तो केवल दुर्गंध ही मिलती है।'

'कुछ देर के लिए, तुम नर्स हो यह भूल जाओ तो यह मालूम पडे। मुझे तो तुम गुलाब की क्यारी सी लगती हो ! मैं तुम्हे कैसा लगता हूँ ?'

'कहूँ ? मुझे तुम रोगी दीखते हो।'

'वह तो हूँ ही। पर जब रोगी नही रहूँगा तब।'

'मैं नहीं मानती कि तुम रोग मुक्त हो पाओगे।'

'तुम्हारे हाथ से दवा पीने के लिए रोगी बना ही रहना पडेगा।'

'तब तो मुझे तुम्हें ठीक करना ही पडेगा। चलो लेट जाओ। इन्जेक्शन लगाना है।'

'तुम्हारे हाथ फेरने स ही दु ख दूर हो जाता है, सुई व्यय मे क्यो भोक रही हो ?'—कहते हुए वह लेट गया।

'इन्जेक्शन से डर लगता है ?'

'पहले डरता था। चार आदमियो के पकड रखने के बाद ही इन्जेक्शन दिया जा सकता था।'

'अब कहाँ नही डरते ! यह तो मुझे पौरुष दिखाने के लिए चुपचाप पडे रहते हो। मन मे तो धक-धक होती ही रहती है।'

'तुम्हे भला क्यो पौरुष दिखाने लगा ? अच्छा चलो मान लिया, मुझे डर लगता है—इजेक्शन से। तुम्हारे दुलार के लोभ से इस दु ख को सह लेता हूँ।'

उस दिन इन्जेक्शन देने के बाद काफी देर तक मैं मसाज करती रही। फिर सिर में तेल डाल कर बाल सँवार दिए।

'यहाँ किसी के पास दर्पण होगा ? मुझे देखना है। ऑपरेशन के बाद कैसा लग रहा हूँ ?'

'बहुत सुन्दर लग रहे हो। रोगी को दर्पण नहीं देखना होता, उसे स्वस्थ होना होता है। और तुम्हारे लिए शाम दर्पण ले आऊँगी, बस। राजी ?'

'तुम तो मुझे छोटे बच्चे की तरह फुसलाती हो।'

'तो क्या करूँ ? तुम्हारी जिद भी तो छोटे बालक जैसी ही होती है न!'

'तुम्हें बच्चों को फुसलाने का अनुभव है ?'

'यहाँ कितने रोगी आते हैं ? रोग में कातर बने रोगी छोटे बालक जैसे ही बन जाते हैं। हमें तो सबको छोटे बालकों की तरह ही फुसला कर—मनाकर रखना पड़ता है।'

'तो मैं भी उन्हीं छोटे बच्चों में से एक हूँ ?'

'हाँ, पर तुम कुछ अधिक निकट।' मैं हँस पड़ी।

'मैं तुम्हारे अपने बच्चों के बारे में पूछ रहा था और तुमने बात बदल दी।'

'मैं क्यों बात बदलने लगी ? हॉस्पिटल मे घरेलू बातों का क्या अर्थ ? पर तुमने पूछा ही है तो कहूँगी। मेरी एक लड़की है—रीटा—छ वर्ष की। अब तो वह स्कूल भी जाती है। जो तुम्हारी ही तरह विवश प्यार माँग लेती है।'

उसका चेहरा तुम सा है या अपने पिता जैसा ?'

'लोग कहते हैं—मेरा जैसा है।'

'उसे किसी दिन यहाँ लाना मुझे मिलना है।'

'अच्छा।'

कुछ देर कोई कुछ न बोला। फिर उसने प्रश्न किया

'यदि मैं तुम्हारे जीवन मे अनधिकार प्रवेश कर रहा लगूं तो माफ करना। यदि तुम प्रश्न का उत्तर न दोगी तो बुरा नही मानूंगा। पर

एक प्रश्न बरबस मुँह पर आ रहा है—रीटा के पिता क्या करते हैं ? घर की स्थिति कैसी है ?'

'भविष्य मे भी यदि तुम रीटा के पिता के बारे मे न पूछो तो अच्छा। इस प्रश्न का जवाब देना मुझे अच्छा नही लगता।'

'माफ करना, पर इतना तो कहूगी न कि वे हैं तो सही यानी जीवित है ?'

'हा, जीवित हैं और साथ ही रहते हैं।'

'बस इससे अधिक मुझे कुछ नही जानना। इतना जान कर मुझे सतोष हुआ है।'

मैं खिलखिला कर हँस पडी। सच तो यह है कि मैं हँसे बिना रह न पायी थी।

'किशोर बाबू, ऐसा कह कर तुम अपने आपको धोखा तो नही दे रहे ! शायद तुम्हारी अपेक्षा यह हो कि मैं विधवा या त्यक्ता होऊँ, गरीबी मे सडती होऊँ और तुम्हारा हाथ पकड कर मुझे आधार मिल जाय, और तुम मेरे उद्धारक बनो। पर ऐसा नही है। मेरा अपना एक घर है, कुटुम्ब है, सुखी संसार है। तुम्हारे प्रति मेरे मन में कोमल भाव है किन्तु इसका, मेहरबानी करके उलटा अर्थ न ले लेना। शान्तिपूर्वक यहाँ आराम करो और पिता जी आवें तब मुझे बुलवा लेना। मैं तुम्हारे लिए शाम दपण लाना भूलूगी नही।' कहते हुए मैं उसके कमरे से बाहर निकल आयी।

☐

नर्स की जिन्दगी अनेक प्रकार के लोगो के बीच से गुजरती है। रोग-शैया पर पडे लोगो का संवेदना-तत्र विचित्र होता है। ये, या तो अतिशय भावुक हो जाते हैं अथवा चिडचिडे।

कुछ दवा के ग्लास को उलट देते हैं, फोड देते हैं या फिर नर्स को दवा से नहला देते हैं। कुछ की दृष्टि मे हम उनके शत्रु होते हैं। इन्जेक्शन देते समय, खास तौर पर इट्रावेनस इन्जेक्शन देते समय रक्त-

पाहिनी गिरा पान्ट में न आ रही हो और इसके लिए बार-बार मुंह का स्वाद बदलना पड़ रहा हो, और ऐसा करते रात यह आप तब रोगी और उसके सगे सम्बन्धी हम पाजी दुश्मन मान बैठते हैं।

ऐसा कैसे हो सकता है कि दवा हमेशा वक्त पर हो। रोगी सो गया हो और दवा देने का समय हुआ हो। जगाये बगैर कैसे चल सकता है। हमारा यह फर्ज है। हमें रिपोर्ट भरनी पड़ती है। पर रोगी हम पर चिढ़ जाता है।

कोई नहीं सोचता कि हम सेवा करके अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। वैसे तो सेवा वही कर सकता है जिसका मन इस भाव से भरा हो पर अब हम अपेक्षा से प्रेरित होकर यह कार्य करते हैं। हमेशा ऐसा आत्मीयता सम्भव भी नहीं है। और फिर एक साथ कितने ही लोगों की देख-भाल करनी पड़ती है। आत्मीयता की कृपा बांटते रहें तो काम का अन्त ही न आ पावे।

किशोर इसका अपवाद है। एक तो स्पेशल रूम और कोई खबर पूछनेवाला भी नहीं। फिर तो नर्स के लिए आत्मीयता देने के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं रहता।

और भी एक बात है। नर्स और रोगी के बीच कोई दीवार भी तो नहीं होती। माता या पत्नी की तरह ही नर्स को रहना पड़ता है। सामान्यतः स्त्री-पुरुष के शरीर-स्पर्श की एक मर्यादा होती है। नर्स इसका पालन नहीं कर पाती। रोगी को कभी केथेड्रल से पेशाब करानी पड़ती है, उसे स्पॉन्ज करना पड़ता है जिससे उसका शरीर स्वच्छ रहे—और इस तरह सैकड़ों मर्यादाएँ तोड़नी पड़ती हैं।

किशोर किडनी-स्टोन का मरीज था। उसके साथ देह की कोई मर्यादा नहीं रखी जा सकती थी। ऑपरेशन के बाद भी उसे साफ पेशाब नहीं आती थी।

उस दिन जब मैं दर्पण लेकर उसके रूम में गयी तो देखा उसके पिता पास की कुरसी पर अपने भारी भरकम शरीर को फैलाये पड़े थे।

पूरे छ फुट लम्बे होंगे। या इससे भी अधिक। और सौ किलो से कम वजन नही रहा होगा। ऊनी कुर्ता और धोती पहन रखी थी। गले मे सोने की जजीर पडी हुई थी। अँगुलियो पर दो अँगूठियाँ थीं। पैरो मे काले जूते चमक रहे थे। एक पहने हुए थे और दूसरा कुरसी के नीचे पडा हुआ था।

मेरे रूम मे पहुँचते ही वे जरा सीधे हुए, सीधा सवाल किया मुझसे—'नर्स, यहाँ रोगी को देखने के लिए कितनी बार डॉक्टर आता है ?'

'रोज सुबह आते हैं।'

'तो रोगी दिन भर अकेला पडा रहता है ? उसकी देख-भाल कौन करता है ? उसे कभी कुछ जरूरत पडे तो '

'हम सब होते हैं न !' मैंने किशोर से ही पूछा—'क्यो किशोर बाबू, आपको कोई तकलीफ है ?'

'नही, पिता जी, इन्होंने मेरी दिन-रात देख-भाल की है', किशोर ने आभार सह मेरा पक्ष लिया। किन्तु वे सतुष्ट नही हुए।

'अच्छा ! पर मुझे यहाँ आये आध घंटे हो गये तब से तो यहाँ कोई फटका नही। डॉक्टर से मिलना चाहा तो किसी ने सीधा जवाब भी नही दिया। किसी ने कहा नीचे मिलेंगे, किसी ने कहा सुबह मिलेंगे। यह सब क्या है ? स्पेशल रूम मे भी धर्मादा-विभाग जैसी बेदरकारी ! जरूरत हो तो और चार्ज करो पर मेरे लडके के पास चौबीसो घटे आदमी रहना चाहिए।" वे चिढ कर बोल रहे थे।

'मैं हूँ न ! आप कहे तो चौबीसो घटे यही रहूँ।' मैंने कहा।

'हा-हा, ऐसा ही करो।' किशोर बोल पडा।

'आप डाक्टर से कह कर यही रह। ऐसी दशा मे किशोर के समीप कोई न हो यह मैं बर्दाश्त नही कर सकता।'

'परन्तु अब ये ठीक है। ऑपरेशन के समय आप कहाँ थे ? उस समय तो मैं ही थी इनके पास और उस समय तो हालत भी गभीर थी ! अब तो सुधर रही है।'

वाहिनी शिरा पकड़ में न आ रही हो और इसके लिए बार-बार सुई का स्थान बदलना पड़ रहा हो, और ऐसा करते रक्त बह आय तब रोगी और उसके सगे-सम्बन्धी हमें घातकी दुश्मन मान बैठते हैं।

ऐसा कैसे हो सकता है कि दवा हमेशा रुचिकर ही हो। रोगी सो गया हो और दवा देने का समय हुआ हो। जगाये बगैर कैसे चल सकता है। हमारा यह फर्ज है। हमें रिपार्ट भरनी पड़ती है। पर रोगी हम पर चिढ़ जाता है!

कोई नहीं सोचता कि हम सेवा करके अपना कर्तव्य निभा रहे हैं। वैसे तो सेवा वही कर सकता है जिसका मन इस भाव से भरा हो पर अब हम अपेक्षा से प्रेरित होकर यह कार्य करते हैं। हमेशा ऐसी आत्मीयता सम्भव भी नहीं है। और फिर एक साथ कितने ही लोगों की देख-भाल करनी पड़ती है! आत्मीयता की तृषा शाव करते रहे तो काम का अन्त ही न आ पाव।

किशोर इसका अपवाद है। एक तो स्पेशल रूम और कोई खबर पूछनेवाला भी नहीं। फिर तो नर्स के लिए आत्मीयता देने के अतिरिक्त कोई विकल्प ही नहीं रहता।

और भी एक बात है। नर्स और रोगी के बीच कोई दीवार भी तो नहीं होती। माता या पत्नी की तरह ही नर्स को रहना पड़ता है। सामान्यत स्त्री-पुरुष के शरीर-स्पर्श की एक मर्यादा होती है। नर्स इसका पालन नहीं कर पाती। रोगी को कभी केथेड्रल से पेशाब करानी पड़ती है, उसे स्पॉन्ज करना पड़ता है जिससे उसका शरीर स्वच्छ रहे—और इस तरह सैकड़ो मर्यादाएँ तोड़नी पड़ती हैं।

किशोर किडनी-स्टोन का मरीज था। उसके साथ देह की कोई मर्यादा नहीं रखी जा सकती थी। ऑपरेशन के बाद भी उसे साफ पेशाब नहीं आती थी।

उस दिन जब मैं दर्पण लेकर उसके रूम में गयी तो देखा उसके पिता पास की कुरसी पर अपने भारी भरकम शरीर को फैलाये पड़े थे।

पूरे छ फुट लम्बे होंगे। या इससे भी अधिक। और सौ किलो से कम वजन नही रहा होगा। ऊनी कुर्ता और धोती पहन रखी थी। गले में सोने की जंजीर पडी हुई थी। अँगुलियों पर दो अँगूठियाँ थी। पैरो मे काले जूते चमक रहे थे। एक पहने हुए थे और दूसरा कुरसी के नीचे पडा हुआ था।

मेरे रूम मे पहुँचते ही वे जरा सीधे हुए, सीधा सवाल किया मुझसे—'नर्स, यहाँ रोगी को देखने के लिए कितनी बार डॉक्टर आता है ?'

'रोज सुबह आते हैं।'

'तो रोगी दिन भर अकेला पडा रहता है ? उसकी देख-भाल कौन करता है ? उसे कभी कुछ जरूरत पडे तो '

'हम सब होते हैं न !' मैंने किशोर से ही पूछा—'क्यो किशोर बाबू, आपको कोई तकलीफ है ?'

'नहीं, पिता जी, इन्होंने मेरी दिन-रात देख-भाल की है', किशोर ने आभार सह मेरा पक्ष लिया। किन्तु वे सतुष्ट नही हुए।

'अच्छा ! पर मुझे यहाँ आय आध घटे हो गये तब से तो यहाँ कोई फटका नही। डॉक्टर से मिलना चाहा तो किसी न सीधा जवाब भी नही दिया। किसी ने कहा नीचे मिलेंगे, किसी ने कहा सुबह मिलेंगे। यह सब क्या है ? स्पेशल रूम मे भी धर्मादा-विभाग जैसी बेदरकारी ! जरूरत हो तो और चार्ज करो पर मेरे लडके के पास चौबीसो घटे आदमी रहना चाहिए।" वे चिढ कर बोल रहे थे।

'मैं हूँ न ! आप कहें तो चौबीसों घटे यही रहूँ।' मैंने कहा।

'हाँ-हाँ, ऐसा ही करो।' किशोर बोल पडा।

'आप डाक्टर से कह कर यही रह। ऐसी दशा मे किशोर क समीप कोई न हो यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

'परन्तु अब ये ठीक है। ऑपरेशन के समय आप कहाँ थे ? उस समय तो मैं ही थी इनके पास और उस समय तो हालत भी गभीर थी। अब तो सुधर रही है।'

'आई एम सॉरी सिस्टर। पर तुम्हारा यहाँ का स्टाफ अच्छा नहीं है। मुझे कोई ठीक से जवाब भी नहीं देता।' वे कुछ ढीले पड़े थे।

मैंने कहा—'मुझसे पूछिए, मैं जवाब दूँगी।'

'किशोर अब ठीक हो रहा है? इसे एकाएक ऐसा कैसे हो गया?'

'रोग कैसे हो जाते हैं यह तो मालूम नहीं पर पीड़ा की शिकायत तो इन्हें पहले से ही थी। बेदरकारी के कारण पथरी बढ़ गयी। ऑपरेशन के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था। वैसे तो ऑपरेशन सफल हुआ है पर पूर्ण सफलता की खबर तो चार-छः दिन के बाद ही लगेगी। देखें, इस समय इनको पेशाब साफ नहीं है।'

मैंने किशोर के पलंग के पास लटक रही बॉटल की ओर संकेत किया।

'यदि चार-छः दिन में यह साफ आने लगेगा तो चिंता की बात नहीं रहेगी नहीं तो किडनी का ऑपरेशन करना ही पड़ेगा।'

'यानी?'

'मेरा मतलब दूसरी बार ऑपरेशन से है जो गंभीर है। पर मुझे लगता है किशोर बाबू के केस में दूसरे ऑपरेशन की जरूरत नहीं पड़ेगी। वे ठीक हो जायेंगे।'

'तब तो ठीक।' उसके पिता सस्मित बोले। किशोर की मुद्रा से भी लगा जैसे उसने कुछ राहत अनुभव की हो।

'किशोर बाबू, मैं तुम्हारे लिए दर्पण लायी हूँ। आपने मँगवाया था न! इसे लाने में ही देर हो गयी। वैसे इतने दिनों में आध घंटे तक आपकी खबर पूछी हो ऐसा नहीं बना होगा।'—किशोर के पिता जी को संबोधित करते हुए मैंने कहा और कागज में लिपटे दर्पण को किशोर के हाथ पर रखा। किशोर ने कागज फाड़ा और दर्पण में अपना मुँह देखने लगा।

'थोड़ा फीका लग रहा हूँ न?' वह पूछना तो मुझसे चाह रहा था पर पूछा अपने पिता से।

'ऑपरेशन के कारण काफी खून बह जाता है, इस कारण फीकापन तो आ ही जाता है न ! थोड़े दिन दवा-दारू चलती रहेगी तो फिर से शक्ति आ जायेगी।' फिर मेरी ओर देखते हुए कहा 'सिस्टर, कल किसी नाई को बुला लेना, इसकी दाढ़ी काफी बढ़ गयी है।'

'अवश्य!'

'आपकी एक दिन की सर्विस का चार्ज क्या है ?'

'जी, बीस रुपये।'

उन्होंने तुरन्त जेब में हाथ डाला और पर्स निकाला और मेरे हाथ पर सौ रुपयों का नोट देते हुए कहा—'पांच दिन की फीस रखिए, बाकी बाद में हिसाब करूंगा।'

रुपये लेते हुए मैंने कहा—'वैसे अब चौबीस घंटे हाजिरी की जरूरत नहीं है और फिर आप भी अब आ गये हैं।'

मेरी बात सुनते ही उनका कपाल रेखाओं से घिर गया। वे रुकते-रुकते धीमी आवाज में बोले—'मैं ज्यादा रुक नहीं पाऊँगा। इसकी माँ की भी तबियत ठीक नहीं है।'

'यानी चार-छः दिन तो रुकेंगे ही न ?'

'देखता हूँ, रुकूंगा भी तो यहाँ मैं नहीं रह पाऊँगा। यहाँ चारों ओर से दवाओं की ही गंध आ रही है। मैं किसी होटल में रुकूंगा।'

'पिता जी, नरेश चाचा के घर नहीं रुकेंगे ?'

'उन्हें तुमने समाचार दिये हैं ?'

'समाचार तो भेजना ही पड़ा न ! आपकी अनुपस्थिति में ऑपरेशन के लिए दस्तखत कौन करता ? उनके घर से रोज कोई न कोई आता ही है—समाचार लेने। वे ही सारा खर्च कर रहे हैं। आपको तार भी उन्होंने ही किया था।' किशोर ने कहा।

'हाँ-हाँ, यह तो मैं भूल ही गया था। फिर तो मैं उन्हीं के घर जाऊँगा। वैसे मुझे किसी के घर रहना अनुकूल नहीं पड़ता। दूसरों के घर असुविधा नजर अंदाज करनी पड़ती है जिसकी मुझे आदत नहीं है।'

मुझे यह आदमी अभिमानी दीखा। उसे अपने धन पर गर्व था। उसकी अपेक्षा किशोर काफी नरम और उदार था। शायद वह अपनी माँ पर गया हो।

कुछ देर बैठ कर उसके पिता—'अब सुबह आऊँगा, सिस्टर, किशोर का ख्याल रखना।' कह कर चले गये। उनके जाते ही मैंने किशोर से पूछा—'किशोर बाबू, आपकी प्रकृति आपकी माँ पर गयी है न ?'

'तुम्हें कैसे लगा ?'

'तुम्हारे पिता जी को देख कर। तुम उन जैसे नही लगते, इसस सोचा कि अपनी माँ पर गये होगे।'

तुम्हारा अदाज ठीक है। पिता जी कठोर स्वभाव और स्वकेन्द्रित व्यक्ति हैं। अपनी सुख-सुविधा, अपन स्तर-बडाई का ही ख्याल रखते हैं। *लगता है, और सब तो उनके बडप्पन को पोषने के लिए ही हैं।* दूसरी शादी के बाद थोडे नरम हुए हैं। वैसे कोई मर रहा हो तब भी उनके भोजन का समय बदल नही सकता।' कहते हुए किशोर ने अपना मुह तकिया मे छिपा लिया।

'तुम्हारी माता की मृत्यु के समय भी शायद ऐसा ही हुआ होगा।'

'हाँ, मेरी मा अन्तिम श्वास ले रही थी और पिता जी अपने भोजन के समय को निभा रहे थे। भोजन के बाद पान खाकर पास के कमरे मे अगीठी ताप रहे थे। मैं उस समय १३-१४ वर्ष का था। पर याद है मुझे। भीड के बीच मेरी मा की आँखें पिताजी को ढूढ रही थीं और पिता जी वहा कहीं नही थे। मैं माँ के सिरहान उसका हाथ अपने हाथ मे लिए बैठा था। मैंन रोते-रोत उसके कान मे कहा—'मा, राम का नाम लो।' और मानो वह सब कुछ समझ गयी हो। माया ममता को छोड उसने आँखें बद कर लीं और धीरे से होठ फडके। उसके मुह पर अतिम शब्द राम था। मैंन ही उससे बुलवाया था—इसका सतोष है मुझे। पर पिताजी तो वहा थे ही नही।'

किशोर की आँखें भर आयी थी। मैंने सान्त्वना देने का प्रयत्न किया

तो वह और विह्वल हो आया। मैं उसके पास बैठ गयी।

'किशोर बाबू, यह ठीक नहीं। ऑपरेशन हुआ है और अभी टाँके ताजे हैं। अपनी माँ हरक को याद आती है। पर ऐसे समय तो मन पर काबू रखना ही पड़ता है।'

वह मेरे हाथ को अपने वक्ष पर रख कर धीरे-धीरे शान्त हो गया। मुझे उसका यह व्यवहार अच्छा नहीं लग रहा था पर मैं विरोध न कर सकी। मैं उसकी भावना को ठेस पहुँचाना नहीं चाहती थी।

• •

तीन

किशोर के पिताजी दो दिन ठहर कर चले गये। किशोर की देख-भाल रखने की सिफारिश करते हुए मुझे दो सौ रुपये और दिये। मुझे लगभग चौबीसो घंटे किशोर के साथ ही रहना पड़ता।

उस समय किशोर बी० एस-सी० मे था। एम० एस-सी० होकर विदेश जाना चाह रहा था। वह अपने हॉस्टल की, प्रोफेसरो की, विदेश की तथा अपनी भावी योजनाओ की ही बातें करता रहता।

पर उसकी तबियत सुधर नही रही थी। ऑपरेशन के बाद भी किडनी सड रही थी। उसे निकालने के लिए दूसरा ऑपरेशन जरूरी था। मुझे लगा किशोर के मन मे भय भर गया है। उसके पिता को इसकी सूचना तार से की थी पर वे आ नही सके। ऑपरेशन मे देरी नहीं की जा सकती थी। विष फैल जाने का भय था।

किशोर के नरेश चाचा उस दिन दो बार समाचार लेने आ गये थे। पर वे उन्ही की जाति के व्यापारी मित्र थे—उनके सबधी नही। यह मुझे किशोर से उसी रात मालूम हुआ।

'इस समय तो तुम्हारे सिवाय मेरा अपना यहाँ कोई नहीं है।'

'तो क्या हो गया? मैं अकेली ही काफी हूँ। ऑपरेशन के समय भी मैं तुम्हारे पास रहूँगी। अन्य कोई तो रह भी नहीं सकता।' मैंने उसे धीरज दिया।

'हाँ, यह ठीक है। यदि मुझे कुछ हो जाय तो तुम सामने ही रहोगी न?'

'ऐसी बात नहीं करते। तुम्हें कुछ नहीं होगा। ऐसा ही होता तो मैं ऑपरेशन होने देती?'

'पर मान लो कुछ हो जाय तो तुम मेरे कान में राम नाम जरूर कह

देना। और देखो—मैंने नाम लिखकर अपने जेब मे रख छोडा है। दोपहर इसीलिए तुमसे पेन ली थी।' उसने, कागज का एक टुकडा निकाला जिस पर अंग्रजी मे Rama लिखा हुआ था, मुझे दिखाया।

'यह क्या लिखा है?'

'वैसे तो राम लिखा है पर रमा भी पढा जा सकता है। कैसा कमाल है तुम्हारे नाम में।'

मैं उसकी बात पर हँस पडी।

'इस कागज को छाती पर रख कर मैं ऑपरेशन करवाऊँगा।'

'भले, राम के लिए तो मैं कुछ नहीं कह सकती पर रमा यहाँ हाजिर होगी ही और तुम्हारे लिए मैं ऑपरेशन के समय मन मे राम नाम का जप करती रहूँगी, ठीक है न।'

'नहीं, इतना ही नही, शायद कल मैं मर भी जाऊँ। मुझे अतृप्त न छोडो। एक बार अपने वक्ष पर सिर रखकर सोने दो। मरते आदमी की इतनी इच्छा—'

'किशोर बाबू मैं तुम्हारी पेड नर्स हूँ। इसका अर्थ यह नही कि मैं तुम्हारी हर इच्छा की पूर्ति करूँ। मैंने कहा न कि आपको कुछ नहीं होगा। आपको अपने हाथ इतनी दूर तक नहीं फैलाने चाहिये। मैं समझती हूँ कि यह आपकी नादानी है—इसी कारण मैं इसे गभीर नही मानती पर आपको ऐसा सोचना नही चाहिए।'

'मुझे नही लगता कि मैं कुछ गलत विचार रहा हूँ।'

'मात्र तुम्हारे विचारने का प्रश्न नहीं है मेरे शील का भी प्रश्न है। मैं एक घर कुटुम्ब वाली परिणीता स्त्री हूँ और तुम बालक हो। तुम्हें नीरोग होने की जरूरत है और इसके लिए मेरी जरूरत है और यदि तुम ऐसा ही करोगे तो मुझे अपनी ड्यूटी बदलवानी पडेगी।'

'प्लीज नो, डोन्ट बी सो क्रुयेल।'

'तो फिर व्यर्थ के विचार करना छोड दो और आराम करो।'

'छोडने से विचार नही छूटते, वे तो बस आते ही जाते

तुम्ही कुछ बात करो न। यू पास बैठकर बातें करने से तुम्हारा स्वत्व नष्ट नही हो जायेगा।' उसने कटाक्ष किया।

'यू तो मेरा स्वत्व कैसे भी नष्ट नही हो सकता।' मैंने कहा। फिर तुरन्त पता नही क्या हुआ कि झुक कर मैंने उसके गाल पर एक हल्का चुबन ले लिया।

'बस न ?' मैंने पूछा।

'हाँ बस। यह स्मृति तो सारी जिन्दगी साथ रहेगी।'

किशोर बेहद खुश हो गया था। लगता था उसे चाहनेवाला कोई मिल गया है। उसके इतने निकट पहुँचनेवाली मैं प्रथम स्त्री थी। मेरे साथ वह और क्या कर सकता है यह न जान पाकर वह प्रेम करने लग गया था। उसके प्रेम मे कोई विकार नही था। पर प्रेम में कब विकार पैदा हो जायगा इसकी किसे खबर होती है ? ज्यो बादलो मे सुबह-शाम रग भर आते हैं।

किशोर मुझसे कहता रहा था कि 'पिताजी ने चौबीसो घटे हाजिर रहने के लिए कहा है इसलिए हाजिर ही रहना चाहिये—जरूरी नहीं है। अनुकूलता से ही रहना।'

'तुम्हारे पिताजी आ जायें और मुझे न पायें तो आकाश पाताल एक कर दें।'

'लगता है थोडी ही देर मे तुम्हे पिताजी का पूरा परिचय मिल गया है।'

किशोर हँस रहा था। वह जब भी हँसता बालक-सा दीखता। मुझे लोगो का हँसना अच्छा लगता है। लक्ष्मण राव को यह अच्छा नही लगता। किसी के हँसने से उसे चिढ है और जब वह चिढता है तब देखते ही बनता है, क्योकि उसकी चिढ का कोई अर्थ नही होता। नन्ही रीता भी यह महसूस करती है। वह लक्ष्मणराव को चिढाती और फिर ताली बजा कर हँसती—कैसा चिढाया !

मैं उसे ऐसा करने से रोकती किन्तु वह छोटी-सी बालिका मे भी

अपने प्रति सम्मान पैदा नही कर पाया था।

ऑपरेशन थियेटर मे जा रहे किशोर ने जिन नजरो से मुझे देखा था —मैं शायद जिन्दगी भर नहीं भूल पाऊँगी। अपार प्रेम की ही ऐसी अभिव्यक्ति हो सकती है। मानो अपने प्राण मुझे सौंपकर खाली हाथ जा रहा हो। वह अपनी आखो से मुझे अदर खीच रहा था। अपने श्वास मे मुझे पी रहा था। मानो उसने मुझे पूरी तरह से ओढ लिया था।

ऑपरेशन के समय नरेश बाबू के अलावा वहा कोई नही था। ऑपरेशन सफल हुआ था पर जब निश्चेष्ट-से किशोर को उसके पलग पर लिटाया जा रहा था मैं हिल उठी थी उस समय। देह की ऐसी अवस्था तो मैंने कितनी ही बार देखी थी पर किशोर आत्मीयता से बँध गया था।

सुबह साढे दस बजे उसके सबधी—मौसी के पुत्र-पुत्री—वहा आ पहुँचे थे।

उन्होंने किशोर की चाकरी का बोझ उठा लिया था। उनके लिए यह बोझा ही था। उन्हे शहर घूमने की लालसा थी। पिता द्वारा मिले पैसो से खरीदी करनी थी। जिसके लिए वे आये थे उसकी अस्वस्थता के प्रति वे उदासीन थे।

मुझे अब काम नहीं करने देते थे। अब मैं चौबीसो घंटे नही रहती थी। मुझे इस काम के लिए जो फीस दी गयी थी—वह पूरी हो गयी थी। अब मेरी ड्यूटी भी बदल गयी थी। अब मैं दिन मे दो बार किशोर की खबर पूछ लेती। चार्ट देखकर दवा-स्वास्थ्य की जानकारी पा लेती।

एक शाम किशोर ने कहा—'कल मुझे छुट्टी मिल रही है। इस समय तो मैं अपने गाँव जा रहा हूँ। जरा स्वस्थ होने पर यहाँ पढ़ने के लिए लौटूगा। तब आपसे जरूर मिलूगा। आप अपना पता देंगी ?'

मेरा पता तो यही हॉस्पिटल है।'

'नहीं, मैं घर का पता चाहता हूँ। मेरे आपके घर आने पर कोई आपत्ति है ?'

'नहीं-नहीं, आपत्ति क्यों होगी ? पर रोगी घर आते रहें यह अच्छा

नहीं । अनुकूल भी नहीं रहता । घर के लोगों को भी ठीक न लगे।'

मैंने देखा किशोर रूठ गया है पर इसकी परवाह किए बिना ही मैं वहाँ से चल पड़ी। पर जिस समय वह घर जाने के लिए निकल रहा था—मैं अपने आपको वहां जाने से रोक नहीं पायी। कागज के एक टुकड़े पर अपना पता लिखकर साथ ले गयी थी।

मुझे देखते ही वह प्रसन्न हो उठा था। उसका रोम-रोम आनन्द विभोर था। वह सौ रुपयों की नोट निकाल कर मुझे देने लगा।

'जाते समय मेर कार्य का पुरस्कार दे रहे हैं ?' मैंने पूछा। 'एक नर्स को इतना बड़ा इनाम नहीं दिया जाता। दो-पांच रुपय हो तो ठीक—सेवा की कद्र करने के लिए। वैसे तो उसे वेतन मिलता है। क्यों, ठीक कह रही हूँ न बहन ?' उसके समीप खड़ी उसकी बहन से मैंने पूछा।

'बात तो ठीक है।' उसे कहना पड़ा।

'इसे किसी की याद मान लो।'

शायद याद की कीमत होगी यह।' मैं बोल पड़ी।

'ऐसा न कहे। यादों की कोई कीमत नहीं होती इतना तो मैं समझता हूँ।'

'समझते हैं तो रुपयों को जेब में रख लें और अब निकलें, देर हो रही होगी। और देखो, डाक्टर ने कहा तो होगा फिर भी कहती हूँ—परहेज से रहना। कॉफी बिलकुल बन्द। टमाटर, भाजी आदि भी नहीं, अब तुम्हारा शरीर केवल एक किडनी के सहारे है। दूसरी किडनी के बिगड़ने पर डॉक्टरों के पास कोई उपचार नहीं है। इतना याद रखना और शरीर का ध्यान रखना।'

'अवश्य। पर आपने मेरा मन नहीं रखा।' उदासीनता से घिर कर कहा उसने। अपनी दृष्टि-डोर से मानो उसने मुझे बाँध लिया था, मेरे अंदर समा जाना चाहता था जिससे कभी भी बिछुड़ा न जा सके।

'अपने मन को तोड़कर तुम्हारे मन को कैसे रखू ? पर इन मन रखने और टूटने की बातों को भूल जाओ। शरीर का ध्यान रखना। तुम्हारे

सामने विशाल भविष्य है। अध्ययन कर नी देने के लिए
मिलेंगे।' कह कर मैंने पीठ फेर ली चित्र ढग
हो गयी।

□

सतीश के ड्यूटी पर निकलते ही मैंने दर
पास के लोगो का मुझे डर लगता है। सवाल
कर दें।

मुझे खबर नहीं सतीश ने इन सबसे मेरे विष , क्या कहा होगा। आसपास के लोगों मे घुलमिल जाऊँ और सयोग से इनसे से कोई पूर्व परिचित निकले तो सारा भूतकाल जिसे मैंने यहाँ छिपा रखा है—खुल जाय। मकान मालिक हमे निकाल भी दे। जो दो व्यक्ति किसी भी सबध स बँधे न हो उन्हे कौन साथ रहने देगा ? इसी कारण मेरे लिए उन दो कोठरियो में अपने आपको बन्द रखना ही बेहतर था।

परन्तु यह दुनिया हमें हमारे एकान्त मे से बाहर खीच ही लाती है। दुनिया को हमारे एकात महल को तोडने मे ही रस है।

कुछ ही देर बाद मकान मालिकिन सुमन बहन ने दरवाजा खट-खटाया 'रमा बहन'। तो इन्हे मेरा नाम मालूम है। सतीश ने ही कहा होगा। वह क्यो कर मेरे नाम का ढिढोरा पीटता फिरता होगा ? शायद वह यह जताना चाहता होगा कि इस उम्र मे भी वह स्त्री ला सकता है। पर लोग जब मुझे देखेंगे तब क्या कहेंगे ?

यह तो हुई मेरी बात। सतीश की स्थिति मुझसे अलग हो सकती है। मैं चालीस वष की नर्स रमा उसके योग्य गृहिणी हो सकती हूँ। शायद हूँ भी।

मैंने दरवाजा खोला। सुमन बहन ने अदर आते ही पूछा—'क्या कर रही हो इस समय ? अकेली बैठी हो तो चलो न मेरे कमरे मे ही बैठें। बातें करेंगे।'

'अभी तो नहीं, बाद मे आऊँगी। अभी मेरा गीता पाठ

नहीं। अनुकूल, गीता पाठ करती हो ? ठीक, हमे भी किसी दिन कुछ पढ़ मैंने दैना। वैसे मैं इसलिए आयी थी कि तुमसे पूछ लूं—काम-काज वहाँ लिए कोई आदमी चाहिए ?'

'हा, आदमी तो चाहिए ही। इसी समय बर्तन जूठे पड़े हैं।'

'तो चलो मेरे साथ, मेरी नौकरानी से बात कर लो।'

'इसमे मैं क्या बात करूँगी ? आप जो कुछ देती होंगी मैं भी दे दूँगी। अथवा आप जो कहगी, दे दूँगी।'

'मैं तो केवल बतन साफ करवाती हूँ।'

'नही, मुझे तो बर्तन-कपड़े साफ-सफाई आदि सभी काम करवाने हैं।'

'मैं उसे यहीं बुला लाती हूँ।' कहकर उन्होंने आवाज लगायी—अरी कमली, यहाँ तो आ।'

कमली काम करते-करते वहाँ आ पहुँची। ऊँची, श्यामा, इकहरे बदन की चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़की थी वह।

'देखो, ये पति-पत्नी कुल दो आदमी हैं—इनके घर का काम करना है—बर्तन, कपड़े, साफ-सफाई और भी जो काम बतायें करना होगा। बोल क्या लेगी ?'

'भोजन के साथ बीस रुपये। नहीं तो पच्चीस।' उसने तुरन्त हिसाब दे दिया।

'भोजन के लिए बँधती नहीं, बनेगा तो दूँगी ही। पर तुम्हारे पच्चीस मजूर करती हूँ। आज से ही काम शुरू कर दो।'

'ठीक ही है। आज की महगाई मे इतना तो कोई भी माँगेगा ही।' कहते सुमन बहन चली गयी।

'बहन का काम पूरा करके अभी हाल आती हूँ, कहकर नौकरानी भी चली गयी।

दोपहर केशूभाई समाचार लेने आये। वे प्रसन्न मन अन्दर आये। उनके मन पर संतोष की जगह गर्व झलक रहा था। मेरा नया घर इन्हीं के प्रयत्नों से सम्भव हुआ था। उनके प्रति औपचारिकता की जरूरत नहीं

थी। केशू भाई कुर्सी मे बैठ गये। कमली से मैंने उन्ह पानी देने के लिए कहा और खुद पलँग पर बैठ गयी। केशूभाई कमली को एक विचित्र ढग से ताक रहे थे। मुझे यह अच्छा नहीं लगा।

'इस समय कोई काम नही है इसलिए घर जाऊँ?' कहकर कमली चली गयी।

'दो आदमियो के काम के लिए कामवाली की क्या जरूरत थी?' केशूभाई न सीधा प्रश्न किया।

'तो सारे काम कौन करे? मुझसे ये सब काम नहीं होते। मैं यहा कोई मजूरी करने नही आई हूँ।'

देखो, मैं तुमसे कह देता हूँ—यह आदमी लखपती नही है। पाई-पाई का हिसाब गिननेवाला आदमी है। इसलिए यह आदमी मिल गया है तो लाटरी लग गयी है—ऐसा मत मानना। कितने रुपये महीने मे तय हुई है?'

'पचीस रुपयो मे।'

'पचीस रुपये महीने कामवाली को, सौ रुपये किराया, फिर उसके वेतन मे बाकी क्या रहा? जानती हो न?'

'ये सारी बात जान कर मैं क्या करूँगी? घर मे स्त्री रखना हो तो ये खर्च तो करने ही पडते हैं न।'

'मैं तुम्हारे साथ बहस नही करना चाहता। तुम्हारी मानसिक स्थिति भी नामल नही है, इसलिए बात नही बढाता पर, यदि समझ कर काम करोगी तो सारी जिंदगी सुख-शान्ति से बीत जायेगी।'

'नहीं तो तुम्हारे घर बोझ बन कर आ पड़ूगी—इसकी चिंता है?'

'मुझे इसकी चिंता नहीं है यह तो तुम पहले से ही जानती हो। यदि यदि तुम मेरे घर आकर रही होती तो ये सारी झझट क्यो पैदा होती? पर तुम मानती कब हो?'

'मुझे मेरा अपना घर चाहिए जहां मैं स्वामिनी होऊँ। तुम्हारे या किसी के भी घर मे मेहमान बन कर कितने दिन रहा जा ..

'मेरे घर की तुम स्वामिनी ही रहो।'

'और तुम्हारी पत्नी, बालक, ये कौन हो ?'

'मुझे विश्वास है कि वे सब तुम्हारी इच्छा का मान रखेंगे।'

'विश्वास तो मुझे भी है पर इस मान के उपकार का बोझ मुझे सह्य नही। हर पखी को अपना अलग घोसला चाहिए और आपने मेरे लिए यह ढूढ दिया है, इसका आभार मानती हूँ।'

'तुम हमेशा मानसिक व्यग्रता मे रहती हो। जाने दो इन बातो को। नये घर की खुशी मे मिठाई खिलाने के लिए भी नही बुलाया तुमने ?'

'समाचार पूछने आने के लिए भी कब बुलाया था मैंने ?'

'तो मैं चलू !' वे खडे हो गये।

'भले।'

'आना, ऐसा तो कहो।'

'ऐसा कहने की क्या जरूरत है। यह घर तुम्हारा ही जमाया हुआ है। इसलिए कभी भी आने की और जाने की छूट है।'

केशू भाई जाते-जाते बैठ गये और शाति से मुझे समझाते हुए बोले—

'तुम्हारे हित के लिए ही मैंने यह किया है। अभी तुम्हे अच्छा नही लग रहा होगा—यह मैं समझता हूँ। थोडी तकलीफ उठा लेना। जिंदगी में काफी सहा है—थोडा और सही। मुझे लगता है अब तुम्हें ज्यादा सहन नहीं करना पडेगा। यह आदमी तुम्हे ठीक से रख सकेगा। और याद रखना यदि यह आदमी तुम्हें नहीं रख सका तो दुनिया का कोई भी व्यक्ति तुम्हें नहीं रख पायेगा।'

चाहे भी जितनी व्यग्रता हो, मैं इतना तो नहीं भूलती कि केशू भाई के मन में मेरे प्रति काफी हमदर्दी है। वे जो कुछ भी करते हैं मेरे हित के लिए ही करते हैं। उनके घर का द्वार मेरे लिए हमेशा खुला रहता है। हर आदमी को ऐसा एक आसरा तो चाहिये ही न ! जब सारी दिशाएँ मना कर दें, सारे रास्ते बद हो जायँ, तब ऐसा एकाध सहारा मन को धीरज देता रहता है।

'इस आदमी के साथ मेरा कोई सम्बन्ध स्थापित नही हो पाया है—जिससे परेशानी है। ये अच्छा आदमी है पर पत्नी बन कर मैं इसे सुख नही दे सकती। बाहरी व्यवहार मे भी यह अभिनय नही हो पाता।

'तुम पूर्व निश्चित ढग से चलना निश्चित कर लेती हो इससे यह परेशानी होती है। तुम मुक्त रहो। ऐसा क्यो नही सोच लेती कि जो जिस तरह होना है—उसी तरह होगा।'

केशू भाई की यह बात मेरी समझ मे आ गयी है।

'आपकी बात ठीक है। जो होना है उसे होने देना पडेगा? जब आ पडेगी तब सोचा जायगा।'

केशू भाई और मैं, हँस पडे। केशू भाई उठ खडे हुए और घर मे चारो ओर एक दृष्टि दौडाई—सब कुछ व्यवस्थित है न!

'तुम अपना सामान नही लायी?'

'नहीं, सामान आश्रम पर ही रहने दिया है। बाद में ले आऊँगी। यहाँ अनुकूलता लगेगी तब। मैं समझती हूँ, आपको यह अच्छा नही लगा होगा। सतीश को भी ठीक नहीं लगा था। पर मैंने यही ठीक समझा था। अब क्या हो? अब जो हो गया है उसे जल्दी तो बदला नहीं जा सकता। बात अपने बस मे नही रह जाती।'

'चलो, जो हुआ सो ठीक। पर अब प्रेम से, विश्वास से उसके साथ व्यवहार करना।' केशू भाई ने कहा पर मुझे यह अच्छा नही लगा।

'मैं काई नयी नवेली होऊँ और पहली बार ससुराल जा रही हूँ ऐसा समझ कर शिक्षा देते जा रहे हैं आप! बोलिए क्या लेंगे? चाय या कॉफी?'

'पिलाओगी वही पी लूगा।' केशू भाई हँसे।

'मैं कहाँ जानती थी कि आप पीने के लिए हाँ कर देंगे! अक्सर तो आप मना ही कर देते हैं। घर मे दूध ही नही है। इस मौके पर हँसा ही जा सकता है। और नौकरानी भी चली गयी है।'

'कोई जरूरत नहीं। मैं जा रहा हूँ। कुछ काम है?'

'और तो कुछ नहीं, कुछ रुपये हो तो देते जाइए। नया घर है। कुछ जरूरत ही आ पड़े। शुरू-शुरू में उनसे पैसे न माँगना पड़े तो अच्छा।'

'ठीक है।' कहते हुए उन्होंने जेब में हाथ डाला और पर्स से चालीस रुपये निकाल कर दिए। 'इतनों से काम चाल जायगा?'

'चलेगा, और अधिक की जरूरत होगी तो आप कहाँ आनेवाले नहीं हैं?'

'फिलहाल तो मैं एकाध दिन बीच में छोड़कर आता रहूँगा। तुम सुबह शाम डॉक्टर की दी गोली लेना न भूलना। दिमाग शांत रहेगा। व्यर्थ ही उग्र न हो उठोगी।'

'अभी आप ही पर उग्र हो आयी थी न!'

'मुझ पर तुम कितनी भी नाराजी व्यक्त करो मुझे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं। तुम्हे मुझ पर नाराज होने का हक है।'

'अभी तो नाराज होकर चले जा रहे थे।'

'पर गया कहाँ? और चला भी गया होता तो साफ पड़े आता ही। तुम पर मैं नाराज नही हो पाता।' कहते हुए वे खड़े हो गय।

'मैं कहा नही जानती? अच्छा आना। बन सके तो कल ही आना। कुछ दिन ख्याल रखते रहना।'

'तुमने न कहा होता तो भी कल आता। मेरा मन यही रहता है। तुम्हारा जीवन सुखी हो जाय तो मेरे मन को शान्ति रह।'

'शान्ति तो आप को मेरे मरने के बाद ही मिलेगी।'

'अच्छा तो चलू। सतीश भाई को मेरी याद दिलाना।'

केशू भाई चले गये। आँखें झप रही थी। रात जागते ही बीती थी। दिल धधक-धधक, उठता था। ऐसा तो शादी के बाद पहली बार ससुराल पहुँचने पर भी नही हुआ था।

आज शाम जब सतीश आयेगा, तब? आज की रात शायद हमारे सम्बन्धों को नाम दे दे! वह कहता है—उसे कोई अपेक्षा नही है। पर मेरे गले यह बात उतरती नहीं। कैसे माना जाय कि कोई व्यक्ति किसी

का हाथ किसी अपेक्षा के बिना ही पकडेगा—यही तो चिंता का कारण है।

रात यदि वह मेरे समीप सो जाने की इच्छा व्यक्त करेगा तब मैं क्या कर पाऊँगी ? उससे मना करना भी योग्य नहीं है। स्वीकार भी सभव नहीं है। जब तक वह मेरे मन में अपने प्रति समर्पित हो जाने की उत्कठा पैदा नहीं कर पाता तब तक मैं उसे अपना शरीर नहीं ही सौंप सकती। अन्यथा यह व्यभिचार होगा। व्यभिचार के आवरण से मैं अपने घर को आच्छादित नही करना चाहती। फिर वह घर कैसे होगा ? व्यभिचार का आवरण घर मे प्रकाश की रेखा नही आने देता। घर काजल-कोठरी बन जाता है।

और अब मेरे शरीर मे रखा भी क्या है ? यह एक ऐसा तालाब है जिसमे एक भी मछली जीवित नही रह पायी है। कोई इसमे जाल डाल कर क्या पायेगा—इसका भय भी तो है मन में। मेरे शरीर का स्पर्श सतीश को निराशा क अलावा और क्या दे सकता है ? तब ?

देहली पर खडी हूँ। सो जाना है पर सो पाती नही। शाति चाहिए पर मिलती नही घर मे अकेली पडी हूँ—पलग पर। लगता है कि दरवाजा खुला और बद हुआ। परदा गिरता है। मैं धारदार छुरी से परदा चीर डालती हूँ। परदा से खून टपकने लगता है। सतीश झुककर अपना अँगूठा उसमे भिगोता है और मेरे कपाल पर तिलक करता है।

'तुम्हारा सौभाग्य तिलक !'

'मैं प्रतीक्षा करती रहती हूँ कि वह अभी-अभी कहेगा—'तुम बहुत सुन्दर लगती हो। पर वह कुछ भी नहीं बोलता।

• •

चार

सतीश ने जिस समय दरवाजा खटखटाया मैं निद्रा मे थी। द्वार खोलते रोमाच हो आया था। सोते समय बहुत से विचार आ रहे थे पर इस समय थोडी हलकी हो आयी थी।

सोच रखा था—उसके आने के पहले कपडे बदल कर तैयार हो जाऊँ पर अब यह कैसे हो सकता है ? द्वार खोलने के पहले दर्पण मे मुह देख लिया था, बालो पर कघी फेर ली थी और साडी ठीक करने के बाद ही दरवाजा खोला था।

'सो गयी थीं ?' अदर आते ही सतीश ने पूछा।

'हाँ, आँख जरा लग गयी थी। पिछली रात जागते ही बीती थी।' मैं बोल पडी थी पर फिर इतनी लज्जा आयी कि यदि मैं नन्ही बालिका होती तो दोनो हथेलियों से मुह छिपा लिया होता।

लगा कि सतीश ने मेरी लज्जा पहचान ली है—पर क्या करे वह, यह वह नहीं समझ पाया।

उसने धीरे से मेरे कान मे कहा—'मैं भी कल रात सो नहीं पाया था। नौकरी पर तो जाना ही था इसलिए गया नहीं तो सो न रहा होता यहाँ, तुम्हारे साथ।'

फिर वह लजा गया।

पुरुष लजा जाय यह अच्छा नही लगता। पुरुष थोडा बेशर्म हो—*होना चाहिए, ऐसा मैं मानती रही हूँ। मेरा अनुभव भी यही कहता है।* स्त्री-पुरुष के बीच लज्जा स्त्रियो के लिए है। पुरुष जितना निर्लज्ज बन सके उतना पुरुष लगता है स्त्री को। चाहे ।

'बोलो, मैं क्या लाया होऊँगा तुम्हारे लिए ?' सतीश ने पूछा।

शुरू मे ही मुझे लगा कि उसके हाथ में कुछ है। मेरे लिए कोई कुछ

लाया है यह जान कर ही मैं खुश हो गयी थी। मैंने उसकी नजर से नजर मिलायी। आनन्द व्यक्त करते हुए उसने आँखें मटकायी। ऐसा वह पहले भी दो-एक बार कर चुका था। इस उम्र में कोई इस प्रकार आँखें मटकाये, यह अच्छा नहीं लगता। मुझे लगा सतीश की यह आदत है। मैंने भी खुशी में उसका साथ देने के लिए आँखें मटकायी और बोली—

'तुम मेरे लिए साडी लाये हो। बोलो सच है न ?'

'हाँ, बिलकुल सच, पर कैसे जाना तुमने ?'

'इस पैकेट मे वस्त्र विक्रेता का नाम छपा है। किसी मूख को भी मालूम हो जाय कि इसमे क्या होगा।'

'और तुम कहाँ मूख हो जिसे उसकी खबर न पडे ?'

'अभी भी कोई मूर्ख बना जाय तो बन जाऊँ।' मैंने कहा।

'मुझे तो सब मूख बनाते आये हैं आज तक। लोगो की चालाकी दिखायी पड रही हो फिर भी कुछ किया न जा सकने की लाचारी। हँसते हुए मूर्ख बनना पडता है। कैसी विचित्रता है! जान कर भी सह लेना पडता है।'

'इतना कहते-कहते सतीश का चेहरा दयाजनक हो उठा था। मेरी तरह ही उस पर भी भूतकाल का भारी बोझ था। भूत को भूलकर निरे वतमान मे जीना कितना कठिन है ? भूतकाल की स्मृतियों के कारण ही तो मेरी मानसिक दशा इतनी नाजुक बन गयी थी जिसने आज मुझे सतीश के घर मे भेज दिया है कोई मेरी चिन्ता रखे ऐसे आदमी की शोध मे।

यही स्थिति सतीश की भी थी उसे भी भूतकाल की पीडाएँ शूल की तरह चुभ रही थीं। उसकी हर क्रिया शूल-पीडा को बुलावा देती थी। इस समय भी यही पीडा उसमे मुखर थी। मैं उसे धीरज दिए बिना न रह सकी।

'आप निश्चिन्त रहे। मैं आपको धोखा नहीं दूँगी, मूर्ख नही बनाऊँगी। हम दोनो के साथ दुनिया ने ऐसा खेल खेला है, ऐसा दगा दिया है कि हम एक दूसरे को भुलावे मे रखने की स्थिति मे ही नही हैं।'

'मुझे तुम्हारा पूरा भरोसा है।' कहते हुए सतीश ने पैकेट खोला।

चार

सतीश ने जिस समय दरवाजा खटखटाया मैं निद्रा मे थी । द्वार खोलते रोमाच हो आया था । सोते समय बहुत से विचार आ रहे थे पर इस समय थोडी हलकी हो आयी थी ।

सोच रखा था—उसके आने के पहले कपडे बदल कर तैयार हो जाऊँ पर अब यह कैसे हो सकता है ? द्वार खोलने के पहले दर्पण में मुह देख लिया था, बालो पर कघी फेर ली थी और साडी ठीक करने के बाद ही दरवाजा खोला था ।

'सो गयी थीं ?' अदर आते ही सतीश ने पूछा ।

'हा, आँख जरा लग गयी थी । पिछली रात जागते ही बीती थी ।' मैं बोल पडी थी पर फिर इतनी लज्जा आयी कि यदि मैं नन्हीं बालिका होती तो दोनो हथेलियों से मुँह छिपा लिया होता ।

लगा कि सतीश ने मेरी लज्जा पहचान ली है—पर क्या करे वह, यह वह नही समझ पाया ।

उसने धीरे से मेरे कान मे कहा—'मैं भी कल रात सो नहीं पाया था । नौकरी पर तो जाना ही था इसलिए गया नहीं तो सो न रहा होता यहाँ, तुम्हारे साथ !'

फिर वह लजा गया ।

पुरुष लजा जाय यह अच्छा नही लगता । पुरुष थोडा बेशर्म हो—होना चाहिए, ऐसा मैं मानती रही हूँ । मेरा अनुभव भी यही कहता है । स्त्री-पुरुष के बीच लज्जा स्त्रियों के लिए है । पुरुष जितना निर्लज्ज बन सके उतना पुरुष लगता है स्त्री को । चाहे ।

'बोलो, मैं क्या लाया होऊँगा तुम्हारे लिए ?' सतीश ने पूछा ।

शुरू मे ही मुझे लगा कि उसके हाथ में कुछ है । मेरे लिए कोई कुछ

लाया है यह जान कर ही मैं खुश हो गयी थी। मैंने उसकी नजर से नजर मिलायी। आनन्द व्यक्त करते हुए उसने आखें मटकायीं। ऐसा वह पहले भी दो एक बार कर चुका था। इस उम्र में कोई इस प्रकार आखे मटकाये, यह अच्छा नही लगता। मुझे लगा सतीश की यह आदत है। मैंने भी खुशी मे उसका साथ देने के लिए आखे मटकायी और बोली—

'तुम मेरे लिए साडी लाये हो। बोलो सच है न ?'

'हा, बिलकुल सच, पर कैसे जाना तुमने ?'

'इस पैकेट म वस्त्र विक्रेता का नाम छपा है। किसी मूर्ख को भी मालूम हो जाय कि इसमे क्या होगा।'

'और तुम कहा मूख हो जिसे उसकी खबर न पडे ?'

'अभी भी कोई मूर्ख बना जाय तो बन जाऊँ।' मैंने कहा।

'मुझे तो सब मूर्ख बनाते आये हैं आज तक। लोगा की चालाकी दिखायी पड रही हो फिर भी कुछ किया न जा सकने की लाचारी। हँसते हुए मूर्ख बनना पडता है। कैसी विचित्रता है! जान कर भी सह लेना पडता है।'

'इतना कहते-कहत सतीश का चेहरा दयाजनक हो उठा था। मेरी तरह ही उस पर भी भूतकाल का भारी बोझ था। भूत को भूलकर निरे वर्तमान मे जीना कितना कठिन है ? भूतकाल की स्मृतियों के कारण ही तो मेरी मानसिक दशा इतनी नाजुक बन गयी थी जिसने आज मुझे सतीश के घर मे भेज दिया है कोई मेरी चिन्ता रखे ऐसे आदमी की शोध मे।

यही स्थिति सतीश की भी थी उसे भी भूतकाल की पीडाएँ शूल की तरह चुभ रही थीं। उसको हर क्रिया शूल-पीडा को बुलावा देती थी। इस समय भी यही पीडा उसमे मुखर थी। मैं उसे धीरज दिए बिना न रह सकी।

'आप निश्चित रहे। मैं आपको धोखा नहीं दूँगी, मूर्ख नहीं बनाऊँगी। हम दोनो के साथ दुनिया ने ऐसा खेल खेला है, ऐसा दगा दिया है कि हम एक दूसरे को भुलावे मे रखने की स्थिति में ही नही हैं।'

'मुझे तुम्हारा पूरा भरोसा है।' कहते हुए सतीश ने पैकेट खोला।

यह जरीकाम की महँगी साड़ी खरीद लाया था। हरे रंग के रेशमी पोत पर जरी की बूटियाँ थीं। आंचल भी ऐसा ही था।

'इतनी मँहगी साड़ी क्यों खरीदी?'

'नए घर में मेरी तुम्हें प्रथम भेंट। साड़ी मँहगी नहीं है। इसके पीछे रही भावना जरूर मँहगी है। इतना याद रखना।' वह बोल पड़ा।

मुझे फिर यही लगा कि वह किसी पुस्तक का रटा हुआ संवाद बोल रहा है।

'अब मुझे पहन कर तो दिखाओ।' उसने कहा।

मानो वह अपनी कल्पना को साकार करना चाह रहा था। साड़ी में उसने जिस देह की कल्पना की होगी—वह है मेरे पास? मैं जब इसे शरीर पर लपेट लूँगी—उसकी कल्पना बिखर नहीं पड़ेगी?

मैंने कहा—'इस समय नहीं। पहले रसोई कर लू। भोजन कर लें, उसके बाद।'

'बाद मे पहनूगी' के अनेक अर्थ सकेत उसके मन म उभरते दीख पड रहे थे। वह नजर झुका लेता और फिर चोरी से मेरी ओर देख लेता। 'बाद मे पहनूगी' का अर्थ ढूढ रहा था। मेरी आँखें उसके मनोवाछित अर्थ को समर्थन दे दें इसकी प्रतीक्षा मे थी उसकी आँखें। साड़ी लेकर मैं रसोई घर में चली गयी। उसके लिए पानी लायी।

'आदमी इसीलिए तो घर चाहता है न। हम घर पहुँचें तो कोई हमारी प्रतीक्षा करता हो। और कुछ नही तो पानी तो मिल जाय। जीने के लिए इतना ही काफी है।' पानी का ग्लास पकडते हुए सतीश बोला। वह प्रसन्न दीख रहा था।

'आपको चाय पसंद है?' मैंने पूछा।

मुझे उसकी रुचि, अरुचि जानना बाकी था।

'बहुत पसद है। इस समय मिलेगी?'

मैं उदास हो आयी। उसने एक इच्छा व्यक्त की थी और उसे पूरी करने मे मैं असमर्थ थी। घर में दूध नहीं था।

'आप कपड़े बदले, तब तक मे मैं दूध लिए आती हूँ और चाय बना देती हूँ।' मैंने कहा।

और तब मैंने सोचा—क्यो केशू भाई से मैंने ऐसा नही कहा और सतीश से ही कहा। ऐसा क्यो हुआ ?

'नही, नही तुम्हे दूध लेने जाने की जरूरत नही है, मैं ले आता हूँ।'

'मैं हूँ घर मे, फिर आपको जाने की क्या जरूरत ?'

इतने मे ही कमली आ पहुँची 'कुछ काम है बहन ?' उसने कहा और मैंने उसे दूध लेने भेजा।

'इसे मैंने घर के काम के लिए रखा है।' मैंने ससकोच कहा। मन म केशू भाई का पैदा किया हुआ भय चिढा रहा था। सतीश ने 'ठीक किया' कह कर इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसने यह नही पूछा कि इसे क्या देना होगा और न मैंने ही कहा। मन म यह भय भी था कि पचीस रुपया देना उसे पसद आय, न आये।

पास की आलमारी मे साडी रख दी थी। मैं रसोई घर मे चाय बना रही थी। सतीश यदि चाहे तो इस समय मेरे पास बैठ सकता है। किशोर इसी तरह से बैठ जाया करता था। परन्तु सतीश किशोर नही बन सकता। और कुछ नहीं तो इसकी उम्र इसे ऐसा नही करने दे सकती। मन मे किशोर उभरने लगा। मेरा इन्दौर का घर, लक्ष्मणराव, रोता, प्रियगु

मस्तिष्क की नसें खिच रही थी। आँखो का भार, असह्य लग रहा था। मैं धुंए का गोला थी जिसे आकाश की ओर उछाल दिया गया हो। हवा जिसे क्षण भर में बिखेर देगी। सामने तपेली मे चाय उफन रही थी। कमली दूध ले आयी। चाय के उफनते पानी मे दूध डाल दिया। उफान दब गया।

मैं तुरन्त उठी और आलमारी में रखी दवा खा ली। थोडा ओवरडोज हो जाय तो चिन्ता नहीं पर यहाँ पहले दिन ही ऐसी बेचैनी का होना

ठीक नहीं।

यदि मन उद्विग्न हो जाय तो मन का ठिकाना नहीं रहता। कुछ के कुछ जवाब दे दिये जाते हैं। सीधी-सादी बात से भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है।

कमली ने पूछा—'बहन, ये साहब हैं?

'हाँ' कहने के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं था। उसने बात का तुरन्त अनुसंधान किया—'साहब आपसे काफी बड़े लगते हैं। इनके सामने आप बहुत छोटी लगती हैं।'

'साहब तो बड़े ही होते हैं न!' कहकर मैंने उसकी बात काट दी। 'दीखते हैं उतने बड़े नहीं हैं ये।' मैं हँस पड़ी।

'आप बैठें। मैं चाय बना लाती हूँ।' उसने कहा। मेरे यह बताने की चेष्टा पर कि कप-रकाबी कहाँ रखी है—उसने कहा कि वह सब तो मैं ढूँढ़ लूंगी।

मैं बाहर जाकर बैठी। सतीश कुर्सी पर बैठा था—इसलिए मैं पलंग पर बैठी।

'कमला चाय ला रही है।' मैंने स्पष्टता कर दी।

चाय पीते-पीते उसने इतना ही पूछा कि यहाँ मुझे कैसा लग रहा है? सारा दिन कैसे बीता?

'सारा दिन तुम्हारा इन्तजार करते कैसे बीत गया, पता भी न चला।' ऐसे ही किसी उत्तर की अपेक्षा रही होगी उसको, पर यह गलत था, मैं ऐसा नहीं कह सकी।

किसी को अच्छा लगता हो तो झूठ बोलने में मुझे कोई दिक्कत नहीं, पर अब मुझसे यह नहीं होता। अब मुझे ऐसे शब्द शोभा भी नहीं देंगे।

'दोपहर केशू भाई समाचार लेने आये थे।' बात शुरू करने के लिए मैंने कहा।

'उन्हें तुम्हारी काफी चिन्ता है।'

'वे आपको याद कर रहे थे।'

'वे शाम आये होते तो मुलाकात हो जाती।'

सतीश यह सहज ही बोला था या व्यग्य मे, समझ नही पायी। केशू भाई को सतीश की गैर हाजिरी में यहा नही आना चाहिए—ऐसा कुछ आशय लगा मुझे।

सतीश नाम के किसी पशु के पिंजरे में मुझे वन्द कर दिया गया था। मुझे उसके आक्रमण की बाट ही देखते रहनी थी। मन बेचैन हो रहा था।

सूर्य पश्चिम की ओर ढल रहा था। मेरे कमरे की खिडकिया पश्चिम की ओर हैं। सूय की लाल-पीली किरणे घर मे बिछ रही थी। सतीश मानो कोई फोटोग्राफ हो और फ्रेम से कूद कर आन खडा हुआ हो।

कमली मुझे रसोई मे मदद करने लगी थी। हमारे भोजन कर लेने के बाद वह काम पता कर घर गयी। हम दो रह गये। कुछ लोग जाग रहे थे और कुछ निद्रावश भी हुए थे। पर इन सब म हम जैसे शायद ही कोई होगे। एक दूसरे से बिलकुल अनजाने, अपरिचित।

मैं स्त्री हूँ—इतना ही सतीश जानता था और वह पुरुष हैं—इतना ही मैं जानती थी। इतने से किसी का परिचय नही मिलता और हम अपने पास किसी अनजान को सह नही पाते। किसी को न जानने से ही उसके प्रति चिढ उत्पन्न होती है।

यह सच है कि मुझे सतीश के आधार की जरूरत थी पर उसे पहचाने बगैर नही। मुझे उसे अच्छी तरह से जान लेना चाहिए था। उसके पूरे पचास-बावन वर्षों को गिन-गिन कर इकट्ठा करके अपनी आलमारी मे रख लेना था। मुझे अपने वर्ष उसे गिना-गिना कर सहेजने थे। परन्तु सतीश लेने या देने के लिए हाथ बढा ही नहीं रहा था।

उसकी खाट के पास ही मैंने अपना बिस्तर लगा लिया था। सतीश एक-एक क्रिया पर ध्यान रख रहा था। मेरे अब के व्यवहार पर ही मानो उसका भविष्य निर्भर हो, सारा मदार हो। मैं इतनी अबुध नहीं कि मैं उसका मन न पा सकू। पर मैं विवश हूँ। उसे अपना शरीर सौंप

कर तो मैं स्वार्थवश अपना शरीर बेचने वाली ही कही जाऊँ। मैं अपनी ही निगाह मे हलकी पड जाऊँ। फिर अपने जीवन को टिका रखने के लिए मेरे पास रह ही क्या जाय ? उसी क्षण मैं निराधार बन जाऊँ।

और सतीश मुझ पर आधार बांधे बैठा था। मैंने उसकी लायी नयी साड़ी पहनी और उसे दिखायी। एक बालक की सहजता से उसने कहा, 'रानी सी सुन्दर लग रही हो तुम।'

आज दूसरी बार यह शब्द सुनने को मिला। शब्द चाहे भी जैसा हो, शायद सतीश मुझे इसी नजर से देखता हो। उसके शब्दों मे सच्चाई भी हो सकती है। परन्तु इस शब्द को गले में बाँध कर मैं यदि फूल जाऊँ तो यह मुझे निश्चित रूप से डुबो दे।

मुझे कभी नहीं लगा कि मैं तैर कर उस पार जा सकती हूँ। क्या मृत्यु तक मैं प्रतीक्षा कर सकती हूँ ? किसी न किसी दिन मृत्यु का आह्वान करना ही पडेगा। लगता है यही मेरी नियति है।

परन्तु मुझे मेरे अविचारी, आदेश मय निर्णय को लेकर भविष्य का मार्ग छोड नही देना चाहिए था।

कपडे बदल कर मैं सोने के लिए तैयार हुई। सोने के पहले मैंने उससे स्पष्ट कह देना ही ठीक समझा, देखिए, मैंने आपसे पहले ही कह दिया है—मुझसे कोई उम्मीद न रखना। मेरा मन भी स्वस्थ नही है। फिलहाल तो मैं आपके किसी काम नही आ सकती। भविष्य मे किसी काम आ सकूंगी ऐसी झूठी आशा भी जगाना नही चाहती। आशा निःशेष भी नही करना चाहती। सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि मैं आपका घर सम्हाल लूंगी। तुम्हारे घर मे एक स्त्री है जो बाहर की दुनिया मे तुम्हारी पत्नी होने का दिखावा करती रहेगी। यदि इतने से तुम्हे सतोष हो तो—'

उसने मेरी बात काट दी 'इन बातो का विचार छोडो। मेरी भी चिन्ता मत करो। मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए। मैं अकेलेपन से ऊब गया हूँ। तुम घर होगी तो वह दूर होगी। अच्छे-बुरे समय मे धीरज

रहेगा। आदमी अकेला हो और बीमार हो तो दवा देने वाला भी कोई नही ! और घर में स्त्री हो तो ही घर घर लगता है। हकीकत मे मुझे तुम्हारी जरूरत है। तुम मेरे साथ रह कर ही मुझ पर उपकार कर रही हो। मुझे और कुछ नही चाहिए। क्या तुम यह मान सकती हो कि इस उम्र से मैं तुम्हे शरीर की लालसा से लाया होऊँगा ?'

'जाने दो इन बातो को। मुझसे अपनी, अपने घर की, कुटुम्ब-संसार की सारी बातें कहो। मुझसे कोई पूछे तो तुम्हारी पत्नी की हैसियत से तुम्हारा परिचय दे सकू कि जिस सबध से यहा लोग मुझे पहचानना चाहगे।'

'मुझे इसमे क्या आपत्ति हो सकती है ?'

और फिर उसने कहना प्रारम्भ किया। यह समझना कठिन था कि उसका बातो मे कितनी सच्चाई है। आदमी बात करते समय जब स्वय केन्द्र मे आ बैठता है तब उसे उसके अलावा सब दोषी दीखते हैं। जगत् में मानो वही दोष मुक्त है और बाकी की दुनिया प्रपची।

उस रात सतीश ने मुझसे जो कुछ कहा वह सब मैंने सुना और याद रखा है—ऐसा नही है। उसकी बातो का स्वर यही था कि दुनिया ने उसके साथ अन्याय किया है। और मुझे इसीलिए, उसके साथ न्याय करना है। उसकी जिन्दगी मे आये खालीपन को मुझे अपनी उदारता से भरना चाहिए। सतीश अपने जीवन के उत्तर काल को सुखशान्तिपूर्ण बनाने के लिए यह सब कर रहा था। मुझे उसके हाथ की लकडी बनना था और बदले मे वह मेरा सहारा बनेगा—ऐसा वह कहना चाहता था।

वह जब तक बोलता रहा, मैं सो नहीं पायी। वह जाग पा रहा था—इसी का मुझे आश्चर्य था। शायद वह पिछली रात जागा नहीं था। वैसे वह कह तो रहा था। पर आदमी जो कुछ कहता है वह हमेशा सच थोडे ही होता है। मैंने भी जब उससे यह कहा कि—'मैं तुम्हारे जीवन मे कोई कमी नहीं रहन दूँगी', तब मैं सच ही बोल रही थी या नहीं—नहीं जानती।

मुझे पसंद है यदि मैं किसी के जीवन को सुखी बना सकूं। हमेशा यह अच्छा लगा है। पर अब ऐसा करते कुछ त्याग करना पड़े, कुछ सहना पड़े तो वह अब सहा नहीं जाता। अब मुझमे यह शक्ति नहीं रही ऐसा लगता रहता है।

सतीश मुझे स्पर्श किए बिना ही सो गया। क्या इसीलिए वह इतनी कीमती साड़ी खरीद कर लाया होगा? उसने यह नहीं सोचा होगा कि साड़ी पहनकर मैं उसके पैर पकड़ूंगी। मेरे सिर पर पड़े घूंघट को हटा देगा और अपने भीगे ओठो को मेरे ओठों पर मढ़ देगा और फिर सारी रात उसके आश्लेष में

धत्, ऐसी बचपने की सी कल्पना को मैं पोष नहीं सकूंगी।

किशोर की बात दूसरी थी। वह समय और था। उम्र कुछ दूसरी थी और किशोर कुछ और ही था।

● ●

पाँच

हॉस्पिटल की उस नर्स को किशोर भूल नहीं पाया था। तीन महीने बाद जब वह अपना अध्ययन पुन शुरू करने शहर आया तब मेरे घर भी आया। पहली नजर मे ही उसका स्वास्थ्य अच्छा दीखा। जिस समय वह गया था—काफी अस्वस्थ था किन्तु इस समय पूर्ण स्वस्थ दीख रहा था। वह खाली हाथ नहीं—साथ मे आम की एक टोकरी भर लाया था।

वह मेरा पता ढूढ रहा था, तब रीटा उसे घर ले आयी थी। शायद ही हमारे घर कभी कोई आता था। ऐसी स्थिति मे किशोर हमारा घर ढूढता आया, यह रीटा को अच्छा लगा। उसे देखते ही मैं आश्चर्यचकित हो गयी।

'मुझे पहचाना नही ?' उसी ने प्रश्न किया।

'किशोर बाबू, आपको भी कभी भूल सकती हूँ ?' मैं साश्चर्य बोली।

'मैंने सोचा, आपके पास तो हमारे जैसे न जाने कितने रोगी आते-जाते रहते हैं उनमे कोई एक किशोर आपको याद न भी रहा हो।'

'अन्य रोगियो और किशोर में अन्तर है। किशोर एक आत्मीय रोगी है जिसे अपनी सौगात भी दे दी हो।'

सौगात कहते मैं शरमा आयी थी पर मैंने अपने आपको तुरन्त सम्हाल लिया था। मुझे अपने आपको सम्हाल लेने मे देर नहीं लगती।

मैंने कहा—'आइए बैठिए। यह क्या लाये हैं ?'

'रीटा के लिए आम लाया हूँ। हमारे बगीचे के हैं। बहुत मीठे हैं।' कुर्सी मे बैठते हुए उसने कहा।

'ऐसे मीठे आम खाकर ही आप इतने मीठे बन गये लगते हैं।' मैं हसी।

रीटा भी हँसने लगी। उस समय रीटा छ वर्ष की थी। वह बोली

'तो अब मैं भी मीठी हो जाऊँगी इन आमो को खाकर।'

हम हँस पडे। रीटा का परिचय बताते हुए मैंने कहा—'देख बेटी, कौन आया है—जानती है ?'

उसने बिना किसी सकोच के कहा—'मामा आये हैं; आम लाये हैं।

किशोर ने तुरत सम्हाला—'मामा नही, चाचा कहो। किशोर बाबू *या बाबूजी कहोगी तो और भी अच्छा लगेगा।'*

'क्यो, मामा बनना अच्छा नही लगता ?' मैंने हँसी मे पूछा।

'यह कैसे अच्छा लग सकता है ? मधुर सौगात सहेजकर मामा बनना किसे अच्छा लग सकता है ?'

थोडी देर के मौन के बाद किशोर ने पूछा—'रीटा क पिताजी घर पर नही हैं ?'

'नही, बाहर गये है। आते ही होंगे। कहिए क्या लेंगे, चाय या कॉफी ?'

चाय लूँगा। कॉफी तो आपने बद करा दी है न ! भूल गयी ?'

'हा, सचमुच भूल ही गयी।'

'इस तरह भूल जाना ठीक नही। किसी दिन मुझे भी भूल जायेंगी।'

मुझे लग रहा था कि किशोर पर एक प्रकार का पागलपन सवार था। रीटा न टोकरी से आम निकाल कर खाना शुरू कर दिया था। मैं अदर चाय बनाने गयी तो पीछे-पीछे किशोर भी आया।

'*इन तीन महीनो में तुम्हे याद न किया हो ऐसा एक दिन भी नही* बीता। रात स्वप्न मे भी तुम आती।'

तब किशोर से मुझे जो कहना चाहिए था कहा—

'किशोर बाबू, तुम अभी नादान हो और किसी गलत खयाल म बह रहे हो। यह हॉस्पिटल नही, मेरा घर है। वहाँ तुम बीमार थे और तुम्ह स्नहभरी तीमारदारी की जरूरत थी और मैंन अपना कत्तव्य समझकर तुम्हे ही वह दी। लगता है तुम उसका गलत अथ कर रहे हो। हमारे बीच कोई अय सम्बध नही हो सकता। तुम्हे मेरे स्वप्न आयें यह ठीक

नहीं। वैसे तुम्हारी यह उम्र स्वप्नों की है पर तुम्हारे स्वप्नों के लिए मैं उचित पात्र नहीं, इतना तो तुम्हें समझ ही लेना चाहिए।'

'पर किसी के स्वप्न में आप आयें तो वह करे भी तो क्या? मैं यहाँ किसी खास सम्बन्ध को लेकर नहीं आया हूँ, भविष्य में भी आऊँ तो आप यही मानें कि आप मुझे अच्छी लगती हैं, यह रीटा भी आपको लेकर अच्छी लगेगी—इसी कारण आता हूँ। मैं रीटा को खिलाने आता हूँ—ऐसा मान लें। मुझे यहाँ आने से रोकें नहीं।'

इतना कह वह बैठक में जा बैठा और रीटा के साथ बातें करने लगा। रीटा उसके साथ प्रसन्न मन खेल रही थी। कुछ ही देर में उसने रीटा को अपना बना लिया था। ऐसा कौन सा जादू उस पर मैंने चला दिया था कि वह मुझमय बन गया था। मुझे उसके भविष्य की चिंता होने लगी थी।

चाय लेकर मैं बैठक में आयी और किशोर के साथ बैठकर चाय पीने लगी। उसी समय बाहर से चप्पलों के घसिटने की आवाज आयी। लक्ष्मणराव मेरे पति—चप्पल को घसीट-घसीट कर ही चलते। मुझे ऐसी चाल पसंद नहीं। पर मैं उनसे कुछ कह नहीं पाती।

मैंने तुरन्त किशोर से कहा—'वह आ रहे हैं।'

उस क्षण किशोर के मुँह पर अरुचि का एक क्षीण-सी रेखा गुजरते हुए मैंने देखी। दूसरे ही क्षण वह उसके स्वागत के लिए स्वस्थ हो आया था। लक्ष्मणराव ने हमेशा की तरह कमीज़ और पाजामा पहन रखा था। दाढी दो-एक दिन की बढ़ी हुई थी। एक ओर का गाल पान दबे होने के कारण फूला हुआ था। उनके एक हाथ में पान की पुड़िया तथा दूसरे में जलती हुई सिगरेट। हमेशा की रीति थी यह उसकी। मेरे लिए यह अरुचिकर था, आश्चर्यजनक नहीं। मैं इस विचार से अस्वस्थ बन आयी थी कि किशोर को यह कैसा लगेगा।

किशोर—जो मुझे स्वप्नों में देखता है—उसे मेरे पति का यह रूप कैसा लगेगा—इस कल्पना से मैं काँप उठी थी।

लक्ष्मणराव ने झटकों से चप्पल उतारी और सिगरेट का कश लेते हुए पूछा—

'कोई मेहमान हैं ?'

'नही ! नही !! मेहमान नही हूँ। मैं इनके अस्पताल मे रोगी था।' किशोर बोल पडा।

मैंने किशोर का परिचय दिया—'किशोर बाबू। बडे जमीदार के बेटे हैं। मेरे अस्पताल मे रहे थे तब मेरी ही ड्यूटी थी वहाँ। यहाँ कॉलेज मे पढते हैं। हमे याद रखा है और ये आम की टोकरी लाये हैं।'

'हमारे अपने बगीचे के आम हैं। अच्छे लगें तो कहियेगा और मँगा देंगे।' किशोर ने कहा।

'चलो अच्छा हुआ। आम खाने का मजा आयेगा। मुझे खाने-पीने का बडा शौक है पर यह कभी कुछ लाकर खिलाती ही नही।' कहते वह हँसा। वह हँसता है तब उसके गदे दात मन मे उबकाई पैदा करते हैं।

लक्ष्मणराव का ध्यान आते ही उसके गदे दाँत सामने आ जाते हैं और एक उबकाई पैदा करनेवाली आकृति कँपकँपी पैदा कर देती है।

किशोर ने कहा—'थोडी चाय लेंगे ?'

'मेरे चाय पीने के समय ही आप आये हैं। फिर चाय के लिए कौन मना करेगा !'

'मैं अपने म से आपको दे रही हूँ, किशोर बाबू को अकेले पीने दें।' मैं चिढती हुई बोली। मुझे उसका व्यवहार अच्छा नहीं लगा था। कुछ भी हो, किशोर उस समय मेहमान था। और मेहमान की चाय यजमान पी जाय—यह कैसी विचित्रता !

'तो इसमे चिढने की क्या बात है ? अपने में से दें, मुझे तो चाय से मतलब।' कह कर लक्ष्मणराव खडे हो गये। पान खिडकी के बाहर थूक दिया। मुह में अगुली डाल कर इधर-उधर दबे सुपारी के टुकडो को निकाल कर बाहर फेंका और अँगुलियो को खिडकी के परदे से पोंछ

लिया ।

किशोर ने मुझे ध्यान में रखते हुए यह सब देखा अनदेखा कर मुँह दूसरी ओर फेर लिया ।

लक्ष्मणराव को मैंने अपने कप मे से चाय दी ।

किशोर ने कहा । आप बहुत गरम चाय पीते हैं ।'

'मुझे तो गरमागरम चाय ही अच्छी लगती है । ठडी हो जाने के बाद अच्छी नही लगती । लक्ष्मणराव किशार को चाय की फिलासफी समझा रहे थे ।

किशोर इस पशोपेश मे था कि अब वह बात किस तरह आगे बढाए क्या बात करे । मुझे लग रहा था कि अब वह बैठ नहीं पायेगा । हुआ भी ऐसा ही । वह उठा । रीटा के सिर पर हाथ रख कर बोला—

'मैं अब चलू ।'

'देर न हो रही हो तो बैठो, भोजन करके जाना ।'

'फिर कभी आऊँगा तो अवश्य भोजन करूँगा । इस समय नही । मुझे अभी नरेश चाचा के घर जाना है । आज ही घर से आया हूँ ।'

'वो एन्टरप्राइसीज वाले नरेश भाई आपके चाचा हैं ?'

लक्ष्मणराव ने भौंह चढाते हुए प्रश्न किया ।

'हाँ, वही । आप उन्हें पहचानते हैं ?'

'पहचानता तो नहीं पर नाम सुना है । मालदार पार्टी है । बहुत से व्यापार धधे हैं उनके ।'

'हाँ, वे मेरे पिताजी के निकट के मित्र हैं । वैसे मैं उनके घर रह के पढू—ऐसे निकट के सम्बन्ध हैं हमारे । मैं होस्टल मे रह कर पढू यह उन्हे पसन्द नही है पर पिताजी को किसी का अहसान पसन्द नहीं । काम यदि पैसों से न हो सके तभी किसी का अहसान सिर पर चढाना पड़ता है उन्ह ।'

'यार, यदि तुम्हे बुरा न लगे तो नरेश बापू से मेरी सिफारिश कर दो न । कोई छोटा-मोटा काम मिल जाय । हाल मे बिलकुल बेकार हूँ ।

और कुछ नहीं तो पान-सुपारी के पैसे तो मिल जाय । इस समय तो ये'—लक्ष्मणराव किशोर से प्रथम परिचय के समय ही मेरे विषय मे अनाप-शनाप बोल रहा था, हीनतापूर्ण व्यवहार कर रहा था । मुझसे यह सहा नहीं जा रहा था । लक्ष्मणराव किशोर से मेरे विषय मे कह रहा था—'इस समय तो यह कितना तरसा कर पैसे देती है ।' और हँसा मुझे नीचा दिखा कर वह हँस रहा था । उसकी यह चिरौरी देख मैं शरम से झुकी जा रही थी । मेरी आँख किशोर के सामने उठ नहीं पा रही थी । किसी अनजान से अतिथि के सामने ऐसा व्यवहार कौन सह सकता है ? ऐसा अतिथि जिसके मन मे हमारे प्रति प्रेम और आदर हो !

पर लक्ष्मणराव को बात कुछ और ही थी । उसे कुछ भी खराब नही लगता था । वह हमेशा अपना स्वार्थ ही देखता था । इसके आगे कुछ भी नही । अपने स्वार्थ के लिए वह कुछ भी कर सकता था ।

किशोर को मानों रास्ता मिल गया । उसकी परेशानी कम हो गयी । जाते-जाते उसने लक्ष्मणराव से कहा—'मैं नरेश चाचा से बात करूँगा । पर आपका कैसा काम पसंद आयेगा ?'

'मुझे तो कोई भी काम दो, सभी कर लेता हूँ । कोई देख रेख का काम हो । मैं पहले गोडाउन कीपर था । इसके पहले उधार-वसूली का काम करता था । बीड़ी बनाने का काम भी किया है । इस जिंदगी ने काफी अनुभव प्राप्त किये हैं ।'

'मैं नरेश चाचा से बात करूँगा । जो भी होगा मैं आपसे कह जाऊँगा ।'

'अच्छा तो आते रहियेगा ।' मैंने खड़ी होकर कहा और ऐसा ही रीटा से कहलवाया ।

किशोर के जाते ही लक्ष्मणराव ने पत्ते मे बंधा पान खोला और उसे मुँह में दबाया तथा सिगरेट सुलगायी । मुँह में पान को निरीहता से दबाते हुए अस्पष्ट आवाज में वह बोला—'लड़का मालदार लगता है ।

यदि यह मुझे काम दे दे तो—' और उसने सीटी बजाई। वह अपनी खुशी सीटी बजाकर ही व्यक्त करता था।

'नही तो तुम भूखे कहाँ मर रहे हो ? कोई आदमी नया-नया घर आया हो उससे ऐसी बातें करना तुम्हे शोभा देता है ?'

'इसमे शोभा की क्या बात है ? मैं बेकार हूँ और यदि वह काम दिला देता है तो इसमे बुरा क्या है ?'

'और तुम काम करोगे ? कितने दिन ? महीना दो महीना, छ महीना। तुम एक भी नौकरी ठीक से कर सके हो ? तुम्हें नौकरी में रखेगा भी कौन ? सारा समय पान-बीडी में बिता दोगे और उठाई-गीरी करोगे सो अलग से मुझे लोगो की आजिजी करके तुम्हें छुडाना पडे। इससे तो तुम नौकरी नही करो यही अच्छा है। तुम चुप मार कर घर बैठे रहो तो तुम्हें खिलाना मुझे भारी नही लगता है पर तुम उठाईगीरी करो, गबन करो और मुझे तुम्ह छुडाना पड यह मुझसे नहीं होता।'

मुझे न चाह कर भी यह कहना पड रहा था पर लक्ष्मणराव पर इसका कोई असर नही पड रहा था—वह तो बेशम सा मुस्करा रहा था। उसने बात टालने की दृष्टि से रीटा से पूछा—

'पान खाना है ?'

'छि, पान कौन खाय ! पान खाने से दाँत बिगड जाते हैं, तुम्हारी तरह।' रीटा मेरा सिखाया पाठ बोल गयी थी।

उसने रीटा के गाल को चूमा तो रीटा ने अपनी हथेली से अपने गाल को पोछ डाला और उसकी गोद से उठकर मेरी गोद मे आ बैठी।

आदमी ऐसा क्यो बन जाता है ? जिसे उसकी पत्नी न चाहती हो, बालक न चाहते हो, ससार मे कोई न चाहता हो। सब उसे धुत्कारते हों, उसे घृणा से देखते हो—ऐसा वह कैसे बन जाता है ?

इन्दौर मे लक्ष्मणराव ने अपने जैसों की टोली ढूढ ली थी। उस टोली मे ही उसका सारा समय बीतता था। लाचारी के घंटे ही वह घर

पर बिताता था नाम मात्र के हमारे संबंध थे। दुनिया की नजर में हम पति-पत्नी थे। पड़ोस की एक वृद्धा हमसे कहती—'कैसी राम-सीता की सी जोड़ी है!' तब मुझे हँसी आ जाती। मैं नहीं जानती, लक्ष्मणराव इस पर क्या सोचते थे।

वह किस मिट्टी का बना था यह मैं कभी नहीं समझ पायी। शायद वह किसी के समझ मे आ सके ऐसा आदमी नहीं था। कभी तो यह शंका भी होती कि क्या यह आदमी है भी!

पर लक्ष्मणराव मेरे सिंदूर का स्वामी था। उसी के आधार पर मेरे कपाल पर बिंदिया लगती थी। उसी ने पूना की शनिवार पेठ मे मेरा हाथ पकडा था। यही लक्ष्मणराव मुझे सायकिल पर बैठा कर पूना के एकांत रास्तो पर घुमाता था। इसी ने वर्षों तक मुझे मसालेदार पान खिलाये हैं।

और एक दिन पान मे जहर मिलाकर भी इसी ने दिया है। भाग्य से मैं बच गयी। उस दिन से उसका दिया कुछ खाती नही। रीटा से भी मना कर रखा है।

□

तीसरे दिन किशोर आया और लक्ष्मणराव को अपने साथ ले गया—नरेश बाबू के यहा नौकरी के लिए। लक्ष्मणराव को नौकरी मिले यह मैं नही चाहती थी। मैं यह सहन नहीं कर सकती थी कि लक्ष्मणराव के कारण मैं किशोर की निगाहो मे हलकी पड़ूं। पर जो होना होता है, उसे कोई रोक नही पाता।

नरेश बाबू के घर से लक्ष्मणराव लौटा, उसी समय मुझे यह लग गया था कि उसे सफलता नही मिली है। किशोर ने दूसरे दिन आकर स्पष्टता की। किशोर हास्पिटल मे ही आया था। ड्यूटीयार्ड की लॉबी मे एक ओर खडे-खडे ही उसने कहा—

'आपको बुरा तो नहीं लगा न?'

'किस बात का?'

'उन्हे नौकरी नही दिला सका इस बात का । उन्होने कुछ नही कहा क्या ? मैंने सोचा, आपको मालूम होगा ।'

'हाँ, उस दिन कुछ बडबडा तो रहे थे ।'

'वैसे तो नरेश चाचा मेरी बात मानते हैं पर लक्ष्मणराव तो, पता नही क्यों, उन्हें पहली नजर मे ही नही जँचे। बाद मे मुझसे कह रहे थे कि यह आदमी शराबी होना चाहिए । उसकी चाल यह बता रही थी । तू ऐसे आदमी के चक्कर मे कहाँ से आ फँसा है ?'

'तुम्हे यह सच लगता है, किशोर बाबू ?' मैंने पूछा।

'यही मैं आप से पूछ रहा था । मैंने तो उनसे कहा कि हास्पिटल मे जो नर्स थी, उन्ही के पति हैं। भले आदमी हैं ।'

मैंने किशोर को सब सच-सच बता दिया । मैं उसे अँधेरे में रखना नही चाहती थी । मुझे उससे कोई लोभ नही था । वह एक अच्छा लडका था और मेरे मन मे उसके लिये गहरी चाहत थी । वह जिस प्रकार दिल खोल कर मुझसे बातें करता है मुझे भी उसी तरह उसके साथ बाते करनी चाहिए ।

मैंने कहा 'आज रात घर आना, शान्ति से बातें करेंगे । मेरी ड्यूटी साढे छ बजे पूरी हो जाती है । तुम सात बजे तक घर आ जाना। साथ ही भोजन करेंगे ।

किशोर ठीक सात बजे घर आ गया था, मैं ही देर से घर पहुँची थी ।

मैं घर पहुँची उस समय वह लक्ष्मणराव से बातें कर रहा था। दरवाजे के बाहर खडी रह कर मैं सुनने लगी।

'इस समय कैसे ?'

'मुझे इस समय आने के लिए कहा था। भोजन के लिए भी ।' किशोर सहमा-सा बोल रहा था । मानो कुछ चुराते हुए पकडा गया हो।

'अच्छा तो यह बात है ? मुझे तो खबर भी नही है ।'

'आज हॉस्पिटल गया था, वहीं यह निश्चय हुआ ।'

'हॉस्पिटल मे चेक-अप के लिए गये थे ?'

लक्ष्मणराव यह सब व्यंग्य में पूछ रहा था। मेरा मन हुआ कि अदर जाकर बात रोक दूँ पर मेरी गैरहाजिरी मे क्या-क्या बातें होती हैं यह जानने की उत्सुकता नहीं रोक पायी। वह जानबूझ कर किशोर को परेशान कर रहा था।

किशोर ने समझे-बूझे बिना ही कह दिया 'यों ही गया था।'

'अच्छा तो तुम यों ही गये थे हास्पिटल और वहाँ रमा तुम्हे मिल गयी। उसने तुम्हे यहाँ शाम आने का और भोजन करने का आमंत्रण दिया। पर, बिचारी को आने मे देर हो गयी किसी डॉक्टर ने रोक लिया होगा। शायद कोई इमरजेन्सी केस आ गया होगा! खैर, वह आयेगी जरूर। यह घर तुम्हारा ही है, शान्ति से बैठो।' लक्ष्मणराव ने कहा और किशोर के बैठने की आवाज आयी।

● ●

कुछ देर तक किशोर और लक्ष्मणराव इधर-उधर की बातें करते रहे। किशोर कुछ परेशानी महसूस करता सा लग रहा था।

वह बोला 'नरेश चाचा इस समय तो कुछ नहीं कर पाये हैं पर, मैं उनसे कहता रहूँगा। नौकरी की कोई न कोई व्यवस्था हो ही जायगी। वैसे यदि आपको पैसो की जरूरत हो तो बिना सकोच मुझसे कहिएगा। आपको किसी भी प्रकार की मदद करने मे मुझे खुशी होगी।'

'यह क्या कह रहे हैं किशोर बाबू', वह हँसा। 'तुम तो अब इस घर के ही आदमी हो। रमा ऐसा मानती है, मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। तुम्हे अपनी तकलीफ बताने मे सकोच किस बात का ? वैसे तो रोज की तकलीफ है। नौकरी न हो तो हाथ खच के पैसे भी कहा से आये ? पैसे के बिना आज मिलता ही क्या है ?'

'इस समय आपको जरूरत हो तो थोड़े रुपये दूँ ?'

'तो ऐसा कीजिए, दस-बीस रुपये दे दीजिए। जेब मे पडे रहेंगे तो पर उससे न कहना।'

मैं दरवाजे के बाहर अधेरे की परछाई बनी उसकी बातें सुन रही थी। किशोर ने जेब से निकालकर बीस रुपये उसे दिए। उसने नोटो पर एक तरसी नजर डाल कर जेब मे रख ली।

इसी समय अंदर जाकर उसे दो थप्पड लगा दिये हों, कह दिया हो - 'साले भडुए ! औरत की कमाई लेता है, डूब मर।'

पर शर्म कहाँ थी वहाँ ? मैं कुछ नही बोल पायी। शरीर कॉप गया था। लगता था किशोर को कुत्ते का भूकना बंद करने का उपाय मिल गया था। और लक्ष्मणराव को रुपयो के अलावा दुनिया मे कुछ और चाहिए भी नही था, जिससे वह अपना आनद खरीद सकता था। आज

मुझे उसका अधम रूप दीखा ।

लक्ष्मणराव को जीवन के नित्य सम्बन्धों से आनन्द की प्राप्ति नहीं होती थी । पत्नी, बालक, कुटुम्ब तो आनन्द के साथ जवाबदारी खड़ी करते थे जिसे वह निभाना नहीं चाहता था । वह कोई फर्ज अदा करना नहीं चाहता था, उसे कोई काम नहीं करना था, उसे तो केवल अपना अकेले का आनन्द चाहिये था । अक्लखुश बन कर जो भी आनन्द मिल सके उसी की खोज थी उसे ।

सारे दिन गप्प मारना, इधर-उधर बैठे रहना, बीड़ी पीना, पान खाना, शराब पीना, किसी का भी मजाक करना और बेपरवाह जिंदगी गुजारना ।

अब तक मैं उससे लड़ती, उसे टोकती पर रास्ते पर नहीं ला सकी थी । अब उसके लिए रास्ता साफ होता जा रहा था । अब वह मुझसे नहीं किशोर से पैसे माँगेगा और उसके लिए अपनी पत्नी के घर का दरवाजा खोलेगा, बन्द करेगा ।

मुझे अब सब स्पष्ट दीख रहा था । इस तरह के आदमी ऐसा ही करते हैं—इसका मुझे विश्वास हो गया था फिर भी अपने विश्वास को मैं कसौटी पर चढ़ाने निकली । अनजान सी अंदर गयी ।

'अच्छा ! किशोर बाबू, आप आ गये हैं ? मुझे थोड़ी देर हुई आने में । अचानक जरूरी काम आ पड़ा था ।'

'आपका व्यवसाय ही ऐसा है । अचानक कोई केस आ जाय तो उसे छोड़ कर कैसे निकला जा सकता है ?' उसने कहा ।

'आपकी बात सच है किशोर बाबू', लक्ष्मणराव बोला । फिर मेरी ओर देखते हुए उसने कहा 'आज तो हमने खूब बातें कीं रमा । किशोर बाबू बहुत अच्छे आदमी हैं । इन्हें भोजन कराने के बाद ही जाने देना । मुझे बाहर जाना है, लौटने में देर होगी । तुम सब भोजन कर लेना । मैं दस-ग्यारह के पहले नहीं आ पाऊँगा ।'

इतना कह कर लक्ष्मणराव खड़ा हो गया और चप्पल पहनकर जाते-

जाते किशोर से पूछा

'किशोर बाबू, आप यहाँ कहाँ रहते हैं ? आपका पता मालूम हो तो कभी जरूरत पडने पर '

'मैं यहाँ की सायंस कॉलेज की हॉस्टेल मे रहता हूँ। १६ न० का रूम है। कभी भी आ सकते हैं।' किशोर बोला।

'अच्छा, तो आप बैठिए, मैं चलता हूँ।'

किशोर के लिए रास्ता साफ करके वह जा रहा था। वह मुझे किशोर को सौंप कर जा रहा था। यम ने जिस स्त्री को इसके हाथ मे सौंपा था उसे अन्य पुरुष के हाथ सौंपने जिस आदमी को शर्म, संकोच न होता हो उसे क्या कहा जाय ? लक्ष्मणराव का ऐसा करना मेरी कल्पना के बाहर नही था। इन दिनो मुझे लगता ही रहा था कि वह ऐसा ही कुछ करेगा पर किशोर को लेकर वह ऐसा करेगा यह आश्चयजनक था।

किशोर शायद इस हलकी व्यवस्था का मर्म समझ गया था। वह बेचैन हो उठा था—ऐसा उसकी मुँह पर की रेखाएँ कह रही थीं।

किशोर ने पूछा 'रीटा कहाँ है ?'

'पडोस मे अपनी सखी के साथ पढ़ रही होगी। कोई काम हो तो बुला दूँ ?' उसके सामने बैठते हुए मैंने पूछा। उस समय मैं क्रोध से जल रही थी।

'सुबह की बात अधूरी रह गयी थी। आपने मुझे लक्ष्मणराव के विषय में कुछ कहने के लिए बुलाया था।'

'हाँ, पर अब न कहूँ तो ?' मैंने पूछा।

'कोई बात नही, मेरा कोई आग्रह नही है। थोडा बहुत तो मैं उन्हे पहचान ही गया हूँ।'

'यहाँ कुछ और दिन आने रहोगे तो सब कुछ समझ मे आ जायगा।'

'शायद।'

'शायद यानी अब तुम यहाँ नही आओगे, यही न ! मैं भी यही चाहती हूँ। तुम यहाँ न आओ।'

'एक बात पूछूं ?'

'पूछो न।'

'लगता है लक्ष्मण राव तुमको सही ढंग से नही पहचानते। वह तुम्हें क्या समझते हैं ?'

'वह मुझे एक हीन वेश्या मानता है। वह सोचता है कि कोई भी नर्स चरित्रवान नहीं हो सकती। सारे दिन रोगी के साथ रह कर कौन बच सकता है ! और सारी रात डाक्टरों के साथ रह कर ! फिर कैसे मुमकिन है कि स्त्री वेश्या न बन जाय।—ऐसा वह मानता है। पर वह मुझे क्या मानता है इसकी मुझे परवाह नहीं। तुम मुझे क्या मानते हो कहोगे ?'

कुछ देर चुप रह वह बोला 'इस समय तो मैं कांप गया हूँ। ऐसे आदमी का परिचय मुझे पहले कभी नहीं हुआ। पर इन्हे देख कर तुम्हारे विषय मे कोई निणय लेना अनुचित होगा। इन्हे देख कर कुछ लगता है और तुम्हे देख कर कुछ और। मेरी समझ मे कुछ नहीं आ रहा है पर तुम मुझे अच्छी लगी हो—हॉस्पिटल मे थीं तब और इस समय भी।'

किशोर को बात सुन कर मैं खिलखिला कर हँस पडी।

उसने कहा 'तुम रो नहीं सकतीं इसलिए हँस रही हो। मैं नहीं समझ पा रहा कि हँसू या रोऊँ ?'

'तो चलो, मेरे साथ हँसो। समझने मे कोई मजा नहीं। मैंने कहा; और मानो मेरी बात उसने मान ली हो—वह हँस पडा।

इतने मे रीटा आ गयी। रीटा हमे हँसता देख हँसने लगी। किशोर रीटा के साथ बात करने लगा और बातो में मुझे भी भूल गया। मैंने कपडे बदले और रसोई बनाने मे लग गयी। रसोई से झांक कर देखा तो किशोर रीटा के साथ गुट्टी खेल रहा था।

'उसके साथ गोटी खेलना छोड उसे कुछ लिखाओ पढ़ाओ।' मैंने कहा।

'मुझे ही कुछ आता-जाता नहीं, रीटा को क्या सिखाऊँ ?' उसने हँसते

हुए जवाब दिया।

'तब तो घर आकर पढने लिखने मे लग जाओ। तुम्हें तो पढ़-लिख कर विदेश जाना है न ?'

'हां, विचार तो यही है। पर, लगता नहीं कि यह पूरा होगा।'

'मैं तुम्हे पूरा करके दिखा दूँगी।' मैंने गर्व के साथ कहा।

मैं मानो किशोर के भविष्य-निर्माण की प्रतिज्ञा ले रही थी। एक आदमी के जीवन को उन्नति के शिखर पर ले जाने का भार ले रही थी।

आदमी भी कितना विचित्र होता है ? वह चाहता है कुछ, बोलता है कुछ और करता है कुछ। मैं कुछ देर पहले किशोर से कह रही थी कि तुम मेरे घर न आओ—ऐसा मैं चाहती हूँ। अब उसे पढा-लिखा कर विदेश भेजने की जवाबदारी ले रही हूँ। शायद आदमी अपने आपको ही सबसे कम जानता है। मैं अन्तर से किशोर के सम्बन्ध को बनाये रखना चाहती थी ? कौन जाने !

वह रीटा के साथ बातें कर रहा था। रीटा के सिर पर हाथ फेरते हुए वह अपनी आंखो से मेरी आंखो मे किसी अनुकूल भाव को ढूंढने की कोशिश कर रहा था पर यहाँ कोई अन्य भाव नही था।

किशोर अच्छा लडका था। किशोर मुझे अच्छा लगता था—जैसा नाटक देखना अच्छा लगता है मुझे, जैसा मुझे नर्स का ड्रेस पहनना अच्छा लगता है, जैसा मुझे कपाल पर सिन्दूर की बिन्दी लगाना अच्छा लगता है।

किशोर ने रीटा को खाना खिलाया। वह मेरे बदले रीटा को खिला रहा था। मेरे बदले रीटा के साथ खेल रहा था। उसने मेरे बदले लक्ष्मण राव को रुपये दिये थे। मैं देखना चाहती थी कि अब वह क्या करता है।

खाना खाने के बाद रीटा को नींद आने लगी थीं। मैं बोली 'बत्ती जलती रहती है तब तक रीटा सो नही पाती। बत्ती बन्द कर दें तो यह सो जाय।'

'ठीक है, आप बत्ती बद कर दें, मैं अब जा रहा हूँ । काफी देर हो गयी है । अभी तो मुझे हॉस्टेल जाना है ।' किशोर ने कहा ।

'मेरे पास सो जाओ ।' रीटा बोली ।

'ऐसी भी क्या जल्दी है जाने की ? बैठो । उनके आने के बाद जाना ।'

'तब तक तो मैं रुक नहीं पाऊँगा ।'

'उनके आने के बाद तुम जाओगे तो मुझे बडा मजा आयेगा ।'

'मुझे इसमे रस नही है ।' कहकर किशोर खडा हो गया ।

'अब मैंने कहा है तो थोडी देर रुक जाओ ।' मैंने उसे कुछ देर रोक लिया ।

बत्ती बद कर दी थी नाइट लैम्प जल रहा था । मैं उसके सामने रीटा के साथ पलग पर लेटी हुई थी । वह मेरे सामने कुर्सी पर बैठा । निगाह बचाकर मेरी ओर देख लेता था । एक शब्द भी उसके लिए बोल पाना कठिन हो रहा था । मानो मैंने उसे सूघ दिया हो ।

उस समय यदि उसने प्रेम की भीख मागी होती तो मैंने उसे थप्पड मार कर बाहर निकाल दिया होता । लक्ष्मणराव को दिए रुपये मैंने उसके मुह पर मार दिए होते ।

पर किशोर ने मुझे खरीदने के लिए लक्ष्मणराव को पैसे नहीं दिए थे । वह मुझे खरीद कर पा भी नहीं सकता । वह कुछ देर तक गुमसुम मानो कोई मन्त्र जप रहा हो—बैठा रहा, फिर उठकर 'अच्छा अब मैं जाता हूँ कहकर चल दिया ।'

किशोर मुझे परेशान कर रहा था । शायद मैं ही मेरी परेशानी का कारण थी ।

रात ग्यारह बजे लक्ष्मणराव घर आया । उसके लडखडाते पैर कह रहे थे कि वह नशे मे चूर था ।

उसने आते ही बत्ती जलायी । किशोर था तब अधेरे मे भी प्रकाश सा लग रहा था और अब लक्ष्मणराव के लैंप जलाने पर भी अधेरा ज्यो का त्यो बना है ।

मैंने कहा—'रीटा सो रही है, लैंप बंद कर दो, नहीं तो वह जाग जायगी।'

उसने अनमनी करते हुए पूछा—'वह गया ?'

'वह कौन ? किशोर ? वह तो कब का गया।' मैंने बेमन जवाब दिया।

'बहुत जल्दी चला गया।'

'उसके प्रत्येक शब्द से निलज्जता प्रकट हो रही थी। मन घृणा-से भर गया था। मेरी आवाज मे तिरस्कार फूट-फूट पड रहा था।

सज्जन आदमी इस तरह अकेले मे किसी के घर इतनी रात तक नहीं बैठते और किशोर सज्जन आदमी है।

'सारी दुनिया सज्जन है, कोई खराब नही सिवाय कि लक्ष्मणराव। क्यों ठीक है न ? उसने कटाक्ष किया।

'मुझसे क्यों पूछते हो ? अपने दिल से ही पूछ लो न ! इस तरह कोई आदमी अपनी स्त्री को बाहर के आदमी के साथ अकेला छोड कर जाता होगा ? आस-पास के लोग मेरे विषय मे क्या सोचेंगे ? किशोर क्या सोचेगा ?'

वह चुप रहा। मैं जान रही थी कि वह कोई जवाब ढूढ रहा होगा।

'कोई क्या सोचता है उसकी मुझे कोई परवाह नही।'

'पर मुझे तो है न ! मुझे तो समाज मे रहना है।'

'समाज ? समाज क्या है ? समाज तो एक चुटकी धूल है, फूक मारो उड जाय। समाज एक खाली बोतल है—जो चाहो सो भरो।'

'मेरे लिए उसकी बकवास असह्य हो उठी।'

'मैं तुम्हारी वाहियात बातें नहीं सुनना चाहती। मैं तुम्हे अच्छी तरह से समझ गयी हूँ। यदि मेरा चले तो मैं एक पल भी तुम्हारे साथ न रहूँ। पर करूँ क्या। तुम्हीं मेरी रीटा के पिता हो। मुझे तुम्हारा भय है क्योंकि तुम्हे किसी बात की शरम नही है। तुम मुझसे रीटा को छीन सकते हो ! तुम मुझे चारों ओर बदनाम कर सकते हो। मेरी नौकरी

सती हो तो मुझे हाथ से छूकर भस्म कर दे, नही तो व्यर्थ बकवास किये बिना चली जा।'

ऐसे आदमी के साथ कैसे बात की जाय! मैं उसे स्पर्श करके भस्म नही कर सकती थी। आज कौन कर सकता है ऐसा?

मैं नहीं समझ पा रही थी कि क्या कहूँ, क्या करूँ? मैंने मन मे भगवान का स्मरण किया।

'हे भगवान! तूने मुझे सती स्त्री क्यो न बनाया। मैं हाथ छुआ कर लक्ष्मणराव को यहीं भस्म कर दूँ—ऐसा तूने क्यो नही बनाया?

'मैं कोई अधम स्त्री नहीं हूँ, लक्ष्मणराव अधम है। हे, भगवान तू इसे भस्म कर दे। मैं भले ही विधवा हो जाऊँ। ऐसे हीन पति के सौभाग्य से तो वैधव्य अच्छा। मेरी प्रिय बिंदी भले ही मिट जाय।'

लगा कि मैं ईश्वर के सत् की कसौटी कर रही होऊँ। जाते-जाते मैंने लक्ष्मणराव के शरीर पर हाथ लगाया। मुझे लगा मानो मैं जल रही होऊँ। लक्ष्मणराव करवट फेरे सो ही रहा था। भगवान भी इसी तरह करवट फेर कर सो रहा होगा।

भगवान ही अपने सत् की रक्षा नही करता तो हम मनुष्य क्या कर सकते हैं?

'जो भी होना हो, हो ले।' टूटे मन से ऐसा संकल्प करके उठी।

लगा, आसुओ मे तैरती हुई कहीं चली जा रही हूँ।

● ○

सात

रात सोना चाहा पर नींद न आयी। सतीश तो गहरी नींद सो रहा था। पहले तो लगा कि नयी जगह है इस कारण नींद नहीं आ रही, आ जायेगी। फिर याद आया—दोपहर नींद ले ली थी। पर कितनी—मुश्किल से एकाध घटे।

आखें बद करती हूँ और खुल जाती हैं। लगता है किसी ने खुली पलको को जड दिया हो। और मन पर इतना भार कि सहा हो न जाय। आखें झपकाना भी मुश्किल हो जाय और चक्कर आ रहे हो ऐसा लगे। मन मे इस पार से उस पार कुछ सरकता सा लगे। याद करके थोडी देर के लिए आँखों को खोलू बद करूँ पर फिर वही दशा।

मस्तिष्क की नसें तन रही हैं। लगा करता है नसें जरूर फूल गयी होगी। थोडी-थोडी देर मे हाथ फेर कर नसो के तनाव को दूर करने का प्रयत्न करती। फिर आँखो पर हथेली रख कर पलको को जबरन दबा लेती। उस समय मुह से नि श्वास निकल पडता। एक के बाद एक। फिर तो श्वासोच्छ्वास भारी हो जाता। इस भार को सह न पाकर खडी हो जाना पडता।

एकदम चिल्ला पडी होऊँ।

सतीश जाग उठे। बगल मे मकान मालकिन सुमन बहन जाग पडे। आस पास के सब जाग कर पूछने लगें 'क्या हुआ ? क्या हुआ ?'

फिर तो सतीश को कहना ही पडे कि रात मे इसे अक्सर ऐसा हो जाता है।

शायद मैं कहूँ कि स्वप्न देखा था। पर स्वप्न कैसे देखा हो। नींद आये तब तो स्वप्न आयें। काफी दिनों से स्वप्न देखा हो—याद नही।

पिछले स्वप्न की स्पष्ट याद तो नही पर किस पहाड से उतर रही

थी। शायद पावागढ़ पर्वत हो, गिरनार भी हो सकता है। नासिक का ब्रह्मगिरि भी हो सकता है। सीढ़ियाँ विकराल बन जाती हैं। सीढ़ियाँ सैकड़ों बन जाती हैं—ठीक पाताल तक जाती हुई। मुझे डर लगता है। मैं सम्हाल-सम्हाल कर पैर रखती हूँ। एक सीढ़ी पर पैर जमा कर ही दूसरे से उठाती हूँ। पर सीढ़ियाँ चिकनी बन गयी हैं—बिल्कुल रपटीली। मैं पैर रखने को होती हूँ और सीढ़ी खिसक जाती है। बहुत सम्हालती हूँ। फिर भी लगता रहता है कि अब फिसली, अब फिसली और फिसल कर दूर खाई में गिर जाऊँगी।

कितनी सीढ़ियाँ थीं! काले पत्थरों से बनी हुई सीढ़ियाँ। मेरा पैर खींच कर मुझे नीचे फेंक देंगी। मुझे नीचे देखकर चक्कर आने लगते हैं। आस-पास देखती हूँ तो चक्कर आते हैं। कोई नहीं है, कुछ भी नहीं है, सिवाय कि ये काले पत्थर। ऊपर और नीचे। भाग कर ऊपर चली भी जाऊँ तो वहाँ भी नहीं रह पाऊँगी। नीचे तो उतरना ही पड़ेगा और नीचे आने के लिए ये सारी सीढ़ियाँ उतरनी ही पड़ेंगी।

भविष्य की चिन्ता किए बिना तेजी से उतरने लगती हूँ—नीचे और नीचे। और पैर फिसल जाता है। अब मैं सीढ़ी पर नहीं हवा में हूँ। हवा मे बिखर जाने की स्थिति मे हूँ—और आँख खुल जाती है। यह मेरा पिछला स्वप्न था।

आज नींद आ जाय और ऐसा ही स्वप्न फिर आये तो मैं गिरूँ नहीं और यदि गिर भी जाऊँ तो घर के दीवानखाने मे गिरूं। वहाँ रीटा हो, प्रियगु हो, किशोर हो, केशू भाई हों, लक्ष्मी भाभी हो, लक्ष्मणराव भी हो।

मुझे देखते ही उनकी आँखें प्रश्न करें—'तुम कहाँ से ?'

मेरे पीछे-पीछे सतीश हो। वह सबको हाथ जोड़ कर अभिवादन करता आ रहा हो—*शरमाता-शरमाता, सहमता-सहमता*—इन सब अजनबियों के बीच। सबकी भौंहे चढ़ जांय।

'यह कौन है तुम्हारे साथ ?'

'इनका नाम सतीश है। मैं इनके साथ रहती हूँ।'

'यानी ? इसका अर्थ ? हमारे किसी के साथ नहीं और इसके साथ क्यों ? किस सम्बन्ध से इसके साथ रहती हो ?'

'कोई जरूरी नहीं कि किसी के साथ रहने के लिए किसी सम्बन्ध की जरूरत पड़े ही। किसी के साथ रहने से अपने आप सम्बन्ध पैदा हो जाता है। फिर वह कोई भी सम्बन्ध हो।'

'कोई भी सम्बन्ध नहीं चल सकता। पहले कोई निश्चित सम्बन्ध बने, उसके बाद ही साथ रहा जा सकता है।'

'इससे उलटा करें तो ?'

'तो मैं उसे बरदाश्त नहीं कर सकती।' कहती हुई रीटा चली जाती है। किशोर भी प्रियंगु को लेकर चला जाता है। मुझे लगा उसने बाहर जाकर जोर से थूका। थूक के छींटे मुझ पर पड़ने चाहिए थे। उसने मुझ पर ही थूका था।

केशू भाई कहते हैं, 'ये सब नादान हैं, इन्हें समझ नहीं है। मैं समझ रहा हूँ।'

लक्ष्मणराव कहने लगा, 'मैं तेरे साथ रहने आऊँ ? पर हाथ म कोई काम धधा नहीं है।''

'मैं तुम्हें अपने साथ नहीं रहने दूँगी। मुझे तो तुम्हारी परछाईं स भी दूर रहना है। ऐसा करो सतीश, तुम इन्हें कुछ पैसे दे दो।'

सतीश जेब से निकाल कर उस कुछ रुपये देता है। केशू भाई भी बोले बिना पर्स से रुपये निकाल कर 'लो, थोड़ रुपये मुझसे भी ले लो।' कहते हुए उसे कुछ रुपये दे देते हैं।

'तो यह मेरी रास्ते से हट जाने की कीमत है ?' लक्ष्मणराव अपना निचला होठ गिराते हुए सिर हिलाकर पूछता है।

'इतनी कीमत नहीं हो सकती यह हम जानते हैं पर, तुम एक बार रास्ते से हट जाना निश्चित करो तो कीमत तो हम चुकाते रहेंगे। कीमत तो तुम्हारी चुकानी ही पड़ेगी। सतीश को यदि यह नहीं मालूम

है तो मालूम हो जाना चाहिए।'

'कौन है यह ?' सतीश जिज्ञासा से पूछता है।

'यह लक्ष्मणराव है—रमा बहन का पति।' केशू भाई ने जवाब दिया। सतीश कांप उठता है।

'तुम सबने मुझे फँसाया है। मैं पैसा देकर स्त्री खरीदना नहीं चाहता था। पैसे से स्त्री नहीं खरीदी जा सकती। पैसे से तो ' वह आगे बोल नहीं सका। मेरे सामने आँखें फाड़े देखता रह जाता है।

'मैं तुम्हारी बात पूरी करूँ। पैसे देकर जिस स्त्री को खरीदा जाता है वह स्त्री नहीं वेश्या होती है। वही हूँ मैं। नहीं तो इस चालीस वर्ष की उम्र मे किसी अजाने आदमी के घर में बगैर सकोच कोई क्यों रहेगा? और वह भी पति के रहते हुए ?'

मैं जोर से आँखें मीच लेती हूँ। मानो इन विचारो को मन से निकाल देना चाहती होऊँ। सतीश धीरे से करवट बदलता है। मेरी इच्छा बैठकर कुछ पढने की होती है पर ऐसा करते सतीश जाग जायगा—इस डर से काफी देर तक बिस्तर मे ही बैठी रहती हूँ।

पर अब रहा नहीं जाता। धीरे से उठ कर रसोई की बिजली जलाती हूँ। नये घर की नयी मटकी का ठडा पानी पीती हूँ। पानी मे मिट्टी की गध है, स्वाद है। जो कुछ भी नया होता है, उसमे कुछ न कुछ नया स्वाद होता है, गध होती है। यह घर भले ही नया हो, मैं नयी नही हूँ। मुझमे कोई नया स्वाद नही, मुझमे कोई सुगध नही।

अन्यथा सतीश इस प्रकार निर्लिप्त रह कर सो पाता? समीप कोई स्त्री सो रही हो और पुरुष इस प्रकार निर्लिप्त और स्वस्थता से सो सकता हो तो वह या तो सत महात्मा होगा या वृद्ध। सतीश न सत था और न वृद्ध। वह तो काफी वर्षों का प्यासा था पर उसने मेरी जरा भी परवाह न की। मेरी ओर लोभ दृष्टि से देखा भी नहीं और सो गया।

पानी पीकर अपनी थैली मे से आश्रम-भजनावली निकाली और उसी मे मन लगाने का प्रयत्न करती हूँ।

'अबकी टेक हमारी लाज राखो गिरधारी।
जैसे लाज राखी द्रौपदी की कौरव सभा मँझारी।
खैंचत-खैंचत दो भुज हारे दु:शासन पचहारी।।'

आगे नही पढ पाती। अक्षर गोलाकार घूमते हैं। रात दो बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं। रात नीद नही आती है तो सुबह सिर भारी हो आता है। सारा दिन भारी लगता है।

शांति से विचार करती हूँ तो लगता है कि मेरे स्वभाव के चिडचिडे हो जाने मे यह भी एक कारण है। नींद की गोलियाँ लेकर सोने की आदत नहीं डालना चाहती पर लगता है इसके बिना छुट्टी नही। कभी-कभी लेनी ही पडती हैं।

नर्स होने का यह एक लाभ या हानि है कि मैं दवाएँ जानती हूँ और डिब्बा भर कर पास रखती हूँ। यहाँ भी साथ लेती आयी हूँ। दवाएँ मेरे जीवन का एक आवश्यक अंग बन गयी है। डॉक्टर ने नीद की गोली लेने के लिए मना नहीं किया है।

सो जाती हूँ तो जिंदगी पर एक परदा पड जाता है। फिर भले ही यह काम-चलाऊ हो। थोडी शान्ति भी मिलती है। पहले एक गोली लेने से नीद आ जाती थी, अब दो गोली लेती हूँ फिर भी, गहरी नीद नही आती। कुछ देर मे नीद खुल जाती है। तब क्या करना जब नीद पूरी हो गयी हो और रात अधूरी ही हो?

घडी की टिक-टिक की आवाज सिर पर चोट कर और फिर धीरे-धीरे एक के बाद एक आकर पैठ जायँ। सब अपनी बातें याद करावें, परेशानी करें। मानो दरवाजे पर दस्तक पर दस्तक पड रही हो। दरवाजे के बाहर लोगो की आहटें आ रही हो और हम किसी को पहचान न पाते हों या पहचानने का अवकाश ही न हो।

आश्रम भजनावली रख दी। थैली मे से गोलियाँ निकाली और नींद की दो गोलियाँ ले लीं। तीन बजे भी यदि नींद आ जाय तो छ:-सात बजे तक तो सोया जा सकेगा। बत्ती बंद करके फिर बिस्तर पर जाकर

ओढ कर सो जाती हूँ ।

हाँ, अब यदि नीद आ जाय तो आखें बद करके मन पर छायी सारी परछाइयो को दूर भगा कर सोया जा सकता है । लगता है सतीश मुझसे पूछ रहा है 'गोलियाँ किसलिए खायी ?'

'नींद को !' मैं ओठ खोले बिना ही बोलती हूँ ।

'इस तरह कहीं नीद आती होगी ? तू सोच रही है कि मैं सो गया हूँ ? मैं भी सो नही सका हूँ । तू इस तरह पास सोयी हो तो मुझे कैसे नीद आ सकती है ।' लगा उसने पूछा ।

'तो आप जाग रहे थे ?'

'हा-हा ।'

'किसलिए ?'

'बस, तुम्हारे लिए । तुम मुझे खूब अच्छी लगती हो । प्राण से भी ज्यादा प्यारी ।'

'रहने दो, इस तरह जवान लडके की तरह मत बोलो हमे यह शोभा नही देता ।'

'किसने कहा शोभा नही देता ? हम बूढे थोडे ही हो गये हैं ? तुम खूब सु दर लगती हो—रोमाचक !'

'सचमुच ?'

'तुम्हें लगता है कि मैं झूठ बोल रहा हूँ ? पूछ लो मेरे हृदय से । यह तुम्हारे लिए कितना बेचैन हो रहा है ! आओ मेरे पास सो जाओ, मेरे हाथ का तकिया बनाकर । तब ही नीद आयेगी । फिर जीवन म नींद की गोली लेने की जरूरत नही रहेगी । नींद उसे नहीं आती जिसे कोई चाहने वाला नही होता । तुम्ह चाहने वाला तो तुम्हारे पास ही है । मैं तुम्ह खूब चाहता हूँ । हृदय की पूरी गहराई से चाहता हूँ । सारे जीवन प्रेम की वर्षा करता रहूँगा । तुम्हारे रोम-राम को भिगो दूँगा', सतीश कह रहा है । उसकी आँखों मे प्रेम छलक रहा है ।

'बस, मुझे इतना ही चाहिए, इसी के बिना मेरी नींद हराम हो गयी

है, मेरा मन बेकाबू बन गया है । मुझे किसी के ऐसे दो हाथों का सहारा चाहिए जो मुझे टूटने से बचाएँ, मुझे जिन्दगी के इस विषम मार्ग पर चलने में सहायता करें । मैं इतना ही ढूढ रही हूँ ।'

'तुम्हारी तलाश अब पूरी हो गयी है । वे हाथ मेरे ही हैं ।' मानो सतीश दोनों हाथों को फैलाकर कह रहा हो ।

'तो तुम अपनी पहले की दो पत्नियों को अपने हाथों का सहारा क्यों न दे सके ?' *यह प्रश्न मेरे होठों पर आकर खेलने लगता है । सतीश शर्म* से नीचे देख रहा है । फिर सिर ऊँचा कर मानों आँखों से ही कह रहा है

'उन्होंने मेरे हाथों के आधार की परवाह ही नहीं की और मुझसे इतनी दूर जा पड़ी कि जहाँ मेरे हाथ पहुँच ही न सकें । और जब हाथ न पहुँच सकें तो क्या किया जाय ।'

'दुनिया ने तुम्हें बहुत दुःख दिया है न ।' हमदर्दी में मैं पूछ लेती हूँ ।

'हाँ, और तुम्हें भी कहा कम दुःख मिला है ?'

मैं एक निःश्वास लेती हूँ । आखों में आसुओं की बेचैनी अनुभव करती हूँ । आसू कहते हैं

'दूसरों के लिए मैंने अपने आपको समाप्त कर दिया है । दूसरों के सुख के सामने अपने सुख का *कभी विचार भी नहीं किया पर हमेशा* दूसरों से ठोकरें ही मिलती रही हैं । कोई नहीं हुआ मेरा । जिससे पास रहने की आशा की थी वे कोई मेरे न हुए । सभी वक्त पर धोखा दे गये । इन्होंने मेरा सारा रस पी लिया और जब देखा कि अब इसके पास कुछ *नहीं है, सबने साथ छोड दिया ।'*

'मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ूँगा । जिंदगी की आखिरी मंजिल तक मैं तुम्हारे साथ रहूँगा—इसका विश्वास रखना । संसार ने तुम्हारा सारा सत्व छीन लिया होगा तो मैं फिर से तुममें नया रस भरूँगा ।' सतीश ने कहा ।

'मैं एक कुम्हलाया हुआ बिरवा हूँ।'

'उस बिरवे को मैं पोपूगा और उसे हरा बनाऊँगा। उस पर फूल उगेंगे, सुन्दर-सुन्दर फूल। सारी दुनिया इन फूलो को आश्चर्य से देखेगी। कुम्हलाये पौधे के सुगन्धित फूलो को।'

'और तुम होगे इन पुष्पो के भ्रमर।'

'तब दूसरे भ्रमर तो इकट्ठे नही होंगे न?' सतीश कुछ अविश्वास से पूछता है। उसका अविश्वास ठीक ही था। मैं उसे विश्वास दिलाती हूँ।

'इस फूल का तू ही भ्रमर होगा। उसका रस, जीवन सब तुम्हारे चरणा मे धर देने के लिए ही होगा। मुझे किसी पर न्योछावर हो जाना अच्छा लगता है। मैं तुम पर न्योछावर हो जाऊँगी। अपनी सुगध से तुम्हे भर दूँगी।'

'तो आओ, मेरी भुजाओ मे समा जाओ। मेरी धडकनों मे अपने हृदय की धडकनो को समा दो।' सतीश कहता है। उसके दोनों हाथ उठे हुए है।

मैं मानो सतीश से लिपट जाती हूँ। वह मुझे अपने दृढ़ आलिगन मे बाँध लेता है। मुझे भीच डालता है।

'मेरी प्रिया रमा, कितना रमणीय है तुम्हारा नाम? रमा अर्थात् लक्ष्मी। तुम मेरे सूने घर की लक्ष्मी बन कर आयी हो। मेरे घर को प्रकाशित करना, उन्नत करना, मुझे समृद्ध बनाना', सतीश के अस्पष्ट शब्द मेरे कानों मे पडते हैं। मैं भी कहती हूँ

'हाँ, मेरे प्रिय सतीश, तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करूँगी।'

लगता है नीद की गोलियो का असर हो रहा है। पलके भारी हो आयी हैं। विचार-चित्र पिघलते जा रहे हैं। नीद आ रही है।

● ●

आठ

दूसरे दिन सुबह घर मे कुछ खटर-पटर होती सुनायी दी। मैं जाग पडी। सबसे पहले निगाहें घडी पर गयी। आठ बजकर दस मिनट हुए थे।

बिस्तर से उठने का मन नहीं हो रहा था। करवट बदल कर देखा तो सतीश रसोई में कुछ कर रहा था। स्टोव जल रहा था। मेरी जानने की इच्छा हुई कि वह मुझे कब तक नही उठाता और तब तक क्या-क्या काम कर लेता है? थोडी-थोडी देर मे मैं रसोई की ओर नजर करके देख लेती थी कि तभी मेरी आँखें मिल गयीं।

उसने हँसते हुए *'गुड मार्निंग'* कहा। *मैंने जवाब दिया। अब जागने* के सिवाय दूसरा रास्ता न था। अलसाते हुए बैठ कर मैंने पूछा

'कब के जग गये हो?'

'मैं तो छ बजे ही उठ गया था।'

'मुझे जगाया क्यों नही?'

'तुम गहरी निद्रा मे सो रही थी इसलिए जगाने की इच्छा नही हुई। भाई, घर जैसी नींद और कही नही आ सकती।'

सतीश इतने आत्म सन्तोष के साथ बोल रहा था कि मैं उसे रात की बात न बता सकी। सारी रात जो बेचैनी सही थी उसे एक हलके स्मित से मिटाती हुई उसके आनन्द मे शामिल हो गयी।

'इस समय तुम यह सब क्या ले बैठे हो?'

'नौकरी पर जाने के लिए दस बजे तो निकलना ही पडता है न।' उसने कहा 'चलो तुम ब्रश कर लो, चाय तैयार है। नहाने के लिए पानी भी गर्म हो रहा है।'

मैं झटपट रसोई मे गयी। देखा सतीश ने रसोई की भी तैयारी कर

दी है। मैं अपनी आँखों को उसकी दया भरी प्रशंसा करते देखती रही।

यह भी मानो यही चाहता था। उसकी इच्छा तो यह रही होगी कि मैं अभी भी न जागू जिससे वह मुझे भोजन के लिए ही उठाये।

मैंने मुह धो लिया। फिर उसके साथ बैठ कर चाय पी। सतीश खुश दीख रहा था। उसने कहा

'आज नौकरी पर जाने की इच्छा नही हो रही।'

'यह ठीक नही। नौकरी छूट जायेगी तो? पहले तुम अकेले थे पर, अब तो हम दो मुसीबत मे पड जायेंगे।'

वह हँसने लगा। 'एकाध दिन न जाने से नौकरी छूट नही जाती। मेरी वर्षों पुरानी नौकरी है। मन मे यह विचार था कि आज कही घूमने निकलें। उदयपुर या दमण या कही और दो एक दिन के लिए घूम आयें।'

'घूमना तो सबको अच्छा लगता है पर इस तरह कही जाया जाता होगा? इतनी जल्दी तैयारी करके निकला नही जा सकता। दो दिनों के लिए जाना हो तो अब तक तो निकल जाना चाहिए।'

'हाँ, इसी समय निकलना पडे, नही तो कब पहुँचे और कब लौटें? आज दोपहर तक पहुँच जायें और कल दोपहर तक लौट पडें तो रात तक घर पहुँच जायें।'

आज तो नही निकला जा सकता। अभी तो मैं नहायी भी नही हूँ और दोपहर को केशू भाई आने वाले हैं। उ हे खाली लौटना पडेगा।'

केशू भाई का नाम सुनते ही सतीश का मुह उतर गया। जैसे ग्रास मे कंकड आ गया हो। उसने अपनी अरुचि प्रकट भी की।

'केशू भाई को लौटना पडेगा तो इसमे कौन सी बडी बात हो जायगी?'

केशू भाई ने ही मुझे सतीश से मिलाया था। फिर भी इस समय केशू भाई का नाम लेते ही उसका मुह ऐसा क्यो उतर गया—मेरी समझ मे न आ सका। यह तो ठीक नही कि किसी को घर बुलाया हो और स्वय

घर से नदारत हो जाय। मैंने सतीश को यह समझाने का प्रयत्न किया। पर लगा उसकी प्रसन्नता के सागर को मैं अगस्त्य की तरह अजलि भर कर पी गयी थी।

शायद यह पुरुष-सहज ईर्ष्या के कारण था। पुरुष अपनी प्रिया के मुख से पर पुरुष का नाम भी सुनना पसद नही करता। स्त्रियों में भी शायद ऐसा ही होगा। पर सतीश मेरे लिए ऐसा चाहे यह आश्चयजनक था। पहली बात तो यह कि मैं उसकी पत्नी नही थी, दूसरे मेरा पति है, मित्र है—यह सतीश जानता है।

मैंने उसका मन रखने के लिए कहा 'तो मैं तैयार हो जाऊँ? उदयपुर जाना ही है?'

'छोडो, नही जाना है। मैं तो यो ही कह रहा था। छुट्टी मजूर कराये बिना आफिस मे गैरहाजिर रहना ठीक नहीं। अब तक की नौकरी के रेकड मे छुट्टिया नही के बराबर हैं। मेरी पहली पत्नी मर गयी थी उस समय भी मैंने पूरे तीन दिन की छुट्टियाँ नही ली थी। तीसरे दिन दोपहर से तो नौकरी पर हाजिर हो गया था।'

सतीश बनावट कर रहा था। मैं इसका मम न समझू इतनी नादान नही हूँ। केशू भाई का नाम आते ही उसकी प्रसन्नता लुप्त हो गयी थी। हमारे जीवन के प्रारम्भ में ही ऐसी बात क्यो हो गयी! सुबह उठते जो सहजता थी वह अब नही है। इस बीच कुछ ही क्षणो मे कितना अधिक बदल गया है?

नहा-धोकर मैंने रसोई पूरी की। आग्रह करके सतीश को भोजन कराया। भोजन करते समय वह केशू भाई के प्रसंग को मन से निकाल कर सहज बनने का प्रयत्न कर रहा था। उसी ने मुझसे पूछा

'शाम को क्या भोजन बनाओगी?'

'आपको जो पसद हो कहें। मुझे आता होगा तो बना दूँगी।' मैंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा।

'तुम्हें मेरी पसन्द का भोजन बनाना न आता हो यह मेरी कल्पना मे

ही नही आता। पर तुम्हे क्या अच्छा लगता है—यह कहो। शायद मुझे भी वही अच्छा लगता हो।'

'मन पसन्द चीजे तो बहुत सी होती हैं।'

'उसमे भी कम-ज्यादा तो हो सकती हैं न ?'

'मान लो मुझे कचौरी बहुत अच्छी लगती है, साथ मे इमली की चटनी।'

'कचौरी मुझे भी पसद है तो शाम कचौरी बनाओगी ?'

'मुझे बनाने मे क्या हरकत है। पर कचौरी की सारी सामग्री यहा कहाँ मिलती होगी ? मैं यहा से अजान हूँ, इसलिए पूछ रही हूँ।' मैंने स्पष्टता इसलिए की कि जिससे उसे मेरा यह बहाना न लगे।

'इसकी चिंता मत करो। नौकरी से वापस आते समय कचौरी की सारी सामग्री मैं साथ ही लेता आऊँगा। फिर तुम बना देना। दो प्राणियो की रसोई में कितनी देर लगेगी।'

'तो तुम जल्दी आ जाना, देर न करना।'

शायद मैं उसे अच्छा लगने के लिए ही ऐसा कह रही थी। वह जल्दी आये या देर से, मुझे इसकी चिन्ता नही थी। ऐसा भी नही था कि उसे देखने के लिए मेरी आँखे तरसें। यह भी नही कि शाम होते ही मैं उसे देखने के लिए बेचैन हो जाऊँ।

मैंने जब यह कहा तब मेरी आवाज मे बनावटीपन आ गया था। झूठे चाहत भरे स्वर मे मैं बोली थी पर सतीश उसे सुन कर खुश हो गया था।

वह बोला 'जरा भी रुके बिना आ जाऊँगा, जैसे बच्चे स्कूल से छूट कर घर दौडते हैं। तुम्हें इन्तजार नही करना पडेगा।'

मुझे इस बात का सतोष हुआ कि उसका मन मना लिया है। प्रसन्नता लेकर वह नौकरी पर जा सका था।

कचौरी तो लक्ष्मणराव को भी बहुत अच्छी लगती थी, पर मेरे हाथ की नहीं बाजार की। उसके हाथ पैसे लग गये हों तो रात में कचौरी का

दोना लेकर ही घर आता। उसी ने मुझे कचौरी का स्वाद लगाया था। बाद में तो मैं घर पर ही बनाने लगी थी। लोग कहते कि मेरे हाथ की कचौरी बाजार की कचौरी से भी अच्छी बनती है पर लक्ष्मणराव को तो बाजार की कचौरी ही अच्छी लगती।

पिछले दिन की ही तरह दोपहर को केशू भाई आ पहुँचे।

'आज न भी आये होते तो कोई हर्ज नहीं था।' मैंने कहा।

'कल तुम्ही ने तो आने के लिए कहा था और अब कहती हो—कोई हर्ज नही था।'

जब भी वे ऐसा कुछ बोलते हैं उसकी भौहे चढ जाती हैं। केशू भाई कह रहे थे 'न आया होता तो जाने देतीं 'तुम्हे मेरी जरा भी चिंता है ?' सच तो यह है कि कल सारे दिन तुम्हारे ही विचार आते रहे थे। तुम्हे इस तरह किसी अन्य के साथ जीना अच्छा लग रहा होगा या नहीं, आदि।'

वे कुरसी पर बैठ गये। मैंने उन्हे पानी पिलाया और फिर सामने पलग पर बैठ गयी।

'केशू भाई, सच पूछो तो मुझे अच्छा नहीं लग रहा। यह भी कोई जिन्दगी है ? किसी बिलकुल अपरिचित आदमी के साथ जिन्दगी बिताना और वह भी किसी स्नेह-सम्बन्ध के बिना।'

'स्नेह-सम्बन्ध तो बनाना पडता है। लडकी पहले पहल ससुराल जाती है तब किसके साथ उसका स्नेह-सम्बन्ध होता है ?'

'स्नेह भले हो न हो, सम्बन्ध तो होता ही है न। उस सम्बन्ध मे ही स्नेह का अधिकार होता है। इस आदमी पर मेरा कौन सा अधिकार है ?'

'वहाँ सम्बन्ध के बाद स्नेह आता है, यहाँ स्नेह के बाद सम्बन्ध बनेगा।'

केशू भाई जिस तरह से मुझे समझा रहे थे, मैं हँसे बिना न रह सकी।

'किन्ही दो व्यक्तियो को एक घर में इकट्ठा कर दिया जाय और कहा

जाय कि स्नेह करो, सम्बन्ध बांधो ! केशू भाई, इस तरह न स्नेह पैदा होता है और न सम्बन्ध बँधता है। स्नेह के लिए अ तर उलीचना पड़ता है। स्नेह पूर्व जन्म के लेन-देन से मिलता है। और सच कहूँ केशू भाई, तो मेरे मन की मरुभूमि मे अब स्नेह का बिरवा उगे—ऐसी कोई सम्भावना नही है।'

'तुमने पहले से ही अपने मन को छोटा कर लिया है। स्नेह न सही, हमदर्दी, शुभेच्छा भी यदि सतीश को दे सकोगी तो वह तुम्हारा जीवन भर आभारी रहेगा। तुम किसी भी सम्ब ध की भूमिका ही नहीं रहने दोगी तो फिर सम्बन्ध पैदा कैसे होगा ? तुम एक ही दिन मे ऊब गयी ? उसे तुम्हारा मन जीतने के लिए कुछ समय तो देना ही पड़ेगा।'

'मैं उससे नहीं ऊबी हूँ। वह तो बेचारा भला और सीधा आदमी है। मुझे उसके प्रति हमदर्दी तो है ही। मैं उसे छोड देने का विचार भी नही कर रही। पर इस नयी स्थिति मे, नये वातावरण मे श्वास घुटता है।'

हम बातें करते हैं। केशू भाई हमेशा मेरे शुभचिंतक रहे हैं। आख मूदकर भी उनकी बात स्वीकार सकती हूँ। वे मुझे थोडा पहचानते हैं इसलिए मेरे मन को समझ कर ही बात कहते हैं।

कुछ देर बाद मैंने चाय बनायी। हम सबने चाय पी। समय बीत रहा था। मैंने उनसे आग्रह किया कि कुछ देर रुक जांय और कचौरी खाकर ही जांय पर वे रुके नहीं क्योंकि उ हे शाम एक व्यापारी से मिलने उसके घर जाना था। मैंने उनसे व्यापार-धधे के विषय मे पूछा। हम बात कर रहे थे, सच पूछो तो इधर-उधर की गप्प मार रहे थे कि केशू भाई की नजर दरवाजे की ओर गयी। दरवाजे ब द नही अध-खुले थे।

केशू भाई की नजर के साथ-साथ मेरी नजर भी उस ओर गयी। दरवाजे से किसी की परछाइ दीख रही थी।

'लगता है कोई बाहर खडा है न ?' केशू भाई ने पूछा।

'हाँ, लगता है मकान मालकिन हैं।' मैंने कहा। परन्तु मेरे अनुमान से केशू भाई को संतोष नहीं हुआ। वे खड़े हुए और जाकर दरवाजा खोल दिया।

कौन खड़ा है यह जानने का कौतूहल मेरी नजरों को भी था। परन्तु दरवाजा खुलते ही एक आघात सा लगा। दरवाजे के बाहर और कोई नहीं, सतीश ही खड़ा था।

'ओहो! सतीश भाई तुम हो! बाहर क्यों खड़े हो! कब के आये हो?' केशू भाई ने आश्चर्य से पूछा।

'हाल ही आया।'

'पर इस समय कैसे? आपका आफिस तो पाँच बजे छूटता है न!'

सवाल सतीश को अच्छा नहीं लगा। उसका मुँह उतर गया मानो चोरी करते पकड़ा गया हो। मैं भी सन्नाटे में आ गयी।

मैंने सुबह कहा था कि केशू भाई इस समय आने वाले हैं इसी से वह यहाँ आया था। शायद वह मुझ पर नजर रखना चाहता हो, क्योंकि अब मैं उसके घर रहती हूँ इसलिए, उसकी मिल्कत हूँ। अब वह मुझ पर नजर रख रहा था जिससे दूसरा कोई उसकी मिल्कत में हिस्सा न बटा सके।

उसके इस व्यवहार से मेरे और केशू भाई के सम्बन्ध को लेकर शंका की गंध थी। केशू भाई का, इसीलिए मुंह उतर गया था।

बिगड़ी बाजी सुधारने का प्रयत्न करते हुए सतीश बोला 'केशू भाई से मिलने के लिए ही मैं आज आफिस से जरा जल्दी निकल आया था। कचौरी का सामान भी लेता आया हूँ। केशू भाई को भोजन करा कर ही जाने देना।'

समझ में नहीं आता वह सच बोल रहा था या झूठ। मैंने भी उससे जल्दी आ जाने के लिए कहा था। शायद इस कारण भी वह जल्दी आया हो!

पर न जाने क्यों मेरे मन में एक आशंका पैठ गयी। मैं पूछे

बिना न रह सकी 'पर आप बाहर क्यों खड़े रहे? अन्दर क्यों न चले आये?'

'सामने लड़के खेल रहे थे, देखने लगा।'

उसकी बात सच भी हो सकती है। झूठा बचाव भी हो सकता है। मुझे अपने आप से ज्यादा केशू भाई की चिंता थी कि वे अपने मन में क्या सोच रहे होंगे! केशू भाई के सामने वह कैसा क्षुद्र दीखा था! मैं कैसी लगी थी?

केशू भाई हमारी परेशानी समझ गये थे। व जोर से हँस पड़े और हम भी उनके साथ हँसने लगे। हँसी के नकाब मे हम कितना कुछ छिपा लेते हैं!

सतीश ने मेरे सामने थैला रख दिया। मैंने थैला उठा लिया और उसे पानी पिलाया। उसने कहा

'तुम तो चाय पी चुके हो, मुझे मिलेगी या नहीं?'

'नहीं क्यों मिलेगी! दूध है न रमा बहन? न हो तो मैं लेता आऊँ।' केशू भाई ने कहा।

'दूध है।' कह कर मैं चाय बनाने चली गयी। केशू भाई सतीश के साथ बातों मे लग गये।

सतीश का दरवाजे के बाहर खड़ा रहना मेरे मन-मस्तिष्क से हट नहीं रहा था। मेरा ध्यान सतत उस दृश्य मे डूबा हुआ था। इसी कारण चाय उफन गई और स्टोव बुझ गया। बुझे स्टोव का धुआं तपेली को घेर रहा था। जल्दी से तपेली को उतार कर दियासलाई जलाई और स्टोव को फिर से चालू करने का प्रयत्न करते जोर का भड़ाका हुआ। लपटों का प्रकाश और धुआं पूरी रसोई मे छा गया जो बैठक तक दिखाई दिया। केशू भाई और सतीश आश्चर्य विमूढ से अन्दर दौड़ आये।

'क्या हो गया? क्या हो गया?' दोनो के मुह पर यही शब्द थे।

'कुछ भी नहीं, जरा ध्यान नहीं रहा इससे चाय उफन गयी।'

केशू भाई ने दयाजनक दृष्टि से मुझे देखा और सतीश से कहा

'ऐसी है इनके मन की स्थिति।'

'धीरे-धीरे तबियत ठीक हो जायगी।' सतीश मानो मुझे आश्वासन दे रहा था। फिर हमने रसोई में बैठ कर ही चाय पी। केशू भाई बैठक में बैठे रहे।

'मेरा इस समय आना तुम लोगों को अच्छा नहीं लगा?' उसने सीधा प्रश्न किया। 'मैं सचमुच इसलिए जल्दी आया जिससे केशू भाई से भेंट हो जाय और फिर तुमने जल्दी आने के लिए कहा भी तो था। मैंने सोचा सब साथ बैठ कर कचोरी खायेंगे।'

'तुम्हारा आना अच्छा क्यों नहीं लगेगा? पर आकर जिस तरह स दरवाजे के पास खडे थे वह अच्छा लगने जैसा नहीं था। मानो तुम हमारी जासूसी कर रहे हो।'

'मेरे विषय में ऐसी गलत धारणा मन में मत रखना। तुम्हारे और केशू भाई के सम्बन्ध को लेकर मेरे मन में कोई शका नहीं है। यदि तुम्हारे बीच ऐसा कोई अयोग्य सम्बन्ध होता तो केशू भाई तुम्हें मुझे सौंपते ही क्यों? क्या मैं इतना भी नही समझ सकता?'

'तुम्हारे मन मे कुछ भी हो पर केशू भाई को तो ऐसा ही लगेगा न! इस तरह दरवाजे के पीछे चुपचाप खडा रहना ।'

'मेरा उद्देश्य यह नहीं था। मैं यो ही खडा रह गया था। पहले तो सोचा कि देखू मुझे इस समय देखकर तुम्हें कैसा अचरज लगता है। यही सोचता हुआ अन्दर आने की भूमिका बना रहा था।'

सतीश ने केशू भाई से भोजन करके जाने का काफी आग्रह किया पर वे रुके नही। उनके मन पर एक भार दीख रहा था। मैंने कचौरी बनायी और साथ बैठकर खायी पर हमारे बीच की कोई कडी खो रही थी। पास आने की जगह हमे कोई दूर ले जा रहा था। हमारी दूरी कम होने की जगह बढ़ रही थी।

● ●

नौ

मेरे और किशोर के बीच अब कोई अन्तर नही रह गया था। हमारे बीच अब नाममात्र का ही परदा रह गया था। वह हॉस्टेल की जगह मेरे घर अधिक रहता था। ड्यूटी से लौटने पर मैं उसे अक्सर अपने घर पर ही बैठा पाती। मेरी एक गोद में सिर रखकर रीटा सो रहती थी तो दूसरी गोद में वह सिर रखकर लेट जाता था। कभी स्नेहवश रीटा के गाल चूम लेती तो वह भी इशारे से अपना गाल बताता।

हमेशा की तरह उस दिन भी वह मेरी गोद मे सिर रखकर लेटा हुआ था। अपने गाँव जाकर लौटा था इसलिए उसे कहने और मुझे सुनने को काफी बातें थीं। रीटा के लिए वह उसकी प्रिय मूगफली और चना लेकर आया था, पर उस समय रीटा घर पर नहीं थी और किशोर भूख से बेचैन था।

किशोर भूख का कच्चा है। सोचती हूँ जब वह छोटा रहा होगा तब भूख के मारे रो-रो पडता रहा होगा। अब भी भूख से रुआसा हो उठता है। मैंने उससे कहा कि मैं झट से भोजन बना दूँ पर उसने मूँगफली से ही काम चला लेना चाहा।

'मुझे भोजन नहीं करना है, बातें करनी हैं', वह बोला। मैं पलग पर पैर पसारे बैठी थी और वह मेरी जाघो का तकिया बनाये लेटा हुआ था। पास में ही मूगफली पडी थी। मैं उसके मुह मे एक-एक दाना डालती जा रही थी और वह उसे चबाता-चबाता बातें कर रहा था।

'पिता जी ने मुझे लडकी दिखान के लिए ही बुलाया था, बाकी बातें तो बहाना मात्र थीं।'

'तो लडकी पसद करके आये हो या यों ही लौट आये ?'

'तीन लडकिया देखी पर ठीक एक भी नही लगी।'

'ऐसी है इनके मन की स्थिति।'

'धीरे-धीरे तबियत ठीक हो जायगी।' सतीश मानो मुझे आश्वासन दे रहा था। फिर हमने रसोई में बैठ कर ही चाय पी। केशू भाई बैठक में बैठे रहे।

'मेरा इस समय आना तुम लोगों को अच्छा नहीं लगा ?' उसने सीधा प्रश्न किया। 'मैं सचमुच इसलिए जल्दी आया जिससे केशू भाई से भेंट हो जाय और फिर तुमने जल्दी आने के लिए कहा भी तो था। मैंने सोचा सब साथ बैठ कर कचौरी खायेंगे।'

'तुम्हारा आना अच्छा क्यों नहीं लगेगा ? पर आकर जिस तरह से दरवाजे के पास खड़े थे वह अच्छा लगने जैसा नहीं था। मानो तुम हमारी जासूसी कर रहे हो।'

'मेरे विषय में ऐसी गलत धारणा मन में मत रखना। तुम्हारे और केशू भाई के सम्बन्ध को लेकर मेरे मन में कोई शंका नहीं है। यदि तुम्हारे बीच ऐसा कोई अयोग्य सम्बन्ध होता तो केशू भाई तुम्हें मुझे सौंपते ही क्यों ? क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकता ?'

'तुम्हारे मन में कुछ भी हो पर केशू भाई को तो ऐसा ही लगेगा न ! इस तरह दरवाजे के पीछे चुपचाप खड़ा रहना।'

'मेरा उद्देश्य यह नहीं था। मैं यों ही खड़ा रह गया था। पहले तो सोचा कि देखूं मुझे इस समय देखकर तुम्हें कैसा अचरज लगता है। यही सोचता हुआ अन्दर आने की भूमिका बना रहा था।'

सतीश ने केशू भाई से भोजन करके जाने का काफी आग्रह किया पर व रुके नहीं। उनके मन पर एक भार दीख रहा था। मैंने कचौरी बनायी और साथ बैठकर खायी पर हमारे बीच की कोई कड़ी खो रही थी। पास आने की जगह हमें कोई दूर ले जा रहा था। हमारी दूरी कम होने की जगह बढ़ रही थी।

● ●

नौ

मेरे और किशोर के बीच अब कोई अन्तर नही रह गया था। हमारे बीच अब नाममात्र का ही परदा रह गया था। वह हॉस्टेल की जगह मेरे घर अधिक रहता था। ड्यूटी से लौटने पर मै उसे अक्सर अपने घर पर ही बैठा पाती। मेरी एक गोद मे सिर रखकर रीटा सो रहती थी तो दूसरी गोद मे वह सिर रखकर लेट जाता था। कभी स्नेहवश रीटा के गाल चूम लेती तो वह भी इशारे से अपना गाल बताता।

हमेशा की तरह उस दिन भी वह मेरी गोद मे सिर रखकर लेटा हुआ था। अपने गाँव जाकर लौटा था इसलिए उसे कहने और मुझे सुनने को काफी बातें थीं। रीटा के लिए वह उसकी प्रिय मूगफली और चना लेकर आया था, पर उस समय रीटा घर पर नहीं थी और किशोर भूख से बेचैन था।

किशोर भूख का कच्चा है। सोचती हूँ जब वह छोटा रहा होगा तब भूख के मारे रो-रो पडता रहा होगा। अब भी भूख से रुआसा हो उठता है। मैंने उससे कहा कि मैं झट से भोजन बना दूँ पर उसने मूँगफली से ही काम चला लेना चाहा।

'मुझे भोजन नहीं करना है, बातें करनी हैं', वह बोला। मैं पलग पर पैर पसारे बैठी थी और वह मेरी जाघो का तकिया बनाये लेटा हुआ था। पास मे ही मूगफली पडी थी। मैं उसके मुह मे एक-एक दाना डालती जा रही थी और वह उसे चबाता-चबाता बातें कर रहा था।

'पिता जी ने मुझे लडकी दिखाने के लिए ही बुलाया था, बाकी बातें तो बहाना मात्र थी।'

'तो लडकी पसद करके आये हो या यो ही लौट आये ?'

'तीन लडकिया देखी पर ठीक एक भी नहीं लगी।'

'क्यों, सुन्दर नहीं थीं क्या ?'

'देखने मे तो तीनों सुन्दर थीं, वैसे कन्या सुन्दर न हो तो हमारे घर कोई बात करने का साहस ही न करे।'

'ऐसा अभिमान अच्छा नहीं।'

'अभिमान की बात नहीं है। मैं सच कह रहा हूँ। हम पैसेवाले हैं, समाज में ऊँचा स्थान है, इस कारण कोई सामान्य घर की कन्या तो हमारे घर की कल्पना भी नहीं कर सकती।'

'अच्छा !' मैंने भौंह चढ़ाइ। पर यह तो उसे सिर्फ चिढाने के लिए ही। बात उसकी गलत नहीं थी। मैंने कहा

'मुझे लगता है कि तुम कोई लडकी पसद नहीं कर सकोगे। मुझे बुला लेना था न ! मैं झट पसंद कर लेती।'

'मेरे लिए तुम लडकी पसद करोगी ?' वह मेरी आँखो को टक्टकी बाँधे देख रहा था। फिर वह बोला 'मैं जब भी शादी करूँगा तुम्हें लडकी दिखाकर ही करूँगा, तुम्हारी इच्छा से। नही तो शादी नही करूँगा।'

'मैं तुम्हे अपनी इच्छा से बाँध नही रही हूँ। मैंने तो यो ही मजाक किया था।'

'पर मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ।'

किशोर अपनी बात मे गभीर था। उसने अपने शब्दो का पालन किया था। उसने अपनी अमेरिकन पत्नी का फोटो मुझे पहले ही भेजा था। सभी आवश्यक जानकारी देते हुए उसने मेरी सम्मति माँगी थी। उसने मुझे अमेरिका भी बुलाया था। पर इस तरह जाया जाता है ?

मेरी सम्मति तो मिलनी ही थी। यदि मैंने सहमति न दर्शायी होती तो उसने उसके साथ शादी न की होती पर मैं सहमति कैसे व्यक्त न करती ? मैं चाहती थी कि किशोर हर तरह से सुखी रहे, पढ़ लिख कर आगे बढ़े, प्रगति करे।

उस समय के उसके शब्दों पर मैं न्योछावर हो गयी थी। मैं झुक

कर उसके कपोल पर चुम्बन करके अपनी प्रसन्नता व्यक्त करना चाहती थी पर उसने अपना मुंह उठा कर मेरे ओठो को चूम लिया था। उसके ओठ तप रहे थे। मेरे लिए उसे रोकने का, मना करने का, समझाने का अवसर ही नही रह गया था।

हमेशा की तरह उस समय भी दरवाजा खुला हुआ था और उसी समय लक्ष्मणराव अन्दर आ गया था।

किशोर के चेहरे का रग उड गया था। शायद काप रहा था। मैं भी घबडा गयी थी। लक्ष्मणराव क्या कहेगा, क्या करेगा इसी के विकल्पो से मन मूढ हो गया था। किशोर बैठ गया था।

लक्ष्मणराव ने हम दोनो पर क्रमश नजर डाली और फिर धीमी आवाज मे उपालम्भ देते हुए कहा 'दरवाजा तो बन्द रखना था, कोई देख लेगा तो यहाँ रहना मुश्किल हो जायगा।' और बाहर चला गया।

आदमी पर बिजली गिरती होगी तब क्या बीतती होगी—यह तो मालूम नही पर ऐसा ही कुछ होता होगा।

लक्ष्मणराव जो कुछ बोला था उस पर सहज विश्वास नही हो रहा था। इसकी अपेक्षा उसने मुझे लहूलुहान और बेहोश होने तक पीटा होता, मुझे घसीट कर बीच रास्ते पटक दिया होता तो अच्छा हुआ होता।

उसने किशोर को दो थप्पड मार दिये होते तो मैं उसके पैर पकड कर आजिजी करती, प्रार्थना करती 'दोष मेरा है, उसे कुछ न करो, छोड दो इसे जाने दो। मैं तुम्हारे पैर पडकर माफी मांगती हूँ, तुम्हे जो भी सजा देनी हो, मुझे दो पर उसे हाथ न लगाओ।'

शायद किशोर भी ऐसा ही सोच रहा था। वह हक्का-बक्का सा हो गया था। ऐसा तो उसने भी नही सोचा होगा। मुझे लेकर उसके मन में जो भी कल्पनाएँ थी—लक्ष्मणराव ने उन्हे चूर-चूर कर दी थीं। मानो मैं कोई वश्या होऊँ, लोगों को फँसाना मेरा रोज का धधा हो और लक्ष्मणराव मेरा पति नही नौकर या पहरेदार हो! मानो वह मेरे शरीर का व्यापार कर रहा हो, वह मेरे शरीर का मालिक नही दलाल की तरह

पेश आया था। मेरे रोम-रोम में ज्वालाएँ फूट पड़ी थीं। किशोर मेरे विषय मे क्या सोचेगा ? वह मुझे क्या मानेगा ?

लक्ष्मणराव इतना कहकर दरवाजा बन्द करता हुआ बाहर चला गया था।

धीरे-धीरे किशोर के मुँह पर से भय और लज्जा दूर हुई। उसने धीरे से कहा 'दरवाजा खुला है इसका तो ध्यान ही नहीं रहा।' और मुझे ढाढस देता सा हँसा।

हमारे परस्पर व्यवहार की रेखा मानो टूट गयी थी। शायद वह मेरा असली रूप जान गया था। वह अधिक देर तक रुक नहीं सका, तुरन्त चला गया। मैं एक शब्द भी नही बोल पायी।

किशोर के जाने के बाद मैं खूब रोयी। मुझे लग रहा था कि किशोर अब यहाँ कभी नही आयेगा। वह उस स्त्री के घर नही जायेगा जिसका पति उसके व्यभिचार का साक्षी हो। अब मुझे उसे अपना मुह न दिखाना पड़े तो अच्छा।

ऐसा ही हुआ भी। काफी दिनों तक किशोर नहीं आया। एक दिन लक्ष्मणराव ने ही मुझसे कहा

'आज किशोर बाबू आने वाले हैं।'

'तुम्ह कैसे मालूम हुआ ?' मैंने आवेश में पूछा।

'आज मैं हॉस्टेल गया था। बहुत दिनो से उन्हें देखा नही था इसलिए सोचा कही नाराज तो नहीं हो गया है ? शाम आने का आमन्त्रण दे आया हूँ।'

'तो उससे कहना था न कि मैं उसे बहुत याद करती हूँ, मुझे खाना-पीना भी अच्छा नही लगता, काम मे भी मन नही लगता।'

लक्ष्मणराव हँसा बहुत कुछ कहा है। यह सब मुझे सीखने की जरूरत नहीं।'

मन में सोचा कि इस आदमी का गला दबा दूँ और कह दूँ 'साले-नीच-तुच्छ-भँडुए, अपनी सगी औरत का व्यापार करना चाहता है ! कमाना-

धमाना भारी पड़ता है जो इस कमाई का सस्ता रास्ता ढूढ लिया है ? इसकी जगह मुझे कोठे पर बैठा, तुझे ज्यादा ग्राहक मिलेंगे।'

यह मेरा पति था! मेरे जीवन का मालिक था! इससे मैं कैसे प्रेम करूँ? उसके प्रति मेरे मन मे जरा भी चाहत नही थी। एक ही इच्छा होती थी—उसका गला दबा देने की।

पर बाद मे मुझे उस पर दया आती। हमारा सम्बन्ध तो वर्षों से नाम मात्र का रह गया था। अब मैं उसका खर्च चलाती थी। जो मैं कहूँ वही करता था। और मुझसे तथा जिससे भी मिले पैसा माँग लेता था। परिचितो से उधार ले लेता। मेरे विश्वास पर ही लोग उसे पैसा दे देते थे। उसका चलता तो वह लोगो को पैसे वापस देने की जगह उन्हें बुलाकर उ ह मुझे सौंप देता और खुद दरवाजा बन्द करके पहरा भरता। मैं उससे लडा करती और लोगो के पैसे वापस करवाती।

दुधारू गाय की लात की तरह वह मेरी हर कडवी-कठोर बात सह लेता था।

उस शाम किशोर के आने के पहले ही लक्ष्मणराव ने सुबह का बचा-खुचा भोजन स्वयं निकालकर खा लिया। वैसे मैं उसे कभी भी परोसती नही थी। वह आता और अपने आप जो कुछ रखा होता निकाल कर खा लेता। मैं जानबूझ कर उसके लिए कुछ ज्यादा ही छोडती। आज भोजन करके उसने अपनी स दूक तैयार की। लगा वह कहीं बाहर जा रहा था, पर मैंने पूछा नहीं, जाते समय उसी ने कहा

'बाहर जा रहा हूँ, दो दिन बाद आऊँगा।'

'पैसा की जरूरत है ?' मैंने जानबूझ कर ही यह पूछा था।

'बाहर जाने के लिए पैसा तो पास मे चाहिए ही।' वह हँसा। एक थप्पड मार देने का मन हो रहा था।

मैंने उससे फिर पूछा 'किशोर से मिलने हॉस्टेल गये थे—उसन कुछ नहीं दिया क्या ? मुझे विश्वास नही होता कि तुमने उससे पैसे न मागे हो।'

'तू अब पक्की होती जा रही है।' कहते हुए वह हँसा और अपनी

सन्दूक उठाकर चल दिया। उसकी हँसी में स्वीकृति थी। किशोर से उसने बड़ी रकम ली होगी जिसे उड़ाने वह जा रहा था, बदले में मुझे किशोर को सौंप कर।

किशोर रात मेरे घर पर रहे, मेरे शरीर का उपभोग करे—यह मुझसे सहन नहीं हो सकता। पर किशोर ने रुपये देकर लक्ष्मणराव से मुझे खरीदा था। शाम जब रीटा पढ़ कर लौटी तो उससे थोड़े गुलाब मँगवाये किशोर के लिए शैया सजाने के लिए। रीटा ने गुलाब के फूल मँगवाने का कारण पूछा तो उससे भी यही कहा

'किशोर बाबू आने वाले हैं। आज रात वे यहीं रहेंगे और यहीं भोजन करेंगे।'

'तब तो बहुत मजा पड़ेगी।' उसने मासूमियत से कहा।

मैं किशोर की प्रतीक्षा कर रही थी। खिड़की की छड़ें पकड़े मैं कभी आकाश की ओर देखती तो कभी रास्ता देखती। रह-रह कर दिल धड़क उठता था। अपनी बेचैनी मिटाने के लिए मैंने रीटा को गोद मे उठा लिया।

रीटा से किशोर की बातें करने लगी। रीटा किशोर की बातो से प्रसन्न होती है, उसके बहाने मैं भी प्रसन्न हो लेती हूँ। इस बीच आनंदित होती हुई रीटा ने मेरा मुँह फेर कर सामने इशारा करते हुए कहा देख मम्मी, किशोर चाचा आ रहे हैं।'

सामने किशोर दिखायी दिया। आज वह कुछ अलग दीख रहा था। उसकी चाल मे पौरुष झलक रहा था। उसके मुह पर विद्या की आभा दीख रही थी। कपोल पर बाल फैले हुए थे। मुख पर भीगती हुई मसें सुन्दर लग रही थी। वह सामने देखते हुए चल रहा है। मैं आतुरता-पूर्वक उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही हूँ जब वह हमारे घर की ओर देखे और हमारी नजरें मिलें। उसने हमे एक नजर देखा तो पर हमारी प्रसन्नता को नजरो पर चढ़ाया नहीं, नजर झुका ली।

'यदि वह यहाँ न आये और सीधा चला जाय तो।'—क्षण के लिए

मन मे शका उठी । लगा मैं मूर्छित हो जाऊँगी । पर दूसरे ही क्षण लगा कि वह हमारे घर ही आ रहा है ।

यह कैसा विकार था ? मैं किस रास्ते आगे बढ़ रही थी ? क्या करने के लिए तैयार थी ? कुछ समझ मे नही आ रहा था । मैंने कोई जोखमी रास्ता अपनाया था । सबधो की ऐसी धार पर आ पहुँची थी कि जहा से पैर जरा भी रपटे तो किस प्रकार रक्षा की जाय—इसका कोई रास्ता नही दीख रहा था । इसका विचार भी नही किया था । पर इस धार के अलावा कही और पैर रखने की इच्छा भी तो नही थी । इस धार पर खड रहने का लोभ जाग उठा था ।

दरवाजा खोलकर मैं उसके सामने खडी हो गयी । 'आइये' कह कर मैंने उसका स्वागत किया और बोली 'बहुत देर से हम आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।'

'मैंने तुम्हे खिडकी पर देखा था । वे घर नही हैं ?'

किशोर प्राय लक्ष्मणराव का नाम नही लेता था । मैंने कई बार ऐसा अनुभव किया है । लक्ष्मणराव का नाम लेने से उसकी जीभ को छूत लग जाती होगी ? उसी की पत्नी के साथ एकात का लाभ लेनेवाले को ऐसी छून-छात शोभा नही देती—विचार आया पर मन ने उसे टिकने नही दिया ।

किशोर शुद्ध था, उसका प्रेम भी वैसा ही विशुद्ध था । लक्ष्मणराव का नाम मुह पर न लेना ही ठीक था उसके लिए । मैंने जवाब दिया

'वे तो बाहर गय हैं । सुबह तुमसे नही मिले थे ?'

'मिले थे न । उन्ह तुमन मेरे पास भेजा था ?'

कुरसी मे बैठते हुए किशोर ने पूछा

मुझे हँसी आयी । मैंने उल्टा प्रश्न किया

'मैं भला क्यो उन्ह तुम्हारे पास भेजती ?'

'मुझे यहाँ बुलाने के लिए ।'

'किशोर बाबू, यह घर तुम्हारा है, मैं तुम्हें पराया नहीं मानती ।

इसलिए तुम्हें, अपने आदमी को बुलाने की क्या जरूरत ? इच्छा हो तो आये, न हो तो न भी आये। मैं यह पूछना नहीं चाहती कि उन्होंने तुमसे क्या कहा था, मुझे उसमें कोई रस नहीं है। इतने दिनों से हमारा परिचय है, तुम उन्हें पहचानते न हो यह सम्भव नहीं है। फिर भी यदि तुम उन्हें अच्छी तरह से न पहचानते हो तो मुझसे पूछ सकते हो।'

'आज तक तो मुझे यही लगा है कि मैं उन्हें पहचानता हूँ पर यदि परेशानी आयेगी तो तुमसे पूछ लूंगा। पर आज तो तुमने अभी तक मुझसे पानी के लिए भी नहीं पूछा।'

मैं क्षोभ से भर गयी। लक्ष्मणराव का क्रोध किशोर पर उतार कर उसके प्रति अन्याय कर रही थी। बात की दिशा बदल गयी थी।

चाय-पानी पीकर मैंने ही किशोर से पूछा 'तुमसे क्या कह कर उसने यहाँ बुलाया था ? तुमसे ऐसा तो नहीं कहा था न कि मैं मरने पड़ी हूँ और मरने के पहले तुम्हारा मुँह देख लेना चाहती हूँ ?'

'यह जान कर क्या करोगी तुम ? अभी तो कह रही थी कि यह सब जानने की तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है—झूठ बोल रही थीं ?'

'कुछ भी हो, मैंने तुम्हें बुलाया नहीं था—यह तो तुम मानते हो न ?'

'ऐसा न मानता होता तो आता ही क्यों।'

'तुमने उन्हें कितने रुपये दिए हैं ?' मैंने सीधा प्रश्न किया।

'यह जान कर क्या करोगी ?'

'मेरे लिए यह जानना बहुत जरूरी हो गया है। मुझे ऐसी गंध आती है कि तुम उन्हें रुपये दे-देकर मानो मुझे खरीदना चाहते हो। मैं यह सहन नहीं कर सकती। ये देखो, तुम्हारे लिए गुलाब बिछा पलंग। अपने खरीदने वाले के सत्कार की तैयारी !'

'तुम्हें इस तरह से मेरा अपमान नहीं करना चाहिए। मैं तुम्हें कभी भी खरीदना नहीं चाहता। तुम मुझसे ऐसा इसलिए कह रही हो क्योंकि तुम अपने आप को ही नहीं पहचानतीं। तुम वह स्त्री हो जिसे कोई

खरीद नही सकता। तुम सब कुछ दे सकती हो पर बिक नही सकती। मैं उन्हें रुपये केवल इसलिए देता रहता हूँ ताकि वे तुम्हें शान्ति से जीने दें। मैं न दूँ रुपये तो वह दूसरी जगह से लाने का प्रयत्न करेगा और हो सकता है इस तरह तुम्हारी जिन्दगी मे एक झंझावात आ जाय।'

मैं किशोर से आँखें नही मिला पा रही थी। पलग की ओर भी निगाहे नही टिका पा रही थी। पलग पर बिछी गुलाब की पखुडिया मेरा उपहास कर रही थी।

'मैं तुम्हें किस दृष्टि से देखता हूँ इसकी स्पष्टता तो अभी हुई ही नही है। पर, इतना स्पष्ट है कि तुम मुझे अच्छी लगती हो।'

यह कहते किशोर ने रीटा के सामने देख लिया। वह सोच रहा होगा कि यह सब सुन कर रीटा क्या सोच रही होगी। फिर उसने रीटा को अपनी गोद में बैठा लिया और उसे प्यार करने लगा। रीटा के चुबन के लिए उसने अपने गाल उसके मुह के सामने कर दिए।

किशोर के मन मे कोई बात घुल रही थी। उसने फिर रीटा को गोद से उतार कर धीरे से कहा -

'बेटी, सामने की दूकान से मेरे लिए, अपने लिए तथा अपनी मम्मी के लिए कुछ खाने के लिए ले आओगी ?'

'चॉकलेट ले आऊँ ?' रीटा ने तुरन्त पूछा।

एक रुपये की नोट जेब से निकालते हुए उसने कहा 'तुझे जो भी अच्छा लगे, हम तीनो के लिए ले आओ। चॉकलेट ही ले आना।'

रीटा खुश होती हुई दरवाजे के पास पहुँची तो किशोर उठा और बोला

'तुम उस बदमाश आदमी के साथ किस प्रकार जिन्दगी गुजार सकती हो ? मैं तो इसका विचार करते ही कांप जाता हूँ। तुम उससे तलाक ले लो।' कहते वह क्षण के लिए रुका और फिर वाक्य पूरा करते हुए बोला, 'और मेरे साथ रहो। हम शादी कर लेंगे। मैं तुम्हे चाहता हूँ। रीटा को भी चाहता हूँ। मुझे तुम्हे यह विश्वास दिलाने की कोई जरूरत

नही है कि उसे मैं अपनी बेटी की तरह रखूगा। इस समय मैं तुम्हारे सिवा और कुछ नही देख पाता, विचार नही कर पाता। शायद मैं इसी-लिए उन्हें पैसा देता हूँ ताकि इस आधार से ही तुम्हारे पास पहुँच जाया जाय। यह रास्ता अनुचित है, इससे तुम्हारा अपमान होता है पर मैं भी तो लाचार हूँ। यदि तुम चाहो तो इस लाचारी का अत आ सकता है।'

किशोर ने अपनी आखें मेरी आखो मे पहना रखी थी। वह वहा अपना इच्छित उत्तर ढूढ रहा था। मैं उसे क्या उत्तर देती? मेरी आवाज फूट नही पा रही थी। मेरी आखो ने ही जवाब दिया। धन्यता प्रदशन के आसू थे वे। किसी स्त्री को ऐसा पुरुष मिलता हो तो उसके लिए इससे अधिक धन्यता और क्या हो सकती है उसके जीवन मे! और मेरी जैसी स्त्री को मिले तो यह ईश्वर की कृपा ही मानी जा सकती है। उमगें मन मे उछल रही थीं। मैं कुछ बोल न सकी। अपने मुह को हथेलियो मे छिपाकर बस रो पडी। उसने मेरे सिर पर हाथ फेरा और मेरी आँसू भीगी हथेलियो को वहाँ से हटाते हुए कहा

यदि तुम मुझे इन हाथो को सौंप दोगी तो मैं इन्हे जिन्दगी भर नही छोडूगा।'

रोते-रोते मैं बस इतना ही बोल सकी 'किशोर बाबू, मुझे समय दो, इस समय मैं कुछ भी सोच नही पा रही हूँ। मैं भ्रमित हो गयी हूँ। इसका यह मतलब न लगाना कि मुझे तुम पर विश्वास नही है। तुम्हारे भरोसे मैं अपनी जिन्दगी को कही भी बहा देने के लिए तैयार हूँ वह तुम मे भी।'

फिर विचार करने की जरूरत नही है। जिन्दगी के प्रवाह मे हम अपनी नाव छोड दें। जो होना हो, हो ले। जो हमेशा भविष्य का विचार करके आगे बढता है उसे सुख ही मिलता हो ऐसा नहीं है। शायद इसका विपरीत ही सच हो। जो विचार किये बिना ही कूद पडता है—सुखी होता है।'

'नहीं, इस प्रकार मैं कूद नही सकूगी, मुझे माफ करना।' विवश

होकर मैंने कहा।

दरवाजे से रीटा के लौटने की आहट आयी। किशोर ने मेरा हाथ छोड़ दिया। आँसू पोंछ लिए। रीटा चॉकलेट लायी थी। उसने अपने नन्हें हाथों से हमें चॉकलेट खिलायी। उसका मीठा स्वाद उस समय कितना मीठा लगा था—

● ●

दस

उस दिन सुबह घर का काम-काज कर रही थी कि चक्कर आ गये और गिरते-गिरते बची।

अक्सर मुझे ऐसा कुछ होना होता है तो उसका पहले से ही आभास हो जाता है। चक्कर आने के पहले सिर भारी हो जाता है और मन बेचैन होने लगता है। या तो अंतहीन विचार आने लगते हैं या मस्तिष्क सुन्न हो जाता है। ऐसा लगता है तो मैं पहले से ही सावधान हो जाती हूँ। पर, आज मुझे उसकी बिलकुल खबर न पडी। खडी होते ही सिर पर रक्त जम गया और आँखो के सामने अँधेरा घिर आया।

मैं चक्कर खा कर गिर पडती पर सामने की दीवार पर हाथ टिक गया। सुमन बहन आगन साफ कर रही थी। उनकी नजर मेरी ओर ही थी इसलिए वे तुरन्त मेरी ओर लपकीं और सतीश को आवाज लगाई।

'अरे सतीश भाई, बाहर तो आओ।'

हाथ पकड कर मुझे बैठाया। सतीश घबराया-सा बाहर दौड आया।

'एकाएक क्या हुआ ?' कहता हुआ वह मेरे पास बैठ गया और मेरे माथे मे तथा पीठ पर हाथ फेरने लगा।

'कुछ नहीं, जरा चक्कर आ गये।'

'रमा बहन की तबियत ठीक नहीं है ?' सुमन बहन ने सतीश से पूछा।

'यो तो ठीक है पर कभी-कभी इह चक्कर आ जाते हैं।' सतीश ने जवाब दिया और मुझसे बोला 'चलो, अदर पलग पर लेट जाओ।'

सुमन बहन और सतीश सहारा देकर मुझे अदर ले गये और पलग पर बैठा दिया। भीत का सहारा लेकर मैं पलग पर बैठ गयी। सुमन बहन ने सतीश से डाक्टर बुला लाने के लिए कहा

'तुम जाकर आओ तब तक मैं यही बैठी हूँ।'

मैंने कहा 'ऐसी कोई दौड-धूप करने की जरूरत नही है। मेरे पास दवा है। डाक्टर इसमे क्या करेगा ? मैं जानती हूँ अपनी बीमारी।'

मेरे बताने पर सतीश ने दवा मुझे दे दी। दवा खाकर मैं लेट गयी।

'तुम रसोई के चक्कर में मत पडना। मेरे घर खा लेना, मैं बना रही हूँ।' सुमन ने सतीश से कहा।

मेरी इच्छा तो हो रही थी कि कह दूँ कि ये खुद बना लेंगे। इनकी तो रोज की आदत है, कोई नयी बात नही है पर बोली नही।

समझ नही पा रही थी कि सुमन भली है या लुच्ची। देखने मे तो वह भली लगती थी पर मुझे उस पर विश्वास नही बैठता था। शायद मेरा स्वभाव ही ऐसा हो गया है। सुमन विधवा है। उसका पति भारी सपत्ति छोड कर मरा था। कुछ दिन पहले ही उसने मुझसे यह कहा था।

उसके दो लडके बेंग्लोर में रग का व्यापार करते थे। सुमन की उम्र ज्यादा नहीं थी। मेरी उम्र की ही होगी। उसका पहला लडका सत्रह वर्ष की उम्र मे जन्मा था। उसका पति व्यापारी था। लडको को पढाने-लिखाने की चिन्ता छोड दोनो को व्यापार में ही लगा दिया था। उन दिना यहाँ व्यापार ठडा चल रहा था। इसी बीच बेंग्लोर में केमिकल्स की एजेंसी मिल जाने पर दोनो लडको को बेंग्लोर भेज दिया।

पिछले साल ही दोनो लडको की शादी हुई थी, लडका ने सुमन बहन से बेंग्लोर रहने के लिए बडा आग्रह किया, कुछ समय वे वहाँ रहीं भी परन्तु उन्ह वहाँ अच्छा नहीं लगा। सुमन ने ही कहा था

'वहा के लोगों के साथ हम लोगो का अच्छा नही लग सकता। प्रदेश ही अलग ढग का है। बोली अलग, पहरावे अलग, रीति-रिवाज अलग। लडको को तो व्यापार के कारण रहना पडता है, हमे वहाँ रहने की क्या जरूरत ? लडके अकेले हों तो मैं वहाँ रहूँ भी। वे अपनी-अपनी पत्नी के साथ हैं और आज के नये जमाने मे लडको, बहुओ के साथ रहना,

उनकी स्वतनता मे विघ्न बनना उचित नहीं।'

लडको के बेंग्लोर चले जाने पर जो जगह खाली हुई थी वही ः किराये पर मिली थी। वैसे हमारे किराये पर उसके जीवन-निर्वाह ः *आधार नहीं था। लडके घर खच के लिए मा का ढाइ सौ रुपये मह* भेजते थे। उसके नाम बैंक में भी काफी रुपये जमा थे।

यो तो मेर नाम भी बैंक मे कहा कम रुपये जमा थे। पर वे स रुपये तो—

मैंने अपनी आखें बद करके मानो इस विचार को भगा दिया। मै अपनी आखो पर इस सकल्प के साथ हाथ रखा कि अब कोई विचार न करूँगी।

गहरी और धीमी गति से श्वास चल रही थी। सतीश रसोई मे कु उठा-पटक कर रहा था। सुमन बहन के घर से कप-रकाबियो की खन खनाहट सुनायी दी। कुछ ही क्षण बाद वे चाय की ट्रे लेकर आयीं। 'ल रमा बहन, थोडी चाय पी लो, ठीक रहेगा।' उन्होंने कहा। वह मे अकेले के लिए ही चाय नहीं लायी थी, सतीश के लिए भी लायी थी रसोई की ओर जाकर उसने सतीश को आवाज दी। सतीश ने उत्त दिया

'नहाने के लिए पानी गरम करने के लिए रखा है पर कम्बख्त स्टोव जल ही नहीं रहा है, कब से पिन कर रहा हूँ।'

सुमन बोली तुमसे यह सब नहीं होगा। यह तो हम स्त्रियो का काम है, लाओ मेरे पास।'

मैं अन्दाज लगा सकती हूँ। सुमन जमीन पर बैठ स्टोव म पिन लगा रही है। सतीश दियासलाई लिए पास ही बैठा है। दोनो के सिर टकरा न जायें तो अच्छा। स्टोव की आवाज आती है। दोनो हँसते हुए बाहर आते हैं। मैं मुह फेरे पडी रहती हूँ। हम तीनों ने साथ बैठ कर चाय पी।

'रमा बहन की तबियत ठीक न हो तब तक मेरे घर ही भोजन

करना। रसोई का काम तुम पुरुषो का नहीं है। मेरे घर मे नहाने का पानी गम हो रहा है। पानी लेकर नहा लेना। तुम व्यर्थ ही संकोच करते हो।' सुमन सतीश को संबोधित कर कह रही थी।

'तुम्हें सौ रुपये किराया देते हैं वह तो इस तरह से हमारे ही भोजन मे पूरा हो जायगा।'

सतीश ने मजाक मे कहा।

'मैंने आमदनी की दृष्टि से मकान किराये पर नहीं दिया है। मैं यहाँ अकेली पड जाती हूँ। तुम सब जैस हमउम्र हो तो साथ रहता है—इसी कारण मकान किराये पर दिया है। किराये के सौ रुपयो की मेरे लिए कोई गिनती नहीं है।'

सुमन अपना बडापा दिखा रही थी। मुझे उसकी डींग बिलकुल न भायी। कुछ देर बाद वह सतीश को भोजन कराने ले गयी। इस तरह वह उसे खींच ले गयी मानो वह उसकी मालिक हो।

'चलो, भोजन करने, तैयार है, जल्दी करो। फिर तुम्हें आफिस की देर होगी।'

वह चाहती तो भोजन की थाली परोस कर यही दे जाती।

यह औरत अकेली है—उसे साथ चाहिए। उसे मेरा नहीं, शायद सतीश का साथ चाहिए और सतीश तो साथ का ही भूखा है। इसीलिए तो मुझे यहाँ लाया है।

और मैं उसकी कौन सी भूख मिटा सकी हूँ? यदि सुमन उसकी भूख शात कर दे तो मेरा क्या हो?

मैं न तो भूखी हूँ और न किसी की भूख मिटा ही सकती हूँ। सुमन और सतीश दोनो साथ हो लें। दोनो भूखे। दोनो परस्पर एक दूसरे की भूख मिटा लें तो मैं बिन जरूरी, बेकार, जूठन जैसी बन कर फिक जाऊँ।

सुमन की रसोई से दोनो की बातों की आवाजें आ रही हैं। शायद सतीश ने अब तक सुमन का हाथ पकड कर एक बार तो चूम ही लिया— होगा? 'कैसी स्वादिष्ट रसोई इन हाथों ने बनाई है।' कहते हुए।

स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है। एक स्त्री के सुख के मार्ग में दूसरी स्त्री बीच मे अवरोध बनकर खड़ी हो जाती है। दोनों के स्वार्थ टकराते हैं। दोनो को सुख चाहिए पर दूसरी किसी एक के भोग पर ही प्राप्त कर पाती है। क्यों है ऐसा? दोनों मिलकर सुख भोगें तो कोई प्रश्न ही न रहे। पर ऐसा नहीं हो पाता। इसी का तो भय रहता है।

सुमन को यदि एक बार सुख का पात्र मिल जाय तो वह उस पर अपना पूरा अधिकार जमा लेना चाहेगी। फिर तो वह मुझे—रमा को—नारगी के छिलके की तरह फेंक देगी।

सतीश पर मैं विश्वास नहीं कर सकती। वह मेरा कौन है? उसे मैंने अपना बनाया भी नही है। सतीश की भूख तो अतृप्त ही है। उसका दोष निकालना भी ठीक नही, यह मैं कहाँ नहीं जानती!

वह इस तरह के छोटे-मोटे सुख प्राप्ति के प्रसग हाथ से न जान दे तो मैं जान कर भी अनदेखी कर देने के लिए तैयार हूँ। ऐसा न होता तो मैंने कमली को कब का निकाल दिया होता और उसकी जगह किसी लडके को काम-काज करने के लिए रख लिया होता।

गदे कपडे पहने कमली की जाघों को सहलाते सतीश को मैंने देखा है। सतीश मुझसे छिपाकर कमली को कपडे-लत्तो के लिए पैसा देता है और इसके बदले मे वह कांपते-कांपत उसके हाथो से खेल लेता है। यह सब मुझसे कैसे छिपा रह सकता है?

शायद सतीश की बडी उम्र कमली के मन मे किसी प्रकार की आशका पैदा नही करती। सतीश ऐसा करके कमली की किस बात को उकसा रहा है, कमली यह समझ नही पाती। समझती तो शायद थप्पड मार देती। न भी लगावे। मुमकिन है उसे यह अच्छा लगता हो—नासमझी मे।

कमली के गाल मे जब सतीश ने चुटकी भरी थी तब कमली ने कहा भी था

'उह, यह क्या करते हैं? मुझे तो जलन होने लगी। तुम तो शान्ति

से काम भी नही करने देते। ऐसी शरारत कहीं अच्छी लगती होगी! सेठानी देख ले तो कैसा लगे? तुम्हारे मन मे भले ही कुछ न हो पर कोई देखे तो क्या सोचे?'

कमली के साथ सतीश ज्यादा घुल-मिल नही सकता और ऐसा हो तो भी मुझे इसकी परवा नही। हा, सुमन बहन का डर लगता है। बयालीस वर्ष मे भी वह सुदर लगती है।

कमली की उम्र तो अभी कच्ची है। वह पुरुष को जकड लेना क्या जाने! सुमन तो पकी उम्र की है, अनुभवी और चालाक। वह हर तरह से पुरुष को मोह ले सकती है।

सुमन के रसोईघर से अभी भी बातों की आवाज आ रही है। सतीश को देर हो रही है। दस बजकर दस मिनट हो गये हैं। उठकर सतीश को बुला लाने की इच्छा होती है।

'बातो में देर हो रही है इसका भान है या नही?' लगता है मैं लड पडूगी या रो पडूगी। सतीश घर में आता है तब उल्लसित दीखता है। मैं नही जानती कि यह सच है या मेरी नजरों को ही ऐसा दिखता है।

'कितनी देर कर दी!' मैं बोले बिना न रह सकी।

'आग्रह कर-कर के खिला रही थी इसलिए देर हो गयी।' उसने जवाब दिया।

उसने मुझे चिढाने के लिए ऐसा कहा होगा, ऐसा मैं नहीं मानती। वह झटपट तैयार हो गया। मैं उसे ताक रही थी। क्या करूँ यह समझ मे नही आ रहा था।

'तुम्हारे लिए कुछ लेता आऊँ?' जाते समय उसने पूछा।

मैंने हाथ का इशारा करके पलग पर पास मे बैठने के लिए कहा। वह बैठ तो गया पर उसकी नजर घडी पर ही थी।

मैंने उसका हाथ पकड कर अपने माथे पर रखा। उसने प्रेम से मेरे माथे को अपनी हथेलियों से दबाया।

'माथा दुख रहा है?' उसने उतने ही प्रेम से पूछा।

मैंने सिर हिलाकर हाँ कहा और लाचार निराधार दृष्टि से उसकी ओर देखा। लगता था अब रो पड़ूँगी। मैं अन्दर से टूट गयी थी।

मेरे सामने एक नयी परिस्थिति आकार ले रही थी। उससे लड़ने के लिए मेरे पास ताकत नहीं थी। हो सकता है यह मेरी कल्पना ही हो, कुछ भी तथ्य न हो इसमें। पर मैं डर गयी थी।

मेरा सिर दबाते हुए उसने पूछा 'तुम कहो तो मैं ऑफिस न जाऊँ।'

उसके ये शब्द दिखावटी हों या सच्चे दिल से निकले हुए—मुझे अच्छे लगे थे। उसके हाथ को दबाती हुई मैं बोली 'तुम्हें कुछ देना तो दूर, तुमसे सेवा करा रही हूँ।'

'मेरे लिए तो तुम हो, इतना ही काफी है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम अपना मन दुखी न करो।' वह स्नेह भरे शब्द बोल रहा था।

'मेरी चिंता किए बिना तुम ऑफिस जाओ, देर हो रही है। आते समय मेरे लिए कुछ लेते आना।'

'क्या लाऊँ ?'

'जो ठीक लगे, कुछ खाने के लिए ले आना।'

'अच्छा तो जाऊँ। तुम पूरा आराम करना, बनेगा तो मैं जल्दी चला आऊँगा।' और जाते-जाते रुक कर पूछा केशू भाई को समाचार भेजूँ ? दोपहर मे आ जायँ। तुम्हे थोडी राहत रहेगी, समय बीत जायगा।

मैं कुछ चिढ़ और रोष मे बोली : 'इसमे केशू भाई क्या करेंगे ? जरा चक्कर आ गये इसमे केशू भाई को कहलवाने की क्या जरूरत ? शाम तक तो मैं काम करती हो जाऊँगी।'

'अच्छा, ठीक है।' कहते हुए उसने मेरी बात से सहमति प्रकट की और जाने के लिए मेरी आज्ञा माँगता सा बोला 'तो मैं जाऊँ ?'

सतीश चला गया। मेरी इस समय यह जानने की इच्छा हो रही थी कि सुमन बहन उसे दरवाजे पर खड़ी होकर विदा दे रही होंगी या नही ?

कहाँ से इतनी सारी ईर्ष्या मेरे मन मे भर आयी है ?

मैं कमजोर बन गयी हूँ, अशक्त हो गयी हूँ। निरुपाय भी हूँ। जो कुछ है उसे अन्यथा नहीं कर सकती। ऐसा भी नहीं लगता कि जो कुछ कर रही हूँ ठीक ही कर रही हूँ पर इसके अलावा कोई विकल्प भी तो नही दीखता।

मन डावाँडोल हो गया है। आँखें बद करती हूँ तो आँखो में शून्य भर जाता है। इन शून्यो मे मैं कही नहीं दीखती। केन्द्र मे कोई और ही है और मै उस केन्द्र के चारों ओर बिखरती रहती हूँ, चक्कर खाती रहती हूँ।

वर्तुल बडा और बडा होता जाता है, उसका कही अत नहीं दीखता। अन्तहीन परिभ्रमण ही भाग्य मे लिखा है। केन्द्र के अलावा कही भी स्थिति नहीं है। मुझे स्थिति चाहिए। पर केन्द्र से इतनी दूर हूँ कि कहीं भी शान्ति या स्थिरता की सम्भावना नही है। रुके बिना इस सतत दीर्घ भ्राति मे बढ रही हूँ। आगा-पीछा कुछ समझ मे नहीं आता। कुछ भी पकड में नहीं आता।

पलग मे पडे-पडे सामने की खिडकी के बाहर पडे धूप के टुकडों में खोई हुई ऊष्मा की कल्पना करती हूँ। कोई मुट्ठी भर कर मुझे दे जाय।

● ●

ग्यारह

मैं खतरनाक खेल खेलने के लिए तैयार हुई थी। मैं सुमन के सामने कमली को एक प्यादे की तरह उपयोग मे लेना चाहती थी। इसीलिए जब कमली आयी तो मैंने उससे कहा

'मेरी तबियत ठीक नहीं है, कुछ दिन तू यहीं मेरे साथ रह ले। रात यहीं सो जाना। रसोई बनाने मे मेरी मदद करना।'

'मैं अकेले तुम्हारा ही काम तो करती नही हूँ जो दिन भर यहाँ रुक सकू। तुम कहती हो तो रात घर न सो कर यही पडी रहूँगी। दिन मे दूसरी जगह काम करने जाना ही पडेगा न।'

कमली ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

'सारे दिन यहाँ रुकने के लिए मैं नही कहती। और कोई ऐसा नहीं है जो कुछ दिन दूसरो के घर तेरी जगह काम कर दे ? मैं तुझे ज्यादा के पैसे दे दूँगी। इसकी चिंता तू मत कर।'

'भले, ऐसा ही है तो मेरी माँ दो-चार दिन और घरो का काम कर लेगी।'

कमली को मैंने बदइरादे से ही अपने घर रोका था।

कमली घर के काम मे लग गयी है। मैं जब इसका विचार करती हूँ तो मुझे अपने आप पर शरम आती है। मैं कितनी हीन बन गयी हूँ। दूसरे का भोग देकर अपना स्वार्थ साध रही हूँ। मैं—जिसने सारी जिन्दगी स्वार्थ का विचार नहीं किया वह आज इतनी निम्नकोटि की बन सकती है—इसका मुझे आश्चर्य होता है। मैं पलग में पड़ी-पड़ी तड़पती रहती हूँ।

'ऐसा मैं नहीं कर सकती, मुझसे यह नहीं होगा।'

कमली को आवाज लगाई। कमली आयी पर मैं उससे मना नहीं

कर सकी।

सोचती हूँ, हम जो चाहते हैं वह कर सकते होते तो कितना अच्छा होता।

कमली को बुला कर मैंने खिड़की बद करा दी। सतीश आये उसके पहले ही मुझे कमला का साथ लेकर रसोई बना लेनी थी जिससे उसे सुमन बहन के घर भोजन करने न जाना पड़े।

दवा तो मेरे पास थी ही। उसकी ज्यादा मात्रा लेना जोखिमी था पर मुझे तो जोखमों के बीच ही जिंदा रहना था। इससे डर कर कैसे रहा जा सकता है? ओवर डोज़ ले लिया, मन प्रफुल्लित लगता है। शरीर मे स्फूर्ति लगती है।

सुमन मेरा समाचार पूछने आयी तो उसने मुझे काम मे लगते देखा। उसे यह अच्छा नही लगा। स्वाथ वश वह बोली

'तुमसे एक दिन भी आराम नही किया जा सकता?'

हो सकता है कि वह हमदर्दी मे ही ऐसा कह रही है पर मैंने उसकी बात पर ध्यान नही दिया।

'मैं बीमार थोडे ही हूँ जो बिस्तर पर पडी रहूँ? सुबह जरा तबियत ठीक नहीं थी। रात सोने मे काफी देर हो गयी थी इसी कारण ऐसा हुआ होगा।'

'कल रात लाइट तो बहुत जल्दी बद हो गयी थी।' सुमन ने मर्म मे कहा। उसका इशारा स्वस्थ नही था। वह कहना चाहती थी कि रात हम देर तक आलिंगनबद्ध रहे। मुझे अच्छा लगा यह आरोप।

मैं उसकी ओर देखकर मम मे हँसी और लजाती सी नजर नीची कर ली। सुमन का मुह उतर गया था। वह हँसती-हँसती चली गयी।

मैं किस प्रकार ऐसा अभिनय कर सकी—समझ नही पाती। ऐसा करके मैंने बता दिया था कि सतीश मेरा है। सुमन भले ही हँसती-हँसती गयी पर उसे चोट ऐसी लगा थी कि पुचकारना पडे।

मेरी नजर कमली पर गयी। मुझे लगा मुझे अपने इस प्यार का

शृंगार करना चाहिए। उसे पास बुलाया।

'देख, मेरे घर तू इतनी गंदी रहे यह मुझे पसंद नहीं है, नहा-धो ले, बाल सँवार ले और मेरे कपड़े पहन ले। तू इस तरह गंदी रहे और हमारे घर कोई आये तो कितना खराब लगेगा!'

मेरी बात सुनकर कमली खुश हो गयी। उसे यही लगा होगा कि मालकिन कितनी अच्छी है। उसे मेरे मन की मैली मुराद का क्या पता?

रोने की इच्छा होती है। यहां से कहीं भाग जाने को मन करता है। पर, कहां भाग जाऊँ?

नर्मदा तट पर किसी आश्रम मे रह कर शेष जीवन बिताऊँ? सन्यासिनी बन जाऊँ? नमदा के जल में समाधि ले लू? किसी आश्रम में रह कर दीन-दुखियो की सेवा-चाकरी करूँ? पुन नर्स बन जाऊँ? कुछ समझ मे नही आता।

अब कुछ करने के लिए पैर नही उठते। लगता है अब मैं बीत आयी हूँ। अब शरीर का कोई भरोसा नहीं रहा, मन का भी कोई ठिकाना नही। किसी सहारे ही अब आगे घसिटना है। कहीं जाना है, कही पहुँचना है। कमली के सहारे जाऊँ, सतीश के सहारे जाऊँ, केशू भाई के सहारे या किसी और के।

लक्ष्मणराव का सहारा नहीं हो सकता। लक्ष्मणराव खुद ही एक ऐसा ढलता छप्पर है जिसे टिके रहने के लिए दूसरे सहारे की जरूरत है जो बिना सहारे टिक ही नही सकता। मेरा भी ऐसा ही है।

कमली तैयार होकर आ गयी। मैंने उसकी आँखो में काजल लगा दिया और कपाल मे बिंदी। उससे कहा

'अब देख दर्पण मे, कितनी सुन्दर लगती है! तेरी उम्र की लडकियो को हमेशा इसी तरह से रहना चाहिए।'

कमली ने दर्पण मे देखा। वह बडी प्रसन्न दीख रही थी। उसने धीरे से मुझसे कहा 'बहन, पाउडर लगाऊँ?'

मैं हँस पडी। वह पाउडर की उपयोगिता जानती थी। मेरी हँसी को अनुना समझ उसने पाउडर लगा लिया और मुझे दिखाने आयी। उसके मुह पर कहीं-कहीं पाउडर अधिक लगा हुआ था। मेरे हाथो ने उसे ठीक कर दिया।

धीरे से पूछा 'तेरी शादी हो गयी है ?'

'हमारी जाति मे बचपन में ही शादी हो जाती है। मेरी शादी मेरी बडी बहन के देवरके साथ हो गयी है पर अभी गौना नही हुआ है', कहते-कहते वह लजा आयी।

'अब तो तू गौना करने लायक हो गयी है।'

'गौने के लिए रुपये चाहिये न ! और मेरी बहन को ससुराल वाले बहुत दु ख देते हैं इसलिए मेरी माँ मेरी शादी तोड देना चाहती है।'

'ऐसा क्या दु ख है ?'

'वह कुछ भी कमाता-धमाता नही। मेरी बहन आठ जगह काम करके जो पैसा कमाती है वह सब वह उडा देता है ऊपर से बहन को मारता है सो अलग।'

'ऐसा है ?' मैं बोल पडी।

तुरन्त लक्ष्मणराव मेरे सामने आ गया। लक्ष्मणराव, कमली की बडी बहन का पति और भी न जाने कितने लोग अपनी पत्नी को निचोड-निचोड कर रुपये निकालते हैं, अपना आनन्द ढूढते हैं, सुख पाते हैं। सब स्वार्थी।

'तेरा पति क्या करता है ?'

'वह तो अभी पढता है।'

'वह पढ-लिख कर नौकरी करने लगे तभी ससुराल जाना जिससे तेरी बहन जैसी दशा न हो। पति पढा लिखा हो तो तलाक लेने की क्या जरूरत ?'

'यह तो मेरी माँ जाने।' कहते वह शर्मिदा हो आयी।

मुझे लगा, उसके मन मे अपने पति के न जाने कितने सस्मरण—सच्चे,

या कल्पित तैर रहे हैं। मुझे उसके स्थान पर सतीश को खड़ा कर देना है। मैं कितना विचित्र और क्रूर पार्ट अदा कर रही हूँ। मुझे लगा, मुझसे यह नहीं होगा।

शाम सतीश आया तो लगा आज वह कुछ जल्दी ही आ गया है। घड़ी मे देखा तो पता चला कि वह दसेक मिनट ही जल्दी आया था। पूछा

'आज कुछ जल्दी आ गये ?'

'तुम्हारी तबियत के कारण चिंता थी। दौड़ता आया हूँ।'

ऐसा जान कर मैं प्रसन्न हो जाऊँगी—ऐसी कल्पना की होगी सतीश ने पर मैं उसके शब्दों को स्वीकार न पायी। मन कहता है कि वह मेरे लिए नहीं, सुमन यहन के कारण जल्दी आया है, जिससे मेरे बहाने वह सुमन से मिल सके, उसके साथ बातों का रस पी सके।

मैंने कमली को बुलाया। कमली कपड़े रख रही थी।

साहब के लिए चाय बना द।'

मैं चाहती थी कि कमली सतीश के सामने आये। ऐसा ही हुआ। सतीश की आँखें उधर जाये बिना न रह सकीं।

'क्यों यही बाहर जा रही है क्या ? इस तरह सज-धज कर आयी है ?'

'नहीं, नहीं, यह तो मैंने इसे तैयार किया है। हमारे घर काम कर और गंदी-मैली रहे यह अच्छा दीखता है ? मैं जब तक ठीक होऊँ इसे यहीं रखना है। मुझे काम मे राहत रहेगी और अकेली भी नहीं पड़ूँगी।'

'तुम अकेली न पड़ो इसीलिए तो मैंने केशू भाई के लिए कहा था।' सतीश ने कहा।

केशू भाई के नाम का पत्थर मुझे फिर से मारा गया था। मारनेवाला नया था पर इसके प्रहार तो काफी सहे हैं। नहीं जानती कब तक सहने पड़ेंगे। शायद यह ऐसा पत्थर है जो मेरे गले मे बांध दिया जायेगा और जो मुझे डुबा कर ही छोड़ेगा। मैं हाथ-पैर पछाड़ कर बहुत प्रयत्न करूँगी

पर व्यथ । यह मेरी लाश को भी तैरने नहीं देगा। सपाटी पर भी नही आने देगा। किसी अतल खड्ड मे जाकर बिखरना पडेगा।

'केशू भाई कोई बेकार भटकता आदमी है? जिसे हमारी चाकरी के अलावा कोई काम न हो? उनका यहाँ क्या काम है? मैं अकेली हूँ और अकेली पड जाऊँ उसमे वे क्या करेंगे? और फिर वे कितने दिन आ सकेंगे? किसी के घर कभी बीमारी नही आती होगी जो दूसर को बुला लाया जाय? सुबह दस बजे जाकर शाम तो तुम आ ही जाते हो। वैसे कमली है, सुमन बहन हैं, आस-पास भी लोग हैं। हम यहा नये हैं नही तो आस-पास के लोग भी होते। फिर, तीसरा कोई नही है तो कहाँ से लायें?'

'बस, बस अब कितना बोलोगी? व्यथ नाराज हो जाती हो। अच्छा किया, कमली को रख लिया। कुछ खाया पिया भी है या नही?'

'नही।' मैं इतना ही जवाब दे कर पलग पर सहारा ले कर बैठ गयी।

मुझे लगा मैं व्यथ उत्तेजित हो गयी थी। कमली चाय बना रही था। सतीश ने कपडे बदल लिये थे। वह कुरसी खीच कर मेरे सामने बैठ गया। वह मुझे मनाना चाह रहा था। मैं भी तो उसे मनाना चाह रही थी? पर मैं कुछ ऐसा कर बैठती जिससे किया धरा सब चौपट हो जाता।

मेरी नजर उसके बालों पर गयी। 'तुम्हें कलप लगाये कितने दिन हुए?' मैंने पूछा।

'यहाँ हम रहने आये उसके दो-चार दिन पहले ही कलप लगाया था। क्यो, क्या सफेदी दीखन लगी है?'

'बाल सफेद हो गये हो और दीखें तो उसमे क्या हरकत पर आधे सफेद और आधे काले अच्छे नही लगते। कल सुबह याद दिलाना, मैं डाई कर दूँगी।'

'भले।' उसने कहा।

मुझे उसे खुश होते देखना था कि सुमन बहन की आवाज आयी 'आऊँ रमा बहन ?'

'आओ न !' न चाह कर भी कहना पड़ा।

सतीश ने अपनी कुरसी कुछ दूर हटा ली, पर मुझे यह अच्छा नहीं लगा। यदि वह पलग पर बैठा होता तो मैं उसे अपने पास से हटने न देती।

'भले न देखती वह।'

सुमन मेरे पास पलग पर बैठ गयी। मैंने कमली से कहा 'सुमन बहन के लिए भी चाय लाना।'

'अच्छा।' अंदर से कमली की आवाज आयी।

'इस समय तुम्हारे लिए क्या बनाऊँ ?' सुमन ने सतीश से प्रश्न किया।

मैं कह सकी होती कि अब मैं ठीक हूँ, तुम्ह परेशान होने की जरूरत नहीं, पर कुछ न बोली। मैं जानना चाहती थी कि सतीश क्या जवाब देता है। सतीश कुछ कहने में हिचकिचा रहा था। उसने मेरी ओर नजर की फिर सुमन की ओर देखा और फिर मेरी ओर नजर फेरी। फिर बनावटी हँसी हँसा। कितनी भद्दी हँसी थी।

वह बोला 'शाम को न ! शाम का भोजन तो मैं खुद बना लूंगा। अब तो यह कमली भी है। यह मुझे मदद करती रहेगी।'

मैंने सोचा मुझे उसकी मदद में आना चाहिए। 'मैं अब ठीक हूँ।' मैंने कहा। 'तुम्ह कितनी तकलीफ दें ? रसोई तो मैं मिनटों मे बना लूंगी।'

कमली चाय ले आयी। कमली को देखते ही सुमन बोली 'आज तो यह बन-ठन कर आयी है !'

उसके इस उद्‌गार से मैं फूल उठी और कमली लजा गयी।

मुझे लग रहा था कि सुमन सतीश से भोजन के लिए आग्रह करेगी पर उसने ऐसा नहीं किया। उसका भोजन का आमत्रण केवल औपचारिक

था। सुमन चाय पीकर चली गयी। जाते-जाते उसने इतना ही कहा

'किसी वस्तु की जरूरत हो तो माँग लेना और मेरी जरूरत पड़े तो आधी रात को भी उठा लेना। यों भी मुझे रात नींद नहीं आती।'

'जरूरत पड़ेगी तो जरूर कहूँगा। यहां तुम्हारे सिवाय हमारा है भी कौन ?' सतीश ने ठीक ही जवाब दिया था। मुझे भी लगा कि सुमन को पहचानने मे मैं भूल कर रही थी। उसकी भलमनसाई को गलत आंक रही थी। सुमन के जाने के बाद मैं उठी और रसोई बनाने लगी।

रात्रि का अंधकार उतर रहा था। खिड़की से ठंडी हवा आ रही थी। यह ठंडी हवा मुझे मानो चोट कर रही थी, कँपा रही थी।

उठ कर खिड़की बंद कर दी। बाहर के कमरे की ओर नजर दौड़ाई। सतीश पलग पर सो रहा था। उसका चेहरा थका हुआ लग रहा था। मैं उसके समीप गयी।

'तबियत ठीक नहीं है ?' मैंने धीरे से पूछा।

'आज जल्दी आना था इसलिए पहली बस पकड़ने के लिए दौड़ना पड़ा। दौड़ने की आदत नहीं है और फिर अब शरीर भी तो वैसा नहीं रह गया है।'

'लाओ, मैं शरीर दबा दूँ।'

'तुम्हारी ही तबियत कहाँ ठीक है ? जरा आराम करूँगा तो ठीक हो जायगा।'

'तो मैं कमली से कह देती हूँ, शरीर दबा देगी।' कहते मेरा दिल धड़क उठा।

मैं कमली को उसके पास धकेल रही थी। मैं जानबूझ कर ऐसा कर रही थी कि अजान में हो, कुछ समझ नहीं पा रही।

मैंने कमली से कहा तो पहले तो वह शरमायी पर, फिर तुरन्त राजी हो गयी। उसे इसमे शायद अनुचित नहीं लगा होगा। सतीश की उम्र उसके पिता की उम्र से कुछ ज्यादा ही होगी।

मैं रसोई में थी और कमली सतीश के पास थी। रसोई

यदि पारदर्शक होती तो मैं कमली और सतीश को देख पाती।

उन्होंने आँखो मे आँखें पिरोयी हो, काँपते हाथ एक दूसरे का स्पर्श कर रहे हो, सतीश कमली की श्याम जाघो पर हाथ फेर रहा हो, कमली लजा रही हो। मेरा मन छिप कर उन्हें देखने को करता है।

मैं उस ओर जाऊँ और वे दोनो उस समय कल्पना से मेरा सिर चकराने लगा है। शरीर काप उठा है। रसोई कर नही पा रही हूँ। मन वही अटका है। मन पर इस भार को उठाने से तो छिप कर देख लेना ही अच्छा।

कापते पैर मैं खडी होती हूँ। लगता है शरीर मे शक्ति ही नहीं है। रसोई की दीवार के पीछे से झुक कर उस ओर ताकती हूँ।

सतीश उलटा पडा सो रहा है और कमली खडी-खडी उसकी पीठ दबा रही है। मेरी कल्पना की उत्तेजना एकाएक दब जाती है। मस्तिष्क मानो खाली पड जाता है।

सतीश उससे धीरे से कहता है 'बस, बहुत हुआ, अब रहने दे। जा, अपनी बहन की मदद कर।'

मैं चोर की तरह अपनी जगह जाकर बैठ जाती हूँ। मुझे क्या हुआ है, समझ मे नहीं आता मैं ऐसा क्यों करती हूँ? मेरा व्यवहार मुझी को परेशान कर रहा है। दूसरों की नजरों मे गिरकर आदमी अपनी नजर के सहारे जी सकता है पर जो अपनी नजर में ही गिर जाय उसका क्या हो? मैं अपनी ही नजर में गिर रही हूँ। पर मैं क्या करूँ?

भोजन करने बैठते समय सतीश ने अपनी बेग से एक पैकेट निकाला। 'आते समय बस स्टैंड के पास वाली दूकान से खरीद लाया था,' उसने कहा, 'इसमे से अपने लिए निकाल कर थोडा सुमन बहन के घर दे आना।'

मैंने अपनी जरूरत जितना निकाल कर बाकी कमली के हाथ सुमन बहन के घर भेजा। 'इतनी जल्दी-जल्दी मे भी यह लाने की याद कैसे रही? सुमन के लिए ही लाये होंगे। सुमन ने ही मँगवाया होगा? यह

सुमन तो—

रात सोने के लिए कमली का बिस्तर लगाया तो सतीश ने आश्चर्य से पूछा

'कमली रात मे यही रहेगी ?'

'मेरे साथ कोई रहे तो ठीक रहेगा। यह सोचकर ही इसे रोका है।'

'मैं हूँ न, फिर इसकी क्या जरूरत है ?'

'रात मुझे कोई जरूरत पडे तो ?'

'मैं हूँ तो ! इसे यहाँ रात रखना अच्छा नही लगता।'

'होगा, अब आज तो देर हो गयी है, भले रहे।' मैंने निर्णय सुना दिया।

सतीश को यह अच्छा नहीं लगा। उसकी इच्छा मेरी सेवा करके मेरा मन जीतने की रही होगी। पर, मैं उसे पूरी नही होने दे रही थी। मैंने अपने बीच कमली को बिठा लिया था। दो बिस्तर थे और एक को पलग पर सोना था। मैं यदि पलग पर सोऊँ तो सतीश को कमली के पास सोना पडे। सतीश ही यह निर्णय करे कि कौन कहा सोयेगा तो अच्छा। मैं बीमार थी, इसलिए पलग पर सोऊँ तो इसमे अनुचित कुछ भी नहीं है। पर सतीश ने ऐसा नही करने दिया। औपचारिकता बताये बिना ही पलग पर सो गया।

कमली को मैंने अपने पास ही सुला लिया था। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा

'ठीक रहेगा न यहाँ ?'

'हाँ।' उसने प्रसन्नता व्यक्त की।

● ●

बारह

सतीश थक गया था। उसके मन मे कुछ अपेक्षाएँ थी। पर उन्हें वह पहचानता नही था। और इसीलिए परेशान था, बेचैन था। मेरे घर नहीं आता था।

लक्ष्मणराव उसकी खबर पूछ आया था। किशोर के हॉस्टल से लौटने के बाद वह मुझ पर नाराज था। मानो किशोर के देख-रेख की जवाबदारी मेरी ही न हो। किशोर काफी दिनो से हमारे घर नहीं आता था इसकी खबर भी उसी को पडी थी।

बाहर से आया तो पान की पीक निगलते हुए कडवाश भरे रग से उसने कहा

'किशोर एकदम बिगड गया है, खराब रास्ते चढ गया है।'

'तुम इस समय वहा गये थे ?' मैं पूछ बैठी।

'आज तीसरी बार गया था। वह भी हॉस्टेल पर मिलता ही नही है। इधर-उधर भटकता फिरता है। आज उसके हॉस्टेल के एक लडके ने मुझसे सारी बातें बताइ। वह मुझे किशोर का सम्बन्धी मानता था।'

'कुछ भी हो और जो भी उसका होना हो, हो, हमे इससे क्या ?' मैंन झुझलाते हुए कहा।

पर तुरन्त मुझे मेरा दभ दीखा। मैं तो यह करना चाहती थी न कि वह पढ-लिख कर इजीनियर बने और विदेश जाय। मैंने स्वेच्छा से ही तो यह भार लिया था।

किसी भी तरह मुझे उसे रास्ते पर लाना ही होगा—और यदि लक्ष्मणराव की बात सच हो तो—कुछ सोच नहीं पा रही हूँ।

बात आगे बढाते हुए मैंने लक्ष्मणराव से कहा

'ऐसा भी क्या करता है किशोर ?'

लक्ष्मणराव मेरे प्रश्न से उबल पडा था ।

'यो पूछो कि वह क्या नही करता ? करने मे उसने कुछ भी वाकी नही रखा है । शराब पीता है । एक बार तो नशे मे भटकते हुए उसे पुलिस पकड कर भी ले गयी थी । पैसे खिला कर छूटा । कालेज की एक लडकी फँसाई है । उसके साथ बाग-बगीचे मे भटकता है । सिनेमा देखता है, होटलों मे जाता है । इतना ही नहीं, वेश्याओ के यहाँ भी जाता है । एक अच्छा-भला लडका—'

मैंने लक्ष्मणराव की ओर नजर फेरी तो वह चुप हो गया । उसके मुह अच्छे आदमी को बात शोभा नहो देती यह सोच वह चुप हो गया होगा । या किशोर को मेरे पास लाने मे भी तो उसका यही उद्देश्य था न । लक्ष्मणराव कब चाहता था कि किशोर एक अच्छा लडका बना रहे ? उसे इस बात का अफसोस था कि वह जिस प्रकार किशोर को विगाडना चाहता था उस प्रकार वह न बिगड कर दूसरी तरह बिगडा ।

'तुमने क्या किया ?' मैंने लक्ष्मणराव से पूछा ।

'मैं कह कर आया हूँ कि किशोर आये तो तुरन्त उसे मेरे घर भेज दे ।'

'मैं सोचती हूँ इसकी खबर उसके पिता को भेजी जाय या यहाँ जो उसके चाचा रहते हैं उन्हे दी जाय तो—'

लक्ष्मणराव मेरी बात सुनकर नाराज हो गया ।

'उन सब को बीच में लाने की क्या जरूरत ? मैं उसे यहाँ ले आऊँगा । तू उसे रास्ते पर ले आना ।' लक्ष्मणराव ने मुझसे कहा ।

मैं उसे किस रास्ते पर लाऊँगी ? मेरा रास्ता और इस समय वह जिस रास्ते पर था उसमें क्या अंतर है ? मैं मन मे ही विचारती हूँ ।

'कुछ भी हो, मेरा रास्ता जरूर अलग है । उसे मैं यही लाऊँगी । उसे दूसरे रास्ते नहीं चढ़ने दूँगी ।' मैंने अपना निणय लक्ष्मणराव से कहा

'तुम बीच में न आना । मैं उसे रास्ते पर ले आऊँगी ।'

दूसरे दिन ड्यूटी से छूटते ही मन मे किशोर का विचार आया। एक विचार यह था कि उसके हॉस्टेल पर जाकर बैठू। वह आये तब तक इन्तजार करूँ। दूसरा विचार यह हो रहा था कि यदि मुलाकात होनी होगी तो हो ही जायगी कहीं न कहीं। अपन आप वहाँ जाना भी नहीं है और कुछ कहना भी नहीं है।

मन खिन्न था। लौटते समय तोपखाने के पास उतर गयी। कुछ दर टहलती रही। एक वृक्ष के नीचे बैठकर घास मे उसका नाम लिखा—'किशोर।'

घास पर लिखा नाम पढने बैठी, पर कहाँ था अब वह! किशोर भी तो इसी तरह ओझल हो गया था।

लगा आँखें भर आयेंगी। आस-पास कितने अधिक लोग थे! शायद ही कोई अकेला था। उनमे भी स्त्री तो शायद मैं ही थी। इस विचार ने मुझे बेचैन बना दिया। बस स्टैंड पर आकर खडी रही और बस की राह देखती रही।

कुछ देर बाद सामने से एक बस जाती हुई दीखी। मेरी नजरें उसमें कुछ खोजने लगी। देखा किशोर किसी लडकी के साथ बैठा है। दोनो बातें कर रहे थे। उनकी नजर मुझ पर नही पडी थी। वह हास्टेल की ओर जा रही थी।

मन ने तुरन्त निश्चय किया, किशोर के हॉस्टेल पर चलूँ।'

दूसरी बस पकड कर मैं हॉस्टेल पर पहुँची। हास्टेल के गेट पर किशोर और उस लडकी के परस्पर विदा होने का नाटक खेला जा रहा था।

लडकी के चले जाने के बाद किशोर सीटी बजाता-बजाता अपन रूम की ओर चला। मैं भी उसके पीछे-पीछे चली। रूम के बाहर दो क्षण खडी रही। किशोर अपने पलग पर बैठा था। पास ही दूसरा पलग था जिसमे दूसरा लडका बैठा था। वह किशोर को ईर्ष्या भरी दृष्टि से देख रहा था।

दरवाजा खट-खटा कर मैं खड़ी रही। मुझे देखते ही किशोर खड़ा हो गया।

'तुम ? इस समय यहाँ कैसे ?'

'तुम्हारे पीछे-पीछे। मुझे लगा कि अब तुम हद कर रहे हो इसलिए मुझी को आना पड़ा।'

मेरी आखों से ही दोनों मेरे मन के भाव को समझ गये थे। दूसरा लड़का इस उम्मीद मे मेरी ओर ताक रहा था मानों कुछ घटित होने ही वाला है। मैंने उससे विनती के स्वर मे कहा

'यदि तुम्हे अनुचित न लगे तो मैं किशोर से कुछ व्यक्तिगत बातें यहा एकात में करना चाहती हूँ।'

लगा वह लड़का यह जान गया था कि मुझे कौन सी व्यक्तिगत बात करनी है ? वह मुझे किशोर का अभिभावक मान रहा था जो उसके दुर्वतन के लिए लड़ने आयी थी।

'अब मजा आयेगा।' का भाव लिए वह बाहर निकल गया। मैंने जरा भी हिचकिचाये बिना रूम का दरवाजा बद कर दिया।

मैं और किशोर आमने-सामने खड़े थे। किशोर अशक्त दीख रहा था। वह अपराधी की भाँति खड़ा था। मुझे नहीं मालूम क्या हुआ—मैंने उसके मुह पर एक जोर का थप्पड़ मारा।

'यह सब क्या हो रहा है ? अपने आपको विनाश के रास्ते पर क्यों खीच रहे हो ? तुम ऐसा सोचते हो कि तुमसे यहाँ कोई कुछ कहनेवाला नही है ? मैं यह सब नहीं होने दूँगी। तुम शराब पियो, भटकती लड़कियों के साथ घूमो, गदी जगहा मे जाओ तुम यह समझते हो कि मुझे कुछ पता नही चलता होगा ? तुम्हे याद है न कि तुम्हे योग्य बना कर विदेश भेजने का भार मैंने अपने ऊपर स्वेच्छा से लिया है और उसे पूरा करने मैं यहा आयी हूँ। यह सब तुम क्यों कर रहे हो ? यह तुम्हे बरबाद कर देगा, किशोर', मेरी आवाज दब गयी।

'तुम पर मेरा कोई हक नहीं है पर मैं यह सब देख नही

कितने दिनों से तुम गायब हो ! जानता है किशोर, तू मुझे कितना याद आता है ?'

मैं रो पड़ी ।

'किशोर, तेरे लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ । पर तुझे मैं इस रास्ते कभी नही जाने दूँगी, फिर मुझे इसके लिए कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े ।'

मैंने उसके कधे पर अपना सिर लुढ़का दिया । अपने दोनो हाथो से मुझे सवारता सा वह बोला

'मैं विवश हूँ । मैं इन सबके बगैर रह नही सकता ।'

'यह सच नहीं है किशोर, यह तेरी भ्रांति है । तू लाचार नहीं हो सकता । और यदि ऐसा ही है तो शादी क्यों नहीं कर लेता ?'

'शादी ? शादी की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता । अभी तो मेरी पढाई बाकी है । शादी तो जीवन भर के लिए स्वेच्छा से स्वीकार की गयी परतंत्रता है । इन सम्बन्धों में परतन्त्रता नहीं होती ।'

'यही तेरी भूल है । आदमी को जब इसकी आदत पड जाती है तो फिर इसके बिना वह रह नही सकता । इस लत मे डूबने की अपेक्षा न पढ़ना और शादी कर लेना ज्यादा अच्छा है ।'

'पढूंगा नहीं तो मेरे स्वप्न बिखर जायेंगे । फिर जीवन मे कोई रस ही नहीं रह जायगा । मेरा जीवन निरुद्देश्य बन जायगा ।'

'तुम सोचते हो कि इन बीमारियों के रहते तुम पढ़ सकोगे ! इससे तो तुम्हारा मन छिन्न-भिन्न हो जायगा, शादी से मन शांत होगा ।'

कुछ देर वह कुछ न बोला । फिर उसने मेरी ओर भावभरी दृष्टि करके पूछा

'तुम मेरे साथ शादी करोगी ? मैं तुम्हारे साथ शादी करने के लिए तैयार हूँ ।'

उसने हाथ पकड़ कर मुझे पलंग पर बैठाया और मेरी ओर नजर करके बैठा—उत्तर की प्रतीक्षा में ।

'इसका जवाब तो मैं पहले ही दे चुकी हूँ। मैं शादी-शुदा औरत हूँ। तुम्हारे लिए मैं योग्य पात्र नहीं हूँ।'

'पात्रता का निणय मुझे करने दो। तुम योग्य पात्र हो या नही— मुझे अच्छी लगती हो। इस समय मुझे यह लगता है कि मैं तुम्हारे साथ जिंदगी बिता सकता हूँ। मुझे जिस सुख की खोज है वह तुमसे मिल सकता है।'

'ओह किशोर! ऐसी बातें मत कर। तू मुझे चलित कर देगा। ऐसा नहीं है कि मैं अपन पति की वफादार रहना चाहती हूँ। हमारे वैवाहिक जीवन म कुछ भी पवित्र नही रह गया है या जिसे तोडने मे मन दुखे। फिर भी मैं उसे निबाहना चाहती हूँ। तू इसमे हलचल ला रहा है। तेरे शब्दो मे जो प्रेम गुथा हुआ है वह मुझे विवश कर देगा।'

'यह विवशता ही शायद जीवन की सच्चाई है। सच्चाई से मुह फेर कर क्यो रहती हो? सच तो यह है कि तुमसे मिले खालीपन को भरने के लिए ही मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ। फिर भी कुछ मिल नही रहा है। मेरे दोनों हाथ खाली हैं, मन खाली है। यह तुम्ही से भर सकता है। तुम मुझे स्वीकार लोगी तो मेरा मन शात हो आयगा, स्वस्थ हो जायगा और मैं अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा कर सकूगा।'

कुछ देर रुक कर वह फिर बोला 'मैं नही जानता मैं तुम्हें क्या दे सकूगा पर मेरे पास जो कुछ भी है वह सब तुम्हारा ही है।'

किशोर की आँखें आजिजी से भरी हुई थी। प्रेम का भिक्षा-पात्र उसने मेरे सामने धर दिया था। मैं पूर्व जन्म मे कोई पिंगला थी? नही मालूम। पर मैं उसे इस तरह रिक्त पात्र लिए नहीं देख सकती थी।

इस विचार से मेरे मन मे गव उत्पन्न हुआ। उसके हित के लिए मैंने अपने शरीर का दान दिया था। मेरा शरीर यदि भटके को राह पर ला सकता हो तो इससे ज्यादा उसकी क्या कीमत हो सकती है?

ऐसा करना सरल नही होता। और इसकी जो पीडा है वह तो मैंने सह ही ली है। मैं अपने शरीर को गिद्धो द्वारा चुथने, मुर्दे की तरह घुंथने

देती हूँ।

नारी का शरीर युवक के लिए कौतूहल की वस्तु होता है। वह मेरी काया को देखते थकता नहीं। मैं भी कोई जड प्रतिमा नहीं कि मुझे कोई संवेदना न होती। पर किशोर के भविष्य के सामने मैं इसे विघ्न स्वरूप मानती हूँ। मुझे उसका भविष्य बनाना है—कोई भी कुरबानी देकर।

इसके बाद मैंने किशोर को मनमाने ढंग से अपने शरीर के साथ खेलने दिया। उसके मन मे स्त्री शरीर का कौतूहल था—जो उसे पीडित कर रहा था—मार्ग भुला रहा था। मैंने अपनी देह देकर उसे शांत कर दिया।

किशोर अच्छा लड़का था। मुझे वह अच्छा लगता था। वह मेरा प्रेमी है। पर जिस तरह वह मुझसे प्रेम करता है उस तरह मैं उससे प्रेम नहीं कर पाती। मुझे उसके प्रति प्रेम भाव है, अपनी रीटा से भी ज्यादा। उसका सिर भी दुखता है तो मेरे प्राण तलुओ से चिपक जाते हैं।

एक दिन शाम वह घर आया। उसके मुंह से ही लग रहा था कि वह बहुत व्यथित है।

'क्यो किशोर बाबू, क्या हुआ है ? उदास क्यो दीख रहे हो ?' मैंने पूछा।

आते ही वह पलंग पर उलटा लेट गया और तकिये से अपना मुंह सटा कर रोने लगा था।

उस क्षण मुझ पर क्या बीती, यह तो ईश्वर ही जानता है। कौन जाने, भगवान ने आदमी को इतना संवेदनशील क्यो बनाया है ?

किशोर मेरा कौन होता था ? वह मेरा पति नही प्रेमी नही भाई नहीं, पुत्र नहीं। एक समय का मेरा रोगी और आज मेरी सम्पूर्ण चेतना का स्वामी बन गया है।

मैं पलंग पर उसके पास बैठ गयी। उसका सिर अपनी गोद मे रख लिया। आँसू पोंछे और झुककर उसका मुंह चूम लिया। वह मुझसे लिपट कर फूट कर रोने लगा।

'बात क्या है यह तो कहो ? इस तरह विह्वल क्यो हो रहे हो ?'

'पिता जी का पत्र आया है। उन्हे हमारे सबधो के विषय मे सब मालूम हो गया है। उन्होने तुरन्त घर बुलाया है और धमकी दी है कि मैं तुरन्त घर नही पहुँच जाऊँगा तो वे सीधे यहाँ चले आयेंगे।' उसन जेब से निकाल कर वह पत्र मुझे पढने के लिए दिया। पत्र पढकर मैं हँस पडी।

'इसम हमारे सम्बन्धो के विषय मे कहाँ लिखा है ?'

'भले ही नहीं लिखा हो पर उन्हें इसका पता लग गया है ऐसा लगता है। नही तो इस तरह न बुलाते। चाचा ने ही लिखा होगा।'

'चाचा को कैसे मालूम हुआ होगा ?'

'उस दिन जब हम घूमने गये थे, अहिल्या बाई की प्रतिमा के पास, वे हम नहीं मिले थे ?'

'यह सब तुम्हारे मन की कल्पना है, किशोर, तुम घर हो आओ। जिससे तुम घबरा रहे हो वैसा कुछ भी नहीं होगा।'

'तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?'

'मेरा मन ऐसा कहता है।'

'मान लो, यही बात हो और पिता जी मुझे यहा न आने दें तो क्या होगा ?' मेरे हाथ को जोर से दबाते हुए बोला 'मैं तुम्हारे बिना जी नही सकता। यदि पिता जी मुझे यहा नहीं आने देंगे तो मैं आत्म-हत्या कर लूगा।'

'छि-छि किशोर बाबू, ऐसा सोचा जाता है ? तुम्ह मेरे जैसी हजारो मिल जायेंगी जो तुम पर कुरबान हो। इस जिंदगी की यात्रा मे तुम्हें अभी काफी आगे जाना है। मुझ जैसी के लिए तो आगे बढने का प्रश्न ही नही है। कभी-कभी तो लगता है कि कही पीछे लौटना पडेगा तो क्या होगा ? मैं इतनी नादान नही हूँ जो तुम्हारी भावना को न पहचान पाऊँ। पर इस भावना मे बह न जाना। तुम स्वस्थ मन और शान्त चित्त से पिता जी के पास पहुँचो।'

'पर वहाँ क्या होगा ? पिता जी पूछेंगे तो मैं सब कुछ सच-सच कह दूँगा।'

'क्या कहोगे ? यही न कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मेरे साथ शादी करना चाहते हो।'

'हाँ।'

'पर मैं तुम्हारे साथ किस प्रकार शादी करूँगी ? मैं अपनी टूटी गाडी तुम्हारी जीवन नौका की पतवार के साथ नहीं बांधना चाहती। मेरी ओर से तुम हमेशा मुक्त हो।'

'मुझे मुक्त नहीं रहना। मैं इसी शर्त पर जाऊँगा कि तुम मुझे अपना एक फोटो दो। जब भी अकेला होऊँगा, तुम्हारी तसवीर देखूगा और तुम्हें पत्र लिखा करूंगा। मुझे जवाब लिखोगी न ?'

मैंने हँसते हुए हाँ कहा। उसके मन को खुश रखने के लिए फोटो भी दिया। फोटो परिचारिका के गणवेश मे था। उसे हाथ मे लेकर वह एकटक देखता रहा मानो चित्र को वह धीरे-धीरे पी रहा हो। फिर उसने मेरी ओर देखा। फोटो को चूमा और फिर मुझे।

वह जब भी आता है इसी तरह आवेश मे ही होता है। वह जरूरत से ज्यादा भावुक है। पर उसकी यह भावुकता मुझे अच्छी लगती है।

वह गया तब से मैं उसके पत्र की बड़ी आतुरता के साथ प्रतीक्षा करती रही थी।

एक दिन उसका पत्र आया। पत्र अपने आप में एक रोमांचक घटना होती ही है। पत्र मे मैं किशोर का स्पर्श अनुभव करती हूँ। उसके लिखे शब्दों का मेरे लिए कोई खास महत्व नहीं है। उसने इसे लिखने मे जितना समय लगाया होगा उतने समय तक तो वह मुझ-मय बन गया होगा। उसने मुझे कितना याद किया होगा, प्रेम की कैसी तल्लीनता साधी होगी ?

किशोर मेरा प्रेमी है और मेरे लिए व्याकुल है—यह सोच मैं गर्व का अनुभव करती हूँ। हर स्त्री का कोई प्रेमी होना चाहिये जो उसे

आकुलता से चाहता हो, उसे चोरी-चोरी पत्र लिखता हो, जो उससे बार-बार कानों में कहता रहे

'तुम्हारे बिना यह ज़िंदगी वीरानी ही होती। तू मेरी ज़िंदगी की बहार है।' फिर भले ही यह प्रेमी उसका पति ही हो। लक्ष्मणराव यदि मेरा प्रेमी बन सका होता, प्रेमी बन कर रहा होता—

प्रत्युत्तर के लिए उसने मुझे अपने एक मित्र का पता दिया था।

मैं पत्र नहीं लिख पाती। क्या लिखूं उसे? बहुत सोच कर भी नहीं सोच पाती कि किस तरह उसे पत्र लिखूं। और यह बेचैनी मुझे परेशान कर देती है। पत्र लिखने की चेष्टा ही नहीं कर पाती।

मैं सोच सकती थी कि मेरा प्रत्युत्तर पाकर किशोर की क्या दशा हुई होगी। वह कितना उद्विग्न हुआ होगा!

पर मेरी जैसी दशा में फँसी हुई स्त्री किस प्रकार प्रेम-पत्र लिख सकेगी? इस लाचारी ने मुझे विह्वल और विमूढ बना दिया था। मन ही मन न जाने कितने पत्र लिखती, न जाने कितने मिटाती।

• •

तेरह

कोई परिचारिका ही जान सकती है कि उसके व्यवसाय मे कितनी एकाग्रता की जरूरत रहती है। कितने विवश जीवनो का आधार उस पर होता है। डॉक्टर तो दवा का निदेश देकर विदा हो जाता है पर परिचारिका को तो रोगी का सतत ध्यान रखना पड़ता है। उसे दवा दे दे कर, उसका सेवा-सुश्रूषा करके उसे स्वस्थ करना होता है।

और ऐसे काम मे लगी परिचारिका का निजी जीवन यदि डावाँडोल हो तो परिणाम क्या आता है, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है।

एक रोगी को तुरन्त ट्रीटमेन्ट की जरूरत थी और मैंने उसे डाक्टर से सलाह लिए बिना ही दवा दे दी। ऐसा तो प्राय होता रहता है। हर समय डाक्टर हाजिर भी नही रहता। हाजिर भी हो तो हर बार उन्हें रोगी को बताने बुलाना वे पसद भी तो नही करते। किन्तु यह रोगी ऐलर्जी वाला था।

ऐसी भूल अन्य परिचारिकाए भी करती ही रहती हैं। छोटी-बडी भूलें तो रोज होती रहती हैं। डॉक्टरों से भी भूलें हुआ करती हैं। एकाध मे वे इसको स्वीकार भी करते है। वैसे हम इस हकीकत को न जानती हो ऐसा नहीं है।

मेरे जीवन में ऐसी भूल कभी नहीं हुई थी। मेरी आँख मे आँसू सूख नहीं रह थे। रोगी को इस बात की खबर नहीं होती। उसके आस पास के लोगों को भी प्राय इसकी खबर नहीं पड पाती पर स्टाफ के साथी जान जाते हैं और विचित्र ढग से सामने देखते हैं। सबसे अधिक रोगी के सम्बन्धी विस्फारित नेत्रो से देखते हैं। रोगी के विलाप करते कुटुम्बी-मित्रो से तो आँख भी नहीं मिलायी जा सकती।

मेरी जैसी तो शायद ही कोई ऐसी होगी जिसकी जिन्दगी में साथ

कोई दूसरी जिंदगी गुथी हुई न हो। आदमी अकेला नही होता। उनकी एक जिंदगी के साथ न जाने कितनी जिंदगियों का ताना-बाना गुथा होता है, उलझा होता है। और उसमें से एक तार भी खिंचे तो उसका असर एक संसार पर, एक घर पर, एक कुटुम्ब पर और सारे समाज पर पड़ता है।

मैं रोगी के सम्बन्धियों के सामने देख नहीं पाती। फिर वह जगह एक काला चिह्न बनकर स्मृति मे अंकित हो जाता है जो स्मृति को रोजाना जाग्रत करता है।

मैं जानती थी कि मुझे उसके पारिवारिक जनो से माफी माँगनी चाहिए थी। पर यह मेरी शक्ति से परे था। मेरी निरलसता हॉस्पिटल के लिए मुश्किल भी खडी कर सकती थी। रोगी के परिवारजन, जो प्राय अंधेरे में ही रहते हैं उन्हें मेरी क्षमा-याचना से प्रकाश मिल जाय और फिर वे हमें कोर्ट के दरवाजे तक खींच ले जाँय।

यह एक प्रकार की कायरता थी। मैं इससे मुक्त नहीं हो पायी। हाँ, डॉक्टर के सामने मैंने माफी जरूर मागी थी पर उसने कोई गभीरता नही दिखायी।

घर आकर मैंने कैलेण्डर मे, निमम भाव से खडे प्रभु के सामने हाथ जोड कर माफी मागी, रोयी पर वे प्रभु तो क्योंकर प्रभावित होते! आसुओ की बाढ भी भगवान् को बहा नही सकती।

किशोर को पत्र लिख कर सब कुछ बता दिया होता—पर मन तैयार नहीं होता। वही भीरुता सता रही है। मेरे मन मे भय है कि कही वह मुझे इस पर धिक्कारने न लगे। मैं कुछ नही कर पाती।

लक्ष्मणराव से कहती हूँ तो वह पूछता है 'डॉक्टर तुम्हे निकाल तो नहीं देगा?' मेरे मना करने पर राहत अनुभव करता है।

रीटा से मैं रोते-रोते सब कह देती हूँ।

'बेटी, आज तो मुझसे ऐसा हो गया।'

'तू रो मत मम्मी, नहीं तो मुझे भी रोना आ जायगा।' कहते

रो ही पड़ती है । मैं उसे चुप कराती हूँ ।

वह मुझसे कहती है 'तूने जानबूझ कर तो ऐसा किया नहीं है फिर तू क्यों रोती है ?'

रीटा की बात मुझे पसंद आयी । उसके शब्दों ने मुझे कितनी शांति दी थी ।

थोड़े दिनों के बाद किशोर का दूसरा पत्र आया । मेरे उत्तर न लिखने से वह झुंझला उठा था । वह जब झुंझला जाता है तब कैसा हो जाता है—मैं जानती हूँ ।

पर मैं करूँ भी क्या ? वह कहाँ जानता है मेरी लाचारी ! उसने तो मुझे धमकी भी लिखी थी कि यदि मैं उसे पत्र नहीं लिखूंगी तो फिर कभी इन्दौर नहीं आयेगा—कभी नहीं ।

लक्ष्मणराव भी किशोर के न होने से बेचैन था । उसे पैसे नहीं मिलते हैं तो वह मुझ से तकाजा करता है । मैं एक ऐसी स्थिति पर आ पहुँची थी कि मैं स्वयं नहीं जानती थी कि मुझे क्या अच्छा लगता है और क्या नहीं, मैं क्या करूँ और क्या नहीं ?

लगता था किशोर के आने पर ही मेरी खुशी लौटेगी । मन उदास रहा करता था ।

हास्पिटल की ड्यूटी से थकी होने पर भी प्रायः अहिल्याबाई की प्रतिमा के पास खड़ी रहती ।

शायद मैं किशोर को याद कर रही थी । उसकी स्मृति मेरे अस्तित्व को घेरे हुए थी । किशोर ने जो कुछ लिखा था उसे कर दिखानेवाला लड़का था । जैसा कि उसने लिखा है, यदि वह सचमुच यहाँ न आये तो ?

सबसे ज्यादा महत्त्व की बात तो यह थी कि किशोर को गये काफी दिन हो गये थे और मेरा भी महीना चढ़ गया था । इसका अर्थ यह था कि मेरे उदर में कोई जीवन ग्रहण कर रहा था, वृद्धि पा रहा था । यह किशोर का प्रदान था ।

उस समय मैं नहीं समझ पा रही थी कि इसे पलने दूँ या वह जाने

हूँ। मैं नही मानती थी कि मैं किशोर की प्रेमिका हूँ या पत्नी हूँ। उसके प्रति मेरे मन मे किस नाम के भाव थे—इसका विश्लेषण भी नहीं कर पाती थी। इसके पूर्व ही कुदरत ने अपना प्रताप दिखा दिया था।

मैं मातृत्व के सुख को नकार सकती थी, मेरे लिए इसका उपाय भी कठिन नहीं था, पर कुछ हो नहीं पा रहा था, कुछ कर नही पा रही थी।

लक्ष्मणराव को अभी इसका पता नही था। उस अपनी पत्नी के बारे मे कुछ भी जानने की इच्छा ही कब होती थी? मैं उसके लिए पत्नी नही, पैसा प्राप्त करने का साधन थी। लक्ष्मणराव जब यह जानेगा तब क्या कहेगा, क्या करेगा—इसका विचार मुझे कँपा जाता था। इसी कारण मुझे किशोर की जरूरत थी।

किशोर क्या कहता है यह जानने की भी इच्छा थी। किशोर को पहचानने की यह घड़ी थी। यह अवसर था उसकी परीक्षा का। यह जानकर किशोर खुश होता है या नाखुश, वह मुझसे इसे गिरा देने के लिए कहता है या धारण किए रहने के लिए—यह अनुमान का ही विषय था।

किशोर के प्रति श्रद्धा के स्थिर न हो पाने के कारण ही ऐसा था अन्यथा मन मे उसकी अपेक्षा के प्रति निश्चिन्तता होती।

लक्ष्मणराव और मेरे बीच कोई आन्तरिक संबध नहीं था। पर दुनिया इसे क्या जाने! इसी कारण मुझे दुनिया की कोई चिन्ता नहीं थी। बाहर की दुनिया कितनी अधी होती है और उसकी जानकारी भी कितनी गलत और अधूरी होती है। वह तो यही जानेगी कि मेरे उदर मे लक्ष्मणराव की सतान है। इसी कारण दुनिया की दृष्टि मे मैं यथावत् ही रहनेवाली थी।

पर लक्ष्मणराव से तो यह छिपाया नही जा सकेगा। और जब वह जानेगा तब? काफी विचार करने के बाद मैंने किशोर को पत्र लिखा। ज्यादा कुछ नहीं लिख सकी। सिर्फ इतना ही लिखा कि तुम बहुत याद आ रहे हो, जल्दी चले आओ, दर न करना।

यहाँ दुनियाँ उथल-पुथल होने को है। इसे रोकने के लिए मुझे तुम्हारी

जरूरत है। देखना, ऐसा न हो कि मेरे ऊपर पहाड़ पड़ जाय और तुम देखते ही रह जाओ। बाद में पछताओगे और हाथ बाँधे खड़े रह जाओगे। एक बार रस्सी हाथ से छूट जाती है तो फिर हाथ में नहीं आती। फिर तो वह अनंत में डूब जाती है और हमारी आँखें शून्य में खो जाती हैं। इन्तजार करने पर भी छूटी हुई डोर पुनः हाथ में नहीं आती।

पत्र मिलते ही किशोर आ पहुँचा। उसके आगमन ने मेरे बिखरे हुए आशा तंतुओं को एकत्र कर दिया। वह अटैची लिए सीधा मेरे घर ही आया। आते ही उसने बैग रख कर रीटा को गोद में उठा लिया। और उसे प्यार करने लगा। मुझे तब लग रहा था वह रीटा को नहीं मुझी को प्यार कर रहा है।

उसे पानी पिला कर मैंने पूछा 'बहुत दिन रुके। यहाँ का कोई याद ही नहीं आया? रीटा तुम्हें कितना याद कर रही थी?'

'केवल रीटा ही याद कर रही थी?' हँसते हुए उसने उल्टा मुझी से प्रश्न किया।

उसका यह प्रश्न मुझे लेकर था। मैं भी कहाँ रीटा के लिए ही पूछ रही थी। आज उससे आँखें मिलाने में शरम लग रही थी। एक नया भाव अनुभव कर रही थी। इसके पूर्व हमारे सम्बन्धों के बीच एक संदिग्धता थी, अस्पष्टता थी। मैं नहीं समझ पा रही थी कि किशोर के साथ मेरे सम्बन्ध का नाम क्या है।

और अब जब कि मेरे गर्भ में उसका बालक है—सम्बन्ध का नाम मिल गया है। वह मेरा स्वामी था। एक छोटा-सा नवयुवक किशोर मेरा स्वामी। मैं उसके मुँह की ओर ताक रही थी।

किशोर की आँखें मुझसे प्रश्न पूछ रही थीं 'क्या कारण था कि मुझे तुरन्त आने के लिए लिखा?'

रीटा के सामने मैं उससे कुछ कह नहीं पा रही थी। इसी कारण हम दोनों की नजरें घूम फिर कर उसी पर जाकर टिकती थीं। मैंने रास्ता ढूँढा 'रीटा, किशोर बाबू के लिए थोड़ा नाश्ता ले आ।'

'क्या लाऊँ मम्मी ? मैं पसंद नहीं कर पाऊँगी।'

'तुझे जो भी अच्छा लगे-ले आना। इतने दिनों के बाद किशोर बाबू आये हैं। उन्हें केवल चाय पिला कर ही विदा कर देंगे ?'

मैंने रीटा को पैसे और थैली दी। रीटा बेमन से गयी। रीटा के जाते ही मैंने दरवाजे बंद कर दिए तो किशोर ने तुरन्त मुझे आलिंगन पाश में बाँध लिया, मानो वह इसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। उसका शरीर तप रहा था। उसका अंग-अंग मानो मेरी भूख, मेरी तड़प अनुभव कर रहा था। उसके गर्म-गर्म ओठ मेरे शरीर पर छप रहे थे। काफी मना करने पर भी मैं उसे रोक न सकी।

प्रेम का धन देकर आदमी उसका प्रतिदान चाहता है और जब वह नहीं मिलता है तब वह विवश हो जाता है। किशोर की भी मुझसे यही अपेक्षा रही होगी। किंतु उसे मेरी लाचारी का भान नहीं था।

मैंने उससे धीरे से कहा 'किशोर बाबू, मैं तुमसे इतना प्रेम करती हूँ कि मृत्यु तक तुम मुझसे जो भी मांगोगे—देती रहूँगी, पर जब मैं मना करूँ तब समझ जाया करो कि मेरी कुछ लाचारी होगी। यही बात मुझे तुमसे कहनी है, इसीलिये तुम्हें बुलाया है।'

मैंने किशोर के हाथ को अपने उदर पर रखा 'यहाँ तुम्हारा अंश स्थापित हो गया है, इसी कारण मैं तुमसे मना कर रही थी।'

उस समय उसकी आँखों में मैंने एक अकल्पित चमक देखी। ऐसे संयोगों में कोई भी एक बार तो परेशान हो ही जाता है। मैंने भी ऐसा ही अंदाज लगाया था। किंतु मैंने किशोर को प्रसन्न पाया। उसकी यह प्रसन्नता अपूर्व थी। उसकी देह में प्रसन्नता की लहरें दौड़ रही थीं। उस समय उसने मुझ पर इतनी अधिक प्रेम-वर्षा की कि जो किसी के लिए भी जीवन की अमूल्य निधि बन जाय। मानो मैंने उसे आभारी बनाया हो।

उसी ने कहा था 'तुमने मुझ मर्त्य को अमर्त्य में बदल दिया है वह मेरी अपेक्षा काफी पढ़ा-लिखा था, इस कारण मुझे

पूछना पड़ा। उसे इतना प्रसन्न देख कैसे उसे कठोर वास्तविकता की ओर खींचती ? पर कोई विकल्प भी तो नहीं था।

मैंने कहा 'किशोर बाबू, प्रसन्नता में खो जाना ठीक नहीं, भविष्य का विचार किया है ?'

उसके मुख की प्रसन्नता तुरन्त लुप्त हो गयी। वह विचारों में खो गया। कुछ देर बाद वह बोला 'हम दोनों रीटा को साथ लेकर कहीं दूर चले जाय—बहुत दूर।'

'फिर तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का क्या होगा ?'

'जो होना होगा—होगा। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। इस समय अन्य समस्याओं पर विचार करना ठीक नहीं।'

'पर मुझे तो करना ही पड़ेगा। मैं हर कुरबानी देकर तुम्हें पढ़ाना चाहती हूँ। मेरी जिन्दगी की यही ख्वाहिश है कि किशोर बाबू पढ़-लिखकर बड़े आदमी बनें। यों तो मैं भी नौकरी कर सकती हूँ पर तुम्हारी पढ़ाई और घर का खर्च नहीं पूरा हो सकता। और इस समय कहीं और चले जांय तो रीटा की पढ़ाई-लिखाई बिगड़ जाय।'

'वैसे तो मेरा भी एक वर्ष बिगड़ जायगा। इस समय किसी अन्य जगह प्रवेश भी नहीं मिल सकता।'

'इसीलिए मुझे यह पसंद नहीं है। फिर रीटा को साथ लेकर कैसे जा सकते हैं ? रीटा किसी अन्य की अमानत है और हम दो की जिन्दगी में शायद परायी भी बन जाय।'

'तुम्हें मेरा विश्वास नहीं है ? लक्ष्मणराव और तुम उसे जितना प्रेम दे सकते हो उससे अधिक प्रेम मैं उसे दे सकता हूँ।' उसने कहा।

'इस समय मुझे इसमें शंका नहीं है पर मैं भविष्य की ओर देख रही हूँ। इसीलिए सोचती हूँ कि यह नवागन्तुक हमें अनेक परेशानी में डाल सकता है। तुम जानते ही हो कि लक्ष्मणराव के साथ मेरा फिलहाल ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे जब इस हकीकत का पता लगेगा तब वह क्या कहेगा और करेगा—समझ में नहीं आता। इसीलिए सोचती हूँ, यदि तुम

कहो तो इसी समय इसका उपाय कर लिया जाय जिससे हम दोनो मुसीबत से छूट जायें।'

छि, तुम्हारे इस विचार से मुझे लज्जा आ रही है। इसका सीधासा अर्थ यह है कि मैं कायर हूँ। मैं अपना भार ढो नही सकता और इसी लिए पलायन का मार्ग ढूढ रहा हूँ। नवागतुक मेरी जवाबदारी है और इस विषय मे मैं जो कहूँ वही तुम्हे करना है।'

स्त्री के लिए किसी का इस तरह होना कितना सतोषप्रद है! कोई उसके सुख-दु ख की चिन्ता करता हो, उसकी ससार के ताप से रक्षा करे, उसका छत्र बन कर रहे! किशोर यही कर रहा था।

मन मे हुआ कि झुक कर उसके पैर छू लू और उसे अपने पति के स्थान पर स्थापित कर लू, पर ऐसा नही कर सकी।

रीटा नाश्ता लेकर आ गयी थी। मैंने दरवाजा खोला और फिर चाय बनाने अदर चली गयी। उस समय रीटा ने पूछा था 'मम्मी, तुमने अभी तक चाय नहीं बनायी?'

'देखो न! अभी तक चाय नही बनाई! काम की जगह केवल बात ही करती रहती हैं।' किशोर ने रीटा का अनुमोदन किया। फिर उसे गोद मे बैठाकर खाने लगा, मानो अभी से पिता बन गया हो। उसमे एकाएक प्रौढत्व आ गया था।

उन दिना किशोर ने मुझे जो स्नेह दिया था, भुलाये भूला नही जा सकता। शाम को हास्पिटल आता और वहाँ से तागे मे बैठाकर घुमाने ले जाता। रीटा भी साथ होती। हम नाटक देखने जाते। उसने मुझे 'महाभारत के आदश चरित्र' नामक ग्रथ इसलिए दिया था जिससे मेरा मन धार्मिक बना रह। भागवत पुराण की पुस्तक भी वह इसी उद्देश्य से लाया था।

एक दिन नरेश चाचा की कार मे वह हमे उज्जयिनी महाकालेश्वर के दशन के लिए ले गया।

'कितने अधिक रुपये तुमने खर्च कर डाले है!' मैंन

टोकते हुए कहा।

'इस बार, कोई तकलीफ होगी—ऐसा सोचकर काफी रुपये ले आया हूँ और इन दिनों में आनंदित रहना चाहिए जिससे बालक के मन में अच्छे संस्कार पड़ें।'

हॉस्पिटल की अन्य नर्सें मेरी प्रसन्नता पर ईर्ष्या करतीं। उन्होंने किशोर के साथ मुझे देखा होगा। वे हमारे सम्बन्धों को कोई संज्ञा दे रही होंगी—ऐसा मुझे कभी नहीं लगा। या उन्होंने मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होने दिया।

एक दिन सुशीला मुझे तोपखाने के पास देख गयी थी। हॉस्पिटल की नर्सों में वही मेरे सबसे अधिक निकट थी। दूसरे दिन ही उसने मुझसे पूछा था 'तुम्हारे साथ कल कौन था?'

'वह तो मेरा नन्हा सा पति था।' कह देने की इच्छा हुई थी पर मैंने अपने आप पर काबू रखा, 'वह तो किशोर था, मेरा रोगी रह चुका है।'

'अब तू तो उसकी रोगी नहीं बन गयी है न?' उसने मजाक किया।

'उसके साथ हमारा पारिवारिक सम्बन्ध है।' मैंने बात टालते हुए कहा।

हॉस्पिटल मे यह किसी से छिपा न रहा कि मैं पुन सगर्भा हूँ। एक बार हॉस्पिटल मे ही मुझे उल्टी हुई थी। उस समय डॉक्टर ने जाँच करने के बाद सबको इस खुशी का समाचार सुनाया था। सब मुझसे मिठाई माँग रहे थे। मैं शरमा जाती थी। मन मे भय भी था कहीं कोई लक्ष्मणराव से मिठाई माँगने न पहुँच जाय।

पर मैं लक्ष्मणराव से यह कब तक छिपा सकती थी।

○ ●

चौदह

जिस प्रकार गिद्ध आकाश मे अपने आहार के लिए मँडराते रहते हैं उसी प्रकार पुरुष भी स्त्री के आस-पास मँडराता रहता है ।

सब के लिए यह सच हो सकता है पर केशू भाई के लिए नहीं । केशू भाई ने कभी भी मेरे स्त्री रूप का उपभोग नहीं किया है । मुझे नहीं लगा कि उनके मन मे भी ऐसा कोई भाव रहा हो । दुनिया को देखने मे मेरी आँखें अभ्यस्त हो गयी हैं । अब ऐसा नहीं हो सकता कि मैं पुरुष की नजरो को न पहचान पाऊँ ।

मेरे परिचारिका जीवन मे इतने विविध व्यक्ति आ गये हैं कि अब आदमी की नजर पहचानना सहज हो गया है । फिर वह व्यक्ति डॉक्टर हो, रोगी हो या रोगी का कोई रिश्तेदार-मित्र हो । हमारी बोलचाल, हँसना-मुस्कुराना सब का कोई कुछ न कुछ अर्थ ये लगा ही लेत हैं । इस बात का पूरा ध्यान रखना पडता है । पर, केशू भाई के साथ मुक्त रहकर बातें की जा सकती हैं, हिला-मिला जा सकता है ।

केशू भाई से जिस समय परिचय हुआ था, उस समय मैं इतनी अना-कर्षक नहीं थी, इतनी उम्र भी नहीं थी । मैं जानती हूँ, मैं बहुत सुन्दर तो नहीं थी पर मेरी शारीरिक गठन ऐसी जरूर है जो किसी को आकर्षक लगे बिना न रहे । स्त्री के लिए यह बात गर्व की भी हो सकती है । पर यही कभी अभिशाप भी बन जाता है ।

परन्तु, केवल केशू भाई ने ही कभी भी मुझे इस दृष्टि से नहीं देखा है । उन्होने मेरी नारी को देखा है, मेरे रूप या देह को नहीं ।

दोपहर जब केशू भाई आये तब मुझे लगा वे यू ही आये होंगे पर बाद मे उनकी बातो से मुझे यह प्रतीति हो गयी कि निश्चित रूप से इन्हें सतीश ने ही भेजा होगा ।

'तुम भले ही स्वीकार न करो पर तुम्हें भेजा है सतीश ने ही। मैं नहीं समझ पाती वे ऐसा क्यों करते हैं।'

'रमा, तुम सतीश के साथ अन्याय कर रही हो। मान लो, उसी ने मुझे यहाँ तुम्हारा समाचार लेने भेजा हो तो इसमें उसने तुम्हार अहित में क्या किया?'

'मैंने उससे मना किया था।'

'तो क्या हुआ? जो ठीक लगा, वह किया उसने। तुम्हारी तबियत ठीक न हो तो मुझे समाचार भी न दे?'

'क्या हुआ है ऐसा मेरी तबियत को? तुम सब मुझे तबियत ठीक नहीं है, ठीक नहीं है कह कर और भी नर्वस कर रहे हो।'

'तुम्हारा इतनी सामान्य सी बात पर भी काबू खो बैठना तो यही बताता है कि तुम्हारी तबियत सामान्य नहीं है। पहले भी तुम कभी ऐसा करती थीं?'

'हाँ, ठीक है। मेरी तबियत ठीक नहीं है। मेरा सिर घूम गया है। तुम्हें यही चाहिए न?'

मैं बहुत क्रोधित हो गयी थी। क्रोध में ही मैंने सामने पड़ी कप-रकाबियाँ पछाड़ दी थीं। केशू भाई यह देख डर गये थे। उन्होंने अपने पैर जमीन से ऊपर कर लिए थे। इस पर मैं हँस पड़ी थी।

'यह सब क्या करती हो तुम? यदि तुम्हें मेरा यहाँ आना अच्छा न लगता हो तो मैं अब नहीं आऊँगा।'

केशू भाई की आवाज मे लाचारी भरी हुई थी। मैं उन्हें देखती ही रह गयी। मेरी आँखें भर आयी।

'केशू भाई, मुझे माफ करना। तुम्हारे अलावा मेरा अपना कौन है? पर, मैं अपने आपको वश मे नही रख पाती। चाहती हूँ कुछ, और हो जाता है कुछ और ही।'

'कल चक्कर आ गये थे? एकाएक क्या हो गया था?'

'क्या मालूम क्या हो गया था, बाहर नल के पास गिर पड़ी थी।

सुबह से ही सिर चक्कर खा रहा था। रात में नींद नहीं आती—विचार ही आते रहते हैं।'

'किस बात के विचार आते हैं ? बीती बातें नहीं सोचनी चाहिए।' केनू भाई की बात में मेरे प्रति गहरी हमदर्दी दीख रही थी।

'केनू भाई, आयी तो हूँ मैं यहाँ अकेली ही पर अपने पीछे कितना अधिक छोड़ कर आयी हूँ ? पीछे छूटा हुआ मुझे पकड़ रखता है। इसके चंगुल से छूट नहीं पा रही हूँ। खास तौर से मेरी रीटा, मेरी प्रियगु, और भी कितना कुछ। मेरा घर कितना भरा-भरा होना चाहिये ! उसकी जगह बिलकुल खाली-खाली है। आज मैं चालीस वर्ष की उम्र में किसी अनजान के साथ जो खाली है उसे भरने के लिए तड़प रही हूँ। मेरे प्रारब्ध में ऐसा क्या लिखा है कि मैं भरती हूँ और खाली हो-हो जाता है। मेरे हाथ खाली के खाली ही रहते हैं। मैं जिस वृक्ष को पालती पोषती हूँ, कोई उसे उखाड़ कर अपने बगीचे में लगा लेता है। और मेरा बगीचा उजाड़, वीरान ही रहता है। मुझे हमेशा नये बीज डालने हैं नये पौधों को पालना है और फिर भी खाली हाथ ही रहना है।'

'तुम्हारी जिन्दगी का विचार करता हूँ तब मुझे भी ऐसा ही लगता है', केनू भाई ने कहा। 'मैं यहाँ आ रहा था तब यही विचार मन में घूम रहे थे।' फिर कुछ देर रुक कर वे बोले 'किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हिम्मत हार बाई जाय और प्रवाह में बह जाँय। कुछ लोगों के भाग्य में प्रवाह की दिशा में तैरना लिखा होता है। पर तुम्हें तो प्रवाह के विरुद्ध तैरना है।'

'अब तो मैं थक गयी हूँ। लगता है, मैं और मेरा शरीर अलग-अलग हैं। दोनों के बीच कोई रिश्ता नहीं बैठता। तुम डॉक्टर से समय माँग लेना। एक बार और तबियत दिखा आऊँ। मन शून्य में खोया रहता है। बैठे-बैठे जड़ सी बन जाती हूँ और फिर मन में अनेक बातें घुमड़ती रहती हैं। सब चित्रवत् दिखाई देता है। ऐसे समय यदि कोई बोल पड़े तो मैं काँप-काँप जाती हूँ। आवाज सहन नहीं कर पाती। सब

है कि मैं बेहोश हो जाऊँगी।'

'चिन्ता न करो। मैं डॉक्टर से समय माँग कर तुम्हे साथ ले चलूगा। वे जैसा कहगे, उपचार शुरू कर देंगे।'

फिर कुछ इधर-उधर की बातें की। बात-बात में मैंने पूछा 'तुम साथ मे बाल-बच्चो को तो कभी लाते ही नही ?'

'क्या लाऊँ ? तुम मेरे साथ ही ठीक व्यवहार नहीं करतीं। साथ में उन्हे लाऊँ और बुरा न मानना आज ही मैंने जब यह कहा कि तुम्हारे यहाँ जा रहा हूँ तो बेबी साथ आने के लिए जिद करने लगी। किसी तरह उसे समझाकर निकल पाया।'

'तुम्ह ठीक लगे वैसा करो मैं तुम्हें दु ख पहुँचाने के लिए ऐसा नही करती। पर, हो ऐसा ही जाता है।'

'मैं यह जानता हूँ, पर दूसरो को कैसे समझाया जा सकता है ? किसी का बुरा भी लग सकता है, इसी से किसी को साथ नही लाता। अब आऊँगा तो सबको साथ लाऊँगा।'

हम बातें कर रहे थे, उस समय दरवाजे खुले ही थे। सुमन आवाज लगाये बगैर ही अन्दर चली आयी और अन्दर आते ही ठिठक कर खडी हो गयी। मैंने उसका स्वागत किया।

'आओ न ?'

'नही, बाद में आऊँगी।' कहकर उसने पीठ फेर ली, 'मैंने सोचा तुम अकेली होगी, इस कारण आयी थी।'

अनायास मेरी और केशू भाई की आँखें मिल गयीं जो सुमन के शब्दों का भाव पढने का प्रयत्न कर रही थी। मुझे हँसी आ गयी।

'यह तो सनातन स चला आ रहा है, चलता ही रहेगा।'

केशू भाई भी मेरी बात सुन कर हँस पडे। फिर खडे होकर बोले

'अब मैं जाऊँगा।'

'क्यों, क्या कोई जल्दी है ?'

'नहीं।'

'तो बैठो, कुछ नाश्ता करें। मैं अभी हाल बनाती हूँ। मुझे भी भूख लगी है! तुम्हारे बहाने मैं भी खा लूँगी।'

मैं नाश्ता बनाने लगी। केशू भाई बाहर बैठकर अखबार पढ़ने लगे। उन्होंने अन्दर आकर दो मजेदार समाचार मुझे सुनाये भी। नाश्ता तैयार होने पर सतीश के लिए अलग रख कर हम बैठक में नाश्ता करने बैठे। केशू भाई जब बातों के रंग मे चढ़ जाते हैं तब खूब हँसाते हैं।

केशू भाई अखबार दिखाते हुए बोले 'देखो, मेरा यह सप्ताह इस भविष्य-कथन की दृष्टि से तो ऐसा है कि मुझे लॉटरी की टिकिट खरीदनी ही चाहिए।'

'सब कुछ बेच-बाचकर लाटरी की टिकिट मत खरीदना।' मैंने हँसते हुए कहा।

'ऐसा करूँ तो भी क्या है? लॉटरी का प्रथम इनाम तो ऐसे भविष्य-वाले को ही मिलता है न?'

'पर यह केवल तुम्हारा ही भविष्य नहीं है।'

'लेकिन भविष्य पढकर लॉटरी की टिकिट लेने वाला तो मैं अकेला ही होऊँगा न? मेरे जैसे बहुत से मूर्ख नहीं हो सकते।'

'यहीं तुम्हारी भूल होती है, केशू भाई। उनमे भी तुम्हारा पहला नम्बर न लगे तो क्या होगा?'

'मुझे अपनी शक्ति मे विश्वास है।'

'कौन सी, मूर्खता की शक्ति मे?'

'विश्वास की जा सके ऐसी दूसरी शक्ति कौन सी है? पर तुम बीच मे न टपको, मुझे चिंतन करने दो।'

'तब तो तुम्हें मेरे रोग का चेप लग रहा है।'

'देखो, फिर बीच में बोलीं!'

'अच्छा, अब नहीं बोलूगी, बस!'

'मुझे लॉटरी का पहला इनाम मिला है—सवा लाख रुपये।'

'बहुत सुन्दर!' मैंने ताली बजाई।

'इसमें से कट-कुटाकर एक लाख रुपये हाथ मे आते हैं।'

'यह तो खैर ठीक है।'

'इन रुपयों मे से मैं सबसे पहले एक बँगला बनवाऊँगा। छोटा सा बँगला। नीचे पाँच कमरे और ऊपर दो कमरे।'

'ऐसा क्यो ?' मैं समझ नहीं पायी थी।

'नीचे बाल-बच्चे रहेगे और ऊपर हम दो। सुबह धूप में बैठेंगे। दोपहर गप्प मारेंगे। साझ पड़े घूमन जायेंगे और रात मे बच्चों को पढायेंगे।'

'केशू भाई, अपने बँगले में मेरे लिए भी एक कमरा बनवा दो।'

'तुम्हे इसमें शका है, रमा बहन ? मेरी चले तो मैं तुम्हे अपने परिवार के साथ ही रखू।'

आभार की दृष्टि से मैं केशू भाई की ओर देखती हूँ। यह तो मैं जानती हूँ कि केशू भाई के मन मे मेरे प्रति भाव है, पर वह इतना गहरा है यह आज जानकर मेरी आँखें भर आयीं। लगा मैं रो पड़ूगी।

ऐसे निर्व्याज स्नेह का अनुभव मैंने कभी नहीं किया है। मुझे जितने भी मिले सब स्वार्थी, लोलुप और किसी-न-किसी अपेक्षा के साथ ही।

हमे कुछ मिलता रहता है तो हम कुछ बाट भी सकते हैं। स्नेह मिलता हो तो वह बाटा भी जा सकता है अन्यथा स्नेह एक दिन सूख जाता है।

जाते समय मैंने केशू भाई को एक पत्र दिया जिससे वे आश्रम से मेरा सामान उठा लायें। यहाँ उन सब चीजो के अभाव में सूना-सूना सा लगता है।

इस घर मे कुछ कमी सी महसूस होती है। खासतौर से सामान की दृष्टि से। एक तो किशोर का फोटो। उसे मुझे यहाँ लटकाना है। उसका और उसकी अमेरिकन पत्नी का फोटो। केशू भाई का भी कुटुम्ब के साथ का एक फोटो है। मैंने इन फोटो को लगाने की जगह भी निश्चित कर रखी है।

पलंग पर टेढी पडी हूँ। खिडकी-दरवाजे बद हैं। शून्यता ने मुझे

घेर लिया है। मन में एक अजीब बेचैनी है। लगता है शून्यता का भार है।

शाम होने को आयी है। मैं सतीश की प्रतीक्षा कर रही हूँ। कितनो की प्रतीक्षा करूँगी मैं ?

लक्ष्मणराव की, किशोर की और अब सतीश की। क्या यह अंतिम प्रतीक्षा होगी ? या अब मृत्यु की ही प्रतीक्षा करनी होगी ?

इस उम्र मे भी मुझे प्रतीक्षा करनी है ? रीटा और प्रियंगु यहाँ होतीं तो मेरी प्रतीक्षा न करतीं ? कहाँ होगी वे ? एक कूट चक्र मुझे क्यो घेर रहा है ? जो भी विचारती हूँ उसके विपरीत ही क्यों होता है ? किसी स्थिर जगह पैर रखती हूँ पर जगह ही सरक जाती है। फिसलन भरी जगह ! पुन स्थिर होने के लिए शक्ति खर्च करनी पडती है। कोई हाथ पकड कर उठाने वाला मिल जाय तो ठीक, नहीं तो स्वयं ही उठना पडता है।

वे कितने खुशकिस्मत हैं जिनकी जिन्दगी मे कोई आधार है। विचार आते हैं, विचार आते हैं और मानो द्वार खुलता है।

लक्ष्मणराव दरवाजा खोलकर अन्दर आता है और फिर उसे बन्द कर देता है। स्टापर पर मुझे उसका फूली हुई नसोवाला हाथ दिखाई देता है। मुझे उसे ऐसा करते रोकना चाहिए पर मैं हिल-डुल नही पाती हूँ। बोल नही पाती हूँ।

वह मेरे सामने आकर खडा हो जाता है। उसके हाथ मे पतले बेंत की छडी है। आँखें तरेर कर तीखी आवाज मे वह पूछता है

'यह किसका घर सजाया है ? कुलटा, इस घर और वर की सख्या कहा तक आयी है ?'

मैं कुछ बोल नहीं पाती। वह छडी से मुझे पीटता है। मैं चीख भी नहीं पाती। मैं काँपते हुए हाथ जोडती हूँ।

'कृपा करके यहाँ से चले जाओ। इस उम्र में भी मुझे ठिकाने से नहीं लगने दोगे ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा है ?'

'तूने मेरा घर बिगाडा है, मेरा जीवन बिगाडा है।'

'यह कैसी उलटी बात कर रहे हो ? मेरे जीवन को बरबाद करके मुझी को दोष दे रहे हो ? तुम्हीं ने मुझे यहा पहुँचाया है । मेरे जीवन को गदे रास्ते पर तुम्ही ने चढाया । आज चालीस वर्ष की उम्र मे भी मुझे शान्ति नही है सो किसके कारण ?'

वह बिना रुके जवाब देता है

'अपने कारण । तू एक ऐसी स्त्री है जिसे कोई भी पुरुष प्यार नहा कर सकता । पुरुष को एक पूर्ण स्त्री चाहिए । तू अधूरी स्त्री है । कही कुछ कमी है ।'

'क्या कमी है मुझमे ?'

'यह मैं नही जानता, पर तेरा स्त्रीत्व पुरुष को कम पडता है । इसीलिए पुरुष तुझसे जल्दी ही ऊब, थक जाता है और तुझे छोड देता है । इसीलिए तुझे किशोर ने छोडा और तेरा यह नया पति भी तुझे छोड देगा ।'

नही, नही, यह सब झूठ है । यह सब तुम्हारे उपजाये हुए कारण हैं । यह तो कहो, मेरी रीटा कैसी है ? वह अब कैसी लगती है ?'

वह हँसने लगता है । 'तेरी रीटा, है तो वह तेरी ही बेटी न ! अब वह बाजार मे बैठने जितनी हो गयी है । मैंने उसका सौदा लगभग पक्का कर लिया है । तुझे चाहिये तो उसमे से तुझे भाग दूँगा । और तेरी प्रिया '

'मेरी प्रियगु ।'

'हाँ, उसके जवान होने की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ । फिर उसे भी बेच दूँगा ।'

'नहीं, नहीं, ऐसा न करना । रीटा तुम्हारी बेटी है । तुम्हारी अपनी बेटी । उसके विषय मे ऐसा सोचते तुम्हे लाज-हया नहीं आती ? तुम किस मिट्टी के आदमी हो ? और प्रियगु तो किशोर की अमानत है । किशोर ने उसके लिए तुम्हें रुपये दिये हैं ।'

'इससे क्या हुआ ? मैं तेरा बदला उस लडकी से लूँगा ।'

पर तुम्हें मुझसे क्यों बैर है ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? मैंने तुम्हें कुछ लेने के लिए दो—'

मन्मथनाथ हँसते-हँसते दीवार पर सिर पटका है। मैं दोनों पर हाथ रखे पलंग पर चौकन्नी बैठी रहती हूँ।

लगता है ये बहू कभी नहीं छुएँगे। ईश्वर ने मुझे ऐसी बहुएँ को क्यों बनाया होगा ? तुम्हें क्या कमी है ?

• •

पन्द्रह

एक दिन शाम लक्ष्मणराव घर आया। उसका घर आना न मुझे अच्छा लगता है न रीटा को। आनद-किल्लोल करती बच्ची उसे देखते ही सहम जाती है। उसे लगता रहता है कि अब जरूर कोई न कोई विपत्ति आयेगी। रीटा मेरे पास से फिर हटती ही नहीं है।

लक्ष्मणराव हमेशा कुछ न कुछ मांगता ही आता है—भोजन मांगे, पैसा मांगे या फिर कुछ और। उसके मुँह से निकलती शराब की दुर्गंध पूरे घर मे छा जाती है। पान तो उसके मुँह मे हमेशा दबा ही रहता है। उसके बोलने से मुह से थूक के छीटे उडते हैं। उसकी भाषा में अपशब्दों की भरमार रहती है। रीटा की आँखो की कोर पर फिर रुदन आ बैठता है। आसपास के लोग देख-सुन न जांय इस डर से हमेशा उसकी बात झट पूरी कर देनी पडती है।

आज उसने शराब नही पी रखी थी। मुह मे पान भी नहीं था। इतना ही नहीं आज तो वह रीटा के लिए मिठाई भी लाया था। वह आ कर बैठा और रीटा को अपने पास बुलाया।

रीटा मेरा आंचल छोडकर डरती-डरती उसके पास गयी।

'इतना डरती क्यो है ? मुझसे डरने की क्या जरूरत ?'

'तुम्ही सोचो, तुम्हारी लडकी तुमसे क्यों डरती है ?' मैंने कहा।

जवाब देने की जगह वह बेहूदे ढग से हँसा। और किसी को तो कभी शर्म भी आये पर इस आदमी को मैंने कभी शरमाते नहीं देखा। उसने समाधान न किए जा सकें ऐसे जीवन मूल्यों से सदा के लिए समाधान कर लिया था जिसे अन्य कोई कभी न कर सके। वह मनुष्येतर ढंग से जीना सीख गया था।

'रीटा, यह मिठाई तुम और तुम्हारी मम्मी मिलकर खा लेना।' उसने मिठाई का बॉक्स रीटा को देते हुए कहा।

मैंने रीटा से मिठाई का बॉक्स लेकर उसे ताक पर रख दिया। रीटा उसकी लायी हुई मिठाई खाये—यह मुझे पसद नहीं था। मुझे हमेशा इस बात का शक रहा करता है कि कहीं खाने की चीज मे उसने विष न मिला दिया हो।

वैसे मैं जानती हूँ कि वह मुझे मार डालना पसद नहीं करेगा। मैं तो उसका भेदी खजाना थी। मेरे सहारे ही उसका आलसी और आवारा जीवन निभ रहा था। पर ऐसे आदमी पर विश्वास कैसे किया जाय।

लक्ष्मणराव ने मुझे मिठाई ताक पर रखते देखा पर वह कुछ बोला नहीं। उसका आज का व्यवहार कुछ अलग लग रहा था। मेरे मन मे शका पैदा हो गयी।

रात में निवृत्त होकर हम सोये। रीटा सो गयी थी पर मुझे और लक्ष्मणराव को नींद नहीं आयी थी। दोनो के नींद न आने के अलग-अलग कारण थे।

नाइट लैम्प जल रहा था। थोडी-थोडी देर में हम एक दूसरे की खुली हुई आँखें देख लेते।

अन्तत लक्ष्मणराव ने ही बोलना शुरू किया 'मुझे एक बात कहनी है।'

'मैं सोच ही रही थी।'

'मेरे पास एक प्लान है—व्यापार का। वैसे तो केयू भाई के नाम के एक व्यापारी हैं—मेरे परिचित—उनका प्लान है यह। पर उनके पास पूंजी नहीं है। हम जो उसे पूंजी दें तो हमारा हिस्सा उसमे रह। व्यापार अच्छा है और केयू भाई ईमानदार आदमी है। ऐसा कुछ चलन लगे तो हमेशा की झंझट मिट जाय। और फिर कोई बडी पूँजी भी नही रोकनी है—दस हजार रुपयों से भी काम चल सकता है।'

'पर हमारे पास दस हजार रुपए कहां हैं ?'

'तुम चाहो तो दस हजार रुपये इकट्ठे हो सकते हैं। बहुत से डाक्टर तुम्हारे परिचित हैं, तुम कहो तो किशोर के पिता भी इतनी रकम दे सकते हैं। कमा कर वापस कर देंगे। अपना खुद का कोई व्यवसाय हो जाय तो किसी बात की चिंता न रहे।'

सामान्य स्थिति मे तो मैंने उसे चुप कर दिया होता पर इस समय मेरे उदर मे कुछ था जो मेरी जीभ मे ताला लगाये हुए था।

लक्ष्मणराव चाहे तो इन्दौर में मेरा रहना भारी कर दे। वह मेरी बेइज्जती करके ऐसा बना दे जिससे मैं कहीं मुँह दिखाने लायक न रह जाऊँ। उसे अपनी इज्जत की तो चिंता थी ही नहीं।

मैंने नरम होकर कहा 'कह नहीं सकती कि इतने रुपयों का बंदोबस्त हो सकेगा या नही फिर भी मैं किशोर से बात अवश्य करूँगी। तुम अपना प्लान मुझे समझा दो।'

उसने मुझे पूरी योजना बतायी पर मुझे लगा कि वह स्वयं इसके बारे मे बहुत कम जानता था। मैंने उससे जो प्रश्न किए उनका वह ठीक से उत्तर नही दे पाया था। अत में उसने कहा

'मैं कल केशू भाई को यहाँ लेता आऊँगा, वे सारी योजना ठीक से समझा देंगे।'

मैं कुछ कहे बिना उसकी बात से सहमत हो गयी। अदर से मुझे भी यह बात पसद थी। ऐसा कोई काम-धधा जम जाय तो घर की स्थिति भी सुधर जाय और लक्ष्मणराव भी शायद सुधर जाय।

कुछ देर के मौन के बाद वह बोला 'मुझे अभी तुम्हारे हॉस्पिटल की एक नर्स मिली थी। उसने मुझे बधाई दी पर मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं था। मैं तो कुछ बोल ही नहीं पाया। आखिर बात क्या है? मुझसे कहो तो।'

मैंने आँखें बद कर लीं। लगता था कोई मुझे तीखी धार से बींध रहा था। 'बात क्या है' के शब्द पतगिये की तरह अतर को घेरे हुए थे।

सोच नहीं पा रही थी कि इसका क्या उत्तर दूँ। कभी न कभी तो

उसे पता चलेगा ही। पर इस समय कहने के लिए मेरी जीभ खुल नहीं रही थी। मैं कुछ न बोली।

वह मेरी ओर देखकर बेहूदे ढग से हँस रहा था। नाइट लैंप के हलके प्रकाश मे भी उसका हलका हास्य मुखर बन रहा था। मुझे शका थी कि वह सब कुछ जानता है। फिर भी उसने इस प्रश्न को दुहराया नहीं।

उस समय क्षण के लिए एक कुटिल विचार आया। इस समय लक्ष्मणराव को अपना अकशायी बना लू और किशोर का बीज इसके माथे चढ़ा दूँ।

पर मैं उसे अपने निकट सह नही पाती थी। उसे भी मेरे सहवास की जरूरत नही थी। पिछले अनेक वर्षों से उसने मुझे अपनी स्त्री के रूप मे पहचानना छोड दिया था।

मैं मानो उसकी गुलाम न होऊँ? उसके लिए ही कमाती होऊ, पिसती होऊँ?

उसने उस समय यदि प्रेम से मेरी ओर देखा होता तो मेरी कुटिलता सफल हुई होती। पर लक्ष्मणराव को इसका पता होना ही चाहिये। वह करवट बदल कर सोने लगा था।

मैं अपने विचार पर लजा रही थी। मैं मन ही मन हिम्मत बाध रही थी—'किशोर के सम्बध के परिणाम से मुझे क्यों डरना चाहिये? किशोर नहीं डरता है तो मुझे क्यो हताश होना चाहिए? जो पवित्र है उसे कुटिलता का आवरण क्यो चढ़ाया जाय?

दूसरे दिन केशू भाई आये। लक्ष्मणराव ने पहले से ही निश्चित कर रखा होगा। केशू भाई मुझे पहली नजर मे ही गभीर आदमी लगे। सफेद कमीज, कोट, धोती और सिर पर टोपी पहन रखी थी। नमस्कार के बाद वे बैठे।

उन्होंने अपनी बात इस तरह समझायी कि प्रारम्भ मे हजारो और बाद में लाखो रुपयो का लाभ होगा। कोई भी आदमी उनकी बातों मे

आ सकता था। मुझे इसमे लक्ष्मणराव का दोष नहीं दीखा। मैं भी उनकी बात मे आ गयी थी। मुझे लगा कि यदि दस हजार की पूँजी से इतना लाभ हो सकता है तो अवश्य ही इस योजना को प्रारम्भ करना चाहिए।

इस योजना मे सुख भरी जिन्दगी का स्वप्न छिपा हुआ था। वह मेरी कल्पना में छाने लगा। केशू भाई तब से आज तक हमेशा एक समान विश्वासपात्र लगते रहे हैं। कुछ आदमी समय-समय पर अलग अलग दीखते हैं। पर केशू भाई के विषय मे यह सच नहीं है।

केशू भाई एक व्यापारी के यहाँ नौकरी करते थे और उस समय के हर आदमी के समान वे भी लखपति बनने के स्वप्न देखा करते थे।

एक दिन किसी होटल मे लक्ष्मणराव के साथ उनकी भेंट हो गयी। लक्ष्मणराव के जेब म जब तक पैसे होते हैं वह लखपति की तरह रहता है। उसे कमाने के लिए कब पसीना बहाना पड़ता था।

केशू भाई ने बिल चुकाया पर उनकी एकमात्र दस की नोट फटी सी होने के कारण होटल-मालिक ने वापस कर दी। उनकी इस परेशानी मे लक्ष्मणराव ने उनकी फटी नोट लेकर दूसरी नोट दी, इतना ही नहीं, उनका बिल भी उसने स्वयं चुका दिया।

परिचय होने पर लक्ष्मणराव केशू भाई के घर पर तथा उनके ऑफिस म जाने लगा। इसी बीच केशू भाई ने लक्ष्मणराव को अपनी योजना समझाई और पूँजी लगाने पर लक्ष्मणराव का हिस्सेदार बनाने की दरख्वास्त भी की।

मुझे भी यह योजना पसंद आयी थी। मैं यह भी सोचती थी कि किसी न किसी तरह दस हजार रुपये मिल जायेंगे।

और पैसा एक ऐसी वस्तु है जो आदमी को तरह-तरह के नाच नचाता है। पैसे का अभाव आदमी को आदमी नहीं रहने देता, राक्षस बना देता है।

यदि हमारे पास पैसे आ जायँ तो लक्ष्मणराव ठिकाने पर आ जाय,

रीटा का भविष्य सुधर जाय और मुझे जो तनतोड नौकरी करनी पडती है—न करनी पडे।

हकीकत मे नर्स की नौकरी लोगों के रोगिष्ट देह और रोगिष्ट मन के आस-पास ही स्थिर रहती है। इसीलिए लोग इसे पसद नही करते और न ही समाज मे इसकी कोई इज्जत है।

मैं सेवा-भाव से नहीं, पैसे के लिए नौकरी कर रही थी। पैसे कमाने के लिए मेरे पास दूसरी कोई कुशलता नही थी।

दवा की गध, रोगियो की चीख, यातना, हमेशा की दौडा-दौडी, लोगो की हम पर पडती लाचार और शकालु नजरें—इन सबके बीच काम करना जितना प्रारम्भ मे कठिन था उतना ही आज भी है। यदि पैसे मिल जाँय तो घर-गृहस्थी के लिए मुझे कुछ भी न करना पडे। मात्र सुबह-शाम रसोई बनाना और बच्चो को पालना। नौकरी करती स्त्री अधगृहणी ही होती है। यदि मुझे नौकरी से मुक्ति मिल जाय तो मैं पूर्ण गृहणी बन जाऊँ। रीटा की और नवागन्तुक की ठीक से देख-भाल रख सकू। मैं अपने घर की चार-दीवारी मे अपने आप बँधी रहूँ।

किशोर जब घर आया तब मैंने उससे कहा

'उन्हे पता लग गया है कि—'

आगे मैं न बोल पायी, लाज के कारण किन्तु मेरी लाज स किशोर ने अर्थ ग्रहण कर लिया।

'अब क्या होगा ?'

उसके मुँह पर घबराहट थी। व्याकुलता से उसने कहा

'चलो, हम कहीं भाग जाँय।'

उसकी नादानी पर मुझे मन ही मन हँसी आ रही थी। मैंन उसे समझाते हुए कहा

'इस विषय पर पहले ही हमारी बात हो चुकी है। यह मुझसे नहीं हो सकेगा। तुम्हारा अध्ययन बिगड यह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती। दूसरी बात यह कि लक्ष्मणराव को अभी आशका ही है। उसे इस बात

का अभी पूरा-पूरा विश्वास हो ऐसा नही लगता। यदि उसे इस बात पर पूरा विश्वास होता तो अब तक तो उसने न जाने क्या कर दिया होता।'

'तब क्या करना चाहिए ?'

कुछ देर चुप रहकर धीर से मैं बोली

'इसका सीधा सा एकमात्र रास्ता यही है कि इसे गिरा दिया जाय।'

एसा मैं कभी भी नही होने दूँगा। अपनी पहली संतान को होने स रोकने का पाप करके सारी जिन्दगी सताप मोल लेना मैं नही चाहता।' वह कुछ सरोष बोला।

'एक दूसरा रास्ता भी है।' मैंने प्रस्ताव रखा। मेरी बात सुनने क लिए वह आतुर दीखा।

'हम पैसे से उसका मुह बद कर दें। पैसा देकर तुम मुझे लक्ष्मणराव से हमेशा के लिए खरीद लो।'

'पैसा देकर पत्नी खरीदना मुझे पसन्द नहीं।' वह दृढता से बोला। वह अपनी बात मे स्पष्ट था।

'मुझे भी यह क्यो अच्छा लगेगा कि मुझे पैसो से खरीदा जाय, पर तुम पैसे से मुझे नही अपनी सतान की माता को खरीदोगे। इसके अलावा दूसरा कोई मार्ग नही है। लक्ष्मणराव के ध्यान मे एक धधा आया है। उसके लिए उस पैसो की जरूरत है। उसे पैसे मिल जायँगे तो वह कुछ भी नही बोलेगा। इस समय मुझे यही लग रहा है। तुम विचार कर लेना, फिर तुम्ह जो ठीक लगे वही करेंगे। मैं तुम्हारी हूँ और तुम जो कहोगे वही करूँगी। पर इतना ध्यान रखना कि मैं तुम्हारी स्त्री ही नहीं रीटा की माँ भी हूँ। उसका भविष्य बिगडे ऐसा हमे नही करना चाहिए।'

इसके बाद जब वह घर आया तब साथ मे साडी भी लाया था। उसने मुझसे कहा 'नयी नवेली दुल्हन की तरह तैयार हो जाओ। तुम्हें मेरे घर चलना है।'

पति के रूप मे वह मुझसे कह रहा था। मुझे यह अच्छा लगता है।

मैंने बिना किसी आनाकानी के उसकी बात मान ली। मैंने सिर्फ इतना ही कहा 'यह साड़ी मैं रास्ते में पहन लूंगी।' मेरा तात्पर्य यह था कि यहाँ से नव-वधू का स्वांग रचकर निकलना मेरे लिए सम्भव नहीं है। किशोर मेरे इस आशय को समझ गया था। इसीलिए उसने दुराग्रह नहीं किया।

लक्ष्मणराव से मैंने कह दिया कि मैं किशोर के पिता जी से पैसे लेने जा रही हूँ। वह यह जान कर बहुत खुश हुआ। उसे खुश रखे बगैर काम भी नहीं हो सकता था।

आदमी की लाचारी उससे क्या नहीं करा लेती!

जरूरी काम बता कर मैंने हास्पिटल से छुट्टी ले ली। रीटा को लक्ष्मण-राव के पास छोड़ जाने के अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं था। फिलहाल रीटा को लक्ष्मणराव के पास अकेली छोड़ने में कोई चिन्ता नहीं थी।

उसके सामने ही मैं तथा किशोर तांगे में बैठकर स्टेशन के लिए रवाना हुए।

मैं जीवन में पहली बार किशोर के साथ फर्स्टक्लास के डिब्बे में बैठी। यहाँ जो सुखद आश्चर्य और महत्ता की अनुभूति मुझे हुई थी वह किशोर के घर में घुसते ही अनेकगुनी बढ़ गयी। वह मकान नहीं एक महालय था। किशोर मेरे आश्चर्य को समझ गया था। उसी ने कहा 'हाँ, यही मेरा मकान है।'

मैं किशोर को—इस भव्य महालय के स्वामी को—क्षण भर आश्चर्य से देखती रही। कुछ भी हो, यह किशोर था—मेरा किशोर।

घर में चारों ओर वैभव छलक रहा था। कीमती कालीनें बिछी हुई थी। फरनीचर भी अद्वितीय था। झाड़-फानूस लटक रहे थे। रंगीन दीवारों पर अनेक तैल चित्र लगे हुए थे। नजरों को मोह लेने वाला वातावरण था। चारों ओर सुगंध ही सुगंध फैली हुई थी।

यह सब कल्पना में तो था, कहीं देखा भी होगा किन्तु इस वैभव की स्वामिनी के अहसास ने मन को उत्तेजित कर दिया था। जीवन भर यहाँ राजरानी की तरह रहना पड़े तो—

मन का यह रोमांच ज्यादा देर तक टिक नहीं सका। लक्ष्मणराव के भूत ने मुझे घेर लिया था और गला दबा रहा था। लाख कोशिश करके भी मैं उससे छूट नहीं सकती।

जिसके आँगन मे उपवन हो, फव्वारे हो, विशाल प्रवेश द्वार हो ऐसे महालय की स्वामिनी बनकर रहने का सौभाग्य मिले और साथ ही किशोर जैसा—स्नेह की सुवास से महकता जीवन-साथी हो तो जीवन भर का सुख का चढा हुआ ऋण चुकता हो जाय।

रीटा को उसके पिता को सौंपा था। उसकी जवाबदारी केवल मेरी ही नहीं थी। अपनी लडकी को वह जैसे चाहे रखे। मैं यहा किशोर के साथ अपन स्वप्न मूर्तिमत करूँ और नये स्वप्न सजाऊँ। मेरे आकाश मे नये मेघ छायें क्षणमात्र में सुदामा की तरह अकल्प्य लीला देख डाली, किन्तु फेन की तरह वह पिघल गयी।

रीटा को मैं कभी भी अपने से दूर न होने दूँ। और लक्ष्मणराव के भरोसे तो कभी नही।

और यहाँ किशोर के साथ रह कर सुख मिलेगा ही—ऐसा कैसे माना जा सकता है ? कौन कह सकता है कि लक्ष्मणराव मेरा पीछा करता-करता यहाँ नहीं आ जायेगा। फिर तो जहर और भी फैलेगा।

एक नि श्वास के साथ मैंने अपनी सुदामालीला छिन्न कर दी। मुँह पर स्मित ओढ लिया। मुझे ललचा रहे महालय पर नजर डाल किशोर का हाथ पकड लिया।

किशोर ने मेरी ओर देख स्मित किया पर उसमें व्याकुलता थी। उसने कहा 'अब पहुँच गये हैं। पिता जी को बुला लाऊँ फिर नाटक शुरू।'

भले, शुरू।'

मैं मन मे नाटक शब्द को दुहराती रही।

• •

सोलह

मकान मे प्रवेश करते ही किशोर ने पिताजी को आवाज लगायी। किशोर चाहता था कि वे हमारे आगमन को देखें।

'कौन, किशोर ?' कहते हुए उसके पिता ऊपरी मंजिल से नीचे उतर कर आये।

वे जिस गति से उतरे थे वह गति अंतिम चरणों मे मुझे नही दीखी।

वे हमारे सामने खडे हो गये।

वे कुछ पूछें इसके पहले ही किशोर ने उनके चरण स्पर्श किए। मुझसे भी ऐसा ही करने के लिए किशोर ने कह रखा था। मैंने वैसा ही किया।

'यह क्या किशोर ? कौन है यह ?'

'यह आपकी बधू है, पिताजी, हमने शादी कर ली है।' किशोर ने बडी सहजता के साथ कहा।

जैसा कि मैं किशोर के पिताजी को पहचानती थी—सोच रही थी कि वे यह जानते ही क्रोध से लाल पीले हो जायेंगे और सारे मकान को गुंजा देंगे किन्तु वे बिना एक शब्द बोले धीमी गति से बाहर खंड मे चले गये।

किशोर ने आंखो के इशारे से मुझे साथ-साथ चलने के लिए कहा। मैं ऊपर उसके कमरे मे पहुँची। किशोर की समृद्धि से मैं आश्चर्यचकित हो गया थी।

मैंने उससे कहा 'रीटा की चिंता मुझे न होती तो मैं सारी जिंदगी यहीं व्यतीत करती।'

एक फीकी हँसी हँसते हुए वह बोला 'ईश्वर ने विघ्न से रहित किसी भी सुख का निर्माण नहीं किया है। हर सुख के मार्ग में उसने विघ्न पहले बनाये हैं और फिर आदमी से कहा कि इस दीवार को पार कर।

फिर सुख ही सुख मिलेगा । पर यह दीवार कितनी दुर्गम है ! जितना ही इसे लाँघने का प्रयत्न करो यह ऊँची और ऊँची होती जाती है । सारी जिन्दगी इसे लाँघने में ही बीत जाती है । सुख तो एक रमणीय कल्पना ही रहती है जिसे कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता ।'

'तुम दार्शनिक बन गये हो आज,' मैं हँस पड़ी ।

कुछ देर बाद किशोर के पिताजी ने पुकारा—'किशोर !' हम अस्पष्ट नीचे उतर गये । वे हमे गृह-मन्दिर में ले गये ।

वहाँ दीपमालायें जल रही थीं । अगरबत्ती के धूप से वातावरण में सुगंधि के साथ-साथ धुंधलापन भी छा गया था । सामने कृष्ण की दान लीला का एक चित्र था । दूसरी ओर राम, लक्ष्मण और जानकी की छवि थी । छवि में राम के चरणो मे गदाधारी हनुमान बैठे हुए थे । तीसरी ओर लक्ष्मी जी का चित्र था । वे कमल पर खड़ी थीं । उनके दाहिने हाथ से रुपये झर रहे थे ।

अंदर प्रवेश करते ही पिताजी ने हमे आज्ञा दी 'यहाँ बैठो ।' मैं और किशोर पास-पास बैठ गये । मैं नहीं समझ पा रही थी कि यह सब क्या हो रहा है ? हृदय व्याकुल हो गया था । मैंने किशोर की ओर देखा पर वह मुझसे कम विह्वल नहीं था ।

पिताजी बोले 'देखो, तुम भगवान् के सामने बैठे हो । तुम दोनों भगवान् के चरणो मे हाथ रख कर कहो कि तुमने शादी की है ।'

उनके इस प्रश्न से मेरा अंग-अंग काँप उठा । भगवान् के चरण में हाथ रख कर कैसे कहूँ कि हमने शादी की है ? मैंने किशोर का अनुकरण करने का विचार किया ।

किशोर भगवान् के चरणो का स्पर्श करते हुए बोला 'आप शादी की बात कर रहे हैं ? मैं भगवान् की शपथ लेकर कह रहा हूँ कि यह मेरे बालक की माँ बनने जा रही है । अब शादी मे क्या बाकी रहा है ?'

'पर इसका अर्थ यह नहीं है कि तुमने शादी की है ।' वे जोरों से हँस पड़े ।

'शादी तो एक सामान्य धार्मिक विधि है, यह हो या न हो—मेरे मन मे इसका कोई महत्व नही है ।' किशोर ने कहा ।

'पर मेरे लिए इसका काफी महत्व है । शादी की विधि हुई हो तो यह मेरी पुत्रवधू कही जायगी । इसका मुझ पर, इस घर पर—मेरी सपत्ति पर अधिकार होगा ।'

मैं यह सुनती रही । प्रत्येक धनी आदमी दुनिया को अपनी सम्पत्ति स तोलता है । उसके पास दूसरी कोई दृष्टि नही होती । जीवन के सम्बन्धों को भी वह रुपयो से ही तौलता है ।

मेरे लिए यह कुतूहल का विषय नही था कि किशोर इसका क्या जवाब देता है । मैं किशोर को पहचानती थी और यह जानती थी कि किशोर का उत्तर यही हो सकता है । वह बोला 'इसका मुझ पर तो अधिकार है न ?'

'यह तुम्हारी व्यक्तिगत बात है । अन्य पर अधिकार व्यक्तिगत न हो कर कानूनी होता है ।'

किशोर खडा हो गया । मैं उसकी पिता के सामने बोलने की हिम्मत देख रही थी । मुझे लग रहा था कि उसे यह हिम्मत मेरे साथ से मिली है । शायद मैं गलत भी होऊँ ।

उसने रुँधे-कठ कहा 'ये जिस बालक को जन्म देगी उसके आप दादा बनेंगे, पिताजी । आप अपने वशज को कोई अधिकार नहीं देंगे ?'

'तुम्ही कहो कौन सा अधिकार दू ?' उन्होंने प्रश्न किया ।

'इस बालक को अपनी गोद म बैठने का अधिकार दीजिएगा ?'

पिताजी ने सिर झुका लिया और फिर धीरे से बोले

किशोर तुम मुझे लाचार बना रहे हो । मैं समझ नही पा रहा हूँ कि क्या कहूँ और क्या करूँ ? मैं नहीं चाहता कि मेरे पुत्र की इस तरह शादी हो और इस तरह पुत्र जन्मे । पर जो कुछ हो गया है उसे कैसे बदला जा सकता है ? मुझसे कहो, यह तुम्हारी पत्नी कौन है ? कहाँ है ? इसका घर, कुटुम्ब, नाम मुझे थोडा समझाओ ।'

वे दरवाजा पकड़ कर खड़े थे । वे काफी विवश दीख रहे थे ।

'मैंने और कुछ नहीं देखा समझा—केवल इसे ही पहचाना है । रमा को देखा है । मुझे यह पसंद थी । इसे मैंने अपनाया है ।'

किशोर का जवाब सुनकर मुझे लग रहा था कि मुझे मेरे जीवन का मुआवजा मिल रहा है ।

पिताजी बोले 'किशोर, तुम्हे कैसे समझाऊँ कि जीवन के ये सम्बंध मात्र व्यक्ति के नही होते । यह सम्बन्ध घर का, कुटुम्ब का और सारे समाज का होता है, इसी से बहुत कुछ देखना जानना पडता है । और तुम कहते हो कि तुमने कुछ भी नही देखा-जाना ह !'

मैंने पिताजी का एक रूप हॉस्पिटल में देखा था—चकाचौंध कर देने वाला ! इस समय वे कितने लाचार और मृदु दीख रहे थे । मैं देख रही थी कि सयोग आदमी को कैसा बदल देता है ।

किशोर को मेरा बीच में बोलना ठीक लगे या न लगे यह सोचकर मैं चुप बैठी रही ।

'यह एक अच्छी स्त्री है, प्रेमालु है और आपके लड़के को लगता है कि उसे सुख दे सकेगी—क्या इतना जानना आपके लिए बस नहीं है ?'

'इतना जानना मेरे लिए शायद बस हो सकता है पर दूसरो को मैं क्या जवाब दूँगा ?'

'दूसरे अर्थात् कौन ?'

दूसरे अर्थात् लोग, गाँव के, घर के, कुटुम्ब के जाति के लोग । सब पूछेंगे यह कौन है, कहाँ से लाये हो इसको ? इसके माता-पिता कुटुम्ब आदि कौन हैं ? मैं क्या जवाब दूँगा ? ऐसी स्त्री को मैं अपने घर में बहू के रूप में किस प्रकार रख सकता हूँ ? इसे कोई अधिकार किस प्रकार दे सकता हूँ ?'

यह सुनकर मैं चुप न रह सकी । मैंने अपने घूंघट को हटाते हुए पिताजी के सामने देखते हुए पूछा 'आपने मुझे पहचाना नहीं पिताजी ?'

पिताजी ने मुझे गौर से देखा, मानो भूतकाल को उलट-पलट रहे हों ।

फिर पूछा 'तुम वही नर्स रमा न ?'

'हाँ पिताजी । मैं ही हूँ वह नर्स रमा । मुझे आपका कोई अधिकार नही चाहिए । मैं यहाँ रहने के लिए आयी भी नहीं हूँ । मैं यहाँ रह भी नही सकती । मैं अपने स्थान को जानती हूँ—पर मैं आयी हूँ किशोर के बालक के अधिकार के लिए ।'

'यह बालक किशोर का ही होगा इसका कोई प्रमाण है ?'

उनकी आवाज में व्यग्य था जो मुझे तपा गया । मैंने भगवान् की छवि का स्पर्श करते हुए कहा

'मैं सच कह रही हूँ, पिताजी, यह बालक किशोर का ही है । आप मुझे गलत न समझें । मैं हलकी स्त्री नही हूँ । परिश्रम करके कमाती हूँ तथा अपना और अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करता हूँ । मुझे इतने से ही सतोष है । यह जो कुछ हो गया है—किशोर की नादानी का परिणाम है । य पहले मेरे लिए पागल बने । मेरे मन में भी इनके प्रति गहरी सवेदना जागी । बाद में मैंने देखा कि ये गलत रास्ते पर चढ गये हैं, तब मैंन इन्ह अपने मे समेट लिया । ये मेरे प्रेमी हैं, मैं इनकी प्रेमिका नहीं । मैं अभी तक नहीं समझ पायी हूँ कि मैं इनकी क्या हूँ पर ये मुझे अच्छे लगते हैं—इतना ही जानती हूँ । मैं इन्ह, आपको या किसी और को धोखा नहीं देना चाहती ।'

'तो तुम क्या चाहती हो ?'

'केवल आपका आशीर्वाद ।'

'फिर तुम यहाँ से चली जाओगी ?'

'यहाँ से चली जाने की आज्ञा तो स्वीकार कर लूगी पर किशोर बाबू के जीवन से चली जाना मेरे लिए सभव नही होगा । ये मेरे जीवन में ओत-प्रोत हो गये हैं ।'

'किशोर, तुम्हारा क्या कहना है ?'

'रमा यहीं रहे—इसके अलावा मैं कुछ नहीं कहना चाहता ।'

मैंने कहा 'किशोर बाबू, पिता जी को दु ख न पहुँचाओ । मूल

जाओ मुझे। मैं तुम्हारे घर के लायक नहीं हूँ। मेरा घर तुम्हारे लिए सदा खुला रहेगा। मैं तुम्हारे घर नहीं रह सकूँगी पर तुम रह सकोगे। तुम पढ लिख कर आगे बढो, इसके अलावा मैं कुछ नहीं चाहती।'

'मैं अपने बालक की माता को इस तरह नहीं छोड सकता। पिता के रूप मे अपने कर्तव्य को छोड दूँगा तो जीवन भर पश्चाताप करना पडेगा।'

'पर मैं मा हूँ न। मेरा भी कुछ कर्तव्य है और मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि मैं उसे पूरा करूँगी। और फिर मेरा घर तुम्हारे लिए कहा बद है? तुम आना और देख-भाल रखने मे मदद करना।'

पिता जी न किशोर के कधे पर हाथ रखते हुए कहा 'किशोर, रमा ठीक कह रही है। और मैं भी तो हूँ। मैं देख-भाल रखूगा। तुम इस जजाल को छोड पढने मे मन लगाओ। और रमा, तुम मेरा थोडा मान रखो। तुमने आज मुझे जीत लिया है। अपने लिए नही तो कम से कम किशोर के जन्म लेने वाले बालक के लिए ही मुझसे कुछ माग ले।'

आपके आशीर्वाद के अलावा मुझे कुछ नही चाहिए, सिवाय इसके कि आप कभी-कभी इसकी खोज-खबर लेते रहें।'

'इसके अलावा, मेरी इच्छा है कि तुम नर्स की नौकरी छोड दो और सुख-शान्ति स कुटुम्ब का पालन करो।'

'यह नौकरी तो मेरा जीवन है पिता जी, इसे मैं कैसे छोड सकती हूँ। फिर भी आपकी बात याद रखूगी, बनेगा तो छोड दूँगी।'

'तुम मुझस कुछ माँग लो। कम से कम मेरे जीवन को सतोष देने के लिए माँग लो।' पिता जी ने आग्रह किया।

'ऐसा ही है तो आप मुझे दस हजार रुपये दे दें। मेरे एक परिचित हैं उन्हें पूँजी के बतौर दूँगी। वे व्यापार मे मेरा हिस्सा रखेंगे। यदि काम-धधा अच्छा चलने लगेगा तो हमारे दिन भी सुधर जायेंगे।'

'ठीक है, ठीक है।' कहते हुए पिता जी बाहर चले गये और रुपये लेकर लौटे। इस बीच मैं और किशोर परस्पर कुछ भी नहीं बोले।

लगता था किशोर मुझसे रूठ गया था। उसे मेरी बात अच्छी नहीं लगी थी। मैं उसे मनाना भी नहीं चाहती थी। उसका भला मुझसे अलग हो जाने मे ही था। वह रह-रह कर मेरी ओर क्रोध भरी दृष्टि से देख लेता था।

पिता जी आये, उस समय उनके दोनो हाथो मे रुपये थे। वे बोले

'यह तुम्हारे अधिकार छोड देने की कीमत नहीं दे रहा हूँ। यह मेरी भेंट है। दस हजार रुपये पूषी के लिए तथा दो हजार रुपये वक्त जरूरत पडने पर काम आयें—इसलिए। और, देख, यह सोने का ककण है, तुम्हारे लिये, मेरे कुटुम्ब के सदस्य की निशानी के रूप मे पहनना।'

मेरी आँखें भर आयी थी। मैंने झुककर पिता जी के पैर पकड लिए। जिस तिरस्कार की अपेक्षा थी उसकी जगह उन्होंने मुझे मान दिया था। मैं कब इस लायक थी।

कुछ देर बाद मैं बोली 'आप कह तो मैं इसी समय चली जाऊँ।'

'नहीं, आज तो यही रहो। अच्छा है कि आज किशोर की मा और बच्चे यहा नही हैं, ननिहाल गये हैं। इसलिए कल जाना। तुम्हारी इच्छा होगी तो किशोर तुम्हें पहुँचाने जा सकता है।'

पिता जी चले गये। मैं और किशोर ऊपर गये। किशोर का दबा हुआ क्रोध अब मेरे ऊपर फूट पडा।

'तू रुपयो द्वारा खरीदी गयी। मैं तुम्हे ऐसा नही समझता था। तुम्हारी जगह दूसरा कोई होता तो उनके रुपये उनके मुँह पर फेंक देता।'

'वे पिता हैं, उनके प्रेम को रुपयो से मत तोलो।'

'तुमने उनसे रुपये लेकर मुझे और मेरे प्रेम को उनके सामने हलका बना दिया है।'

'यह सच नही है। फिर हमें रुपयो की जरूरत भी थी। रुपये लेने ही तो यहां आये थे।

'किन्तु इस तरह नहीं।'

'मैं सोचती हूँ कि इससे अच्छी तरह से रुपये नहीं मिले होते। और मिले भी होते तो मैं ले सकी होती या नहीं, मुझे नहीं मालूम।'

'तुम अब क्या करना चाहती हो?' कुछ देर के मौन के बाद किशोर ने पूछा।

'कल तुम मुझे इन्दौर वापस पहुँचा दो।'

'और मैं यहाँ लौट आऊँ?'

'यदि मेरी बात मानो तो तुम कहीं और रहने चले जाओ। दूसरी जगह रहोगे तो ही तुम्हारा मन पढने में लगेगा। मेरी खबर लेते रहना और पत्र लिखते रहना।'

'सिर्फ इतना ही? इन रुपयो को पाकर तुमने हमारे बीच के सम्बन्ध को बेच डाला?'

तुम मेरे विषय मे ऐसा कैसे सोच पा रहे हो? मानो तुम मुझे पहचानते ही न होओ! मुझे रुपयो की क्या जरूरत है? मैं कम से कम इतना तो कमाती ही हूँ जिससे मेरा और रीटा का पूरा हो जाय। लक्ष्मणराव को काम धधा करना हो तो करे, न करे तो भी मुझे क्या लेना देना! इतना ही नही, तुम्हारे बालक को जन्म दूँ न, दूँ यह भी मेरी मर्जी का बात है। मैं पराधीन स्त्री नहीं हूँ जो रुपयों से खरीदी जा सके। किशोर बाबू, यह तो स्नेह का सम्बन्ध है और सोच विचार कर स्वीकार किया है।'

इतना बोलते मेरी आँखो में आँसू भर आये थे। किशोर ने भावार्द्र होकर मेरा हाथ पकड लिया और आजिजी के स्वर मे बोला

'तुम बुरा न मानना। इन्दौर जाकर सब निश्चित करेंगे।'

हर आदमी के जीवन मे कुछ दिन यादगार बन जाते हैं। मेरे जीवन का यह दिन भी ऐसा ही यादगार था। मैं पिताजी के सामने घूँघट निकाल कर घर म रही। वैसे वहाँ ऐसा कोई बन्धन नहीं था पर शायद मैं अपने मन की उमग पूरी कर रही थी। अपने पति के साथ उसके घर, उसके कुटुम्ब क साथ स्वामिनी बन कर रहने का हर स्त्री का स्वप्न होता है या

सत्रह

केशूभाई सामान लेकर आ गये । ऐसा लगा मानो किसी ने मेरे भूत-काल को गठरी मे बाधकर मेरे हाथो मे थमा दिया हो । इस समय तो केशूभाई की भी उपस्थिति सही नहीं जा रही थी । एसा कभी नही हुआ है । केशूभाई तो मेरे लिए आंख की पलको के समान थे, मेरे आधार थे । पर इस समय वे न होते तो अच्छा था । मन चाह रहा था कि वे जल्दी से चले जायें ।

किसी भी औपचारिकता के बिना मैंने चाय बना दी । चाय पीकर वे चले गये । मुझे लगता है कि वे मेरे मन को पा गये थे ।

आदमी कभी अकेलापन चाहता है । कभी उसे दूसरो की उपस्थिति की भी जरूरत पडती है । कुछ भाव अकेले में ही चखे जा सकते हैं और तब अन्य की उपस्थिति अच्छी नहीं लगती ।

केशूभाई के जाने के बाद मैंने दरवाजे बद कर लिए और अपनी सदूक खोली । लगा कि पेटी के खुलते ही हृदय के धबकारे अनियमित हो गये हैं । पेटी मे सबसे ऊपर दो तसवीरें थी । एक केशूभाई के कुटुम्ब की और दूसरी किशोर की थी, किशोर और उसकी पत्नी की । मेरे मँगाने पर ही उसने भेजी थी ।

पर मैंन, उसके कहने पर भी उसके साथ फोटो नही खिचवाया था । मैंने उसे अपना तथा प्रियगु का फोटो भेज दिया था । सुदूर अमेरिका जाकर बसे प्रियजन की इतनी मांग तो पूरी करनी ही चाहिए न !

दोना फोटो रसोईघर की आलमारी के ऊपर लटका दिए । लगा, मेरा सूना घर लोगों की उपस्थिति से भर गया है । ज्यों-ज्यो सदूक से वस्तुएँ निकल रही थी स्मृति के पट खुलते जा रहे थे । हर वस्तु का अपना भूतकाल होता है । ससार मे ऐसी कोई चीज नहीं होती जिसका

अपना कोई खट्टा-मीठा इतिहास न हो।

बस की दो टिकिटें, फटा हुआ रूमाल, डायरी मे रखा हुआ फूल, साडी कागज आदि कुछ भी आदमी के लिए ऐतिहासिक बन सकता है। मेरा सारा सामान ऐसे ही इतिहास को समेटे हुए था। सदूक में सबसे नीचे कागज-पत्रो का बडल था—रूमाल से बँधा।

अमेरिका जान के पहले इन्दौर आते समय यह रूमाल किशोर लाया था। मेरा नवा महीना चल रहा था। हॉस्पिटल से छुट्टी ले ली थी। लक्ष्मणराव का काम-धधा मेरी पूजी से अच्छा-खासा चल निकला था। इसलिए उसे घर की ओर मेरे बढते जाते उदर की ओर देखने की फुरसत ही कहा थी, इच्छा भी नहीं थी।

शाम किशोर के साथ तागे मे बैठ कर घूमने निकली थी। स्टेशन के पास हम उतर गये। वही एक स्टोर से यह रूमाल खरीदा था।

'यह मेरी स्मृति।' उसने कहा था।

'इतनी बडी यादगार तो दिये जा रहे हो।' मैंने अपना शरीर दिखाते हुए कहा। उसने उस समय बडे प्रेम से मेरा हाथ दबाया था—चुपचाप। उस समय का वह स्पदन आज भी सोयी हुई सवेदनाओं को झकझोर देता है।

'इस समय मुझे जाना अच्छा नहीं लग रहा है। पिताजी ने सब कुछ निश्चित कर दिया है, इस कारण जाने के लिये लाचार हो गया हूँ।'

पुरुष जब लाचारी व्यक्त करता है तब वह कितना ठिगना लगता है। पुरुष अर्थात् शक्ति, ओज। इसीलिए मुझे हमेशा यह लगा है कि उसमे हर स्थिति को बहादुरी से झेलने की शक्ति और बुद्धि होनी ही चाहिए।

पर किशोर सचमुच लाचार था—जिस तरह से लक्ष्मणराव मेरी कमाई पर जाने के लिए लाचार था और अब सतीश इस तरह का नित्य अनुभव करा रहा है।

बच्चे के बैठते ही किशोर ने कहा 'मुझे तुरन्त समाचार देना। मैं इसका नाम रखूगा। पालन-पोषण के लिए लक्ष्मणराव को रुपये भेजता

सत्रह

केशूभाई सामान लेकर आ गये। ऐसा लगा मानो किसी ने मेरे भूत-काल को गठरी मे बाधकर मेरे हाथो मे थमा दिया हो। इस समय तो केशूभाई की भी उपस्थिति सही नहीं जा रही थी। ऐसा कभी नही हुआ है। केशूभाई तो मेरे लिए आँख की पलको के समान थे, मेरे आधार थे। पर इस समय वे न होते तो अच्छा था। मन चाह रहा था कि वे जल्दी से चले जायँ।

किसी भी औपचारिकता के बिना मैंने चाय बना दी। चाय पीकर वे चले गये। मुझे लगता है कि वे मेरे मन को पा गये थे।

आदमी कभी अकेलापन चाहता है। कभी उसे दूसरो की उपस्थिति की भी जरूरत पडती है। कुछ भाव अकेले में ही चबे जा सकते हैं और तब अन्य की उपस्थिति अच्छी नही लगती।

केशूभाई के जाने के बाद मैंने दरवाजे बद कर लिए और अपनी सदूक खोली। लगा कि पेटी के खुलते ही हृदय के धबकारे अनियमित हो गये हैं। पेटी मे सबसे ऊपर दो तसवीरें थी। एक केशूभाई के कुटुम्ब की और दूसरी किशोर की थी, किशोर और उसकी पत्नी की। मेरे मँगाने पर ही उसने भेजी थी।

पर मैंने, उसके कहने पर भी, उसके साथ फोटो नहीं खिचवाया था। मैंने उसे अपना तथा प्रियगु का फोटो भेज दिया था। सुदूर अमेरिका जाकर बसे प्रियजन की इतनी माँग तो पूरी करनी ही चाहिए न!

दोनो फोटो रसोईघर की आलमारी के ऊपर लटका दिए। लगा, मेरा सूना घर लोगों की उपस्थिति से भर गया है। ज्यो-ज्यों सदूक से वस्तुएँ निकल रही थी, स्मृति के पट खुलते जा रहे थे। हर वस्तु का अपना भूतकाल होता है। ससार में ऐसी कोई चीज नहीं होती जिसका

अपना कोई खट्टा-मीठा इतिहास न हो।

बस की दो टिकिटें, फटा हुआ रूमाल, डायरी मे रखा हुआ फूल, साडी कागज आदि कुछ भी आदमी के लिए ऐतिहासिक बन सकता है। मेरा सारा सामान ऐसे ही इतिहास को समेटे हुए था। सदूक मे सबसे नीचे कागज-पत्रो का बडल था—रूमाल से बँधा।

अमेरिका जाने के पहले इन्दौर आते समय यह रूमाल किशोर लाया था। मेरा नवाँ महीना चल रहा था। हॉस्पिटल से छुट्टी ले ली थी। लक्ष्मणराव का काम-धधा मेरी पूजी से अच्छा-खासा चल निकला था। इसलिए उसे घर की ओर मेरे बढते जाते उदर की ओर देखने की फुरसत ही कहा थी, इच्छा भी नहीं थी।

शाम किशोर के साथ ताँगे मे बैठ कर घूमने निकली था। स्टेशन के पास हम उतर गये। वही एक स्टोर से यह रूमाल खरीदा था।

'यह मेरी स्मृति।' उसने कहा था।

'इतनी बडी यादगार तो दिये जा रहे हो।' मैंने अपना शरीर दिखाते हुए कहा। उसने उस समय बडे प्रेम से मेरा हाथ दबाया था—चुपचाप। उस समय का वह स्पदन आज भी सोयी हुई सवेदनाओ को झकझोर देता है।

इस समय मुझे जाना अच्छा नही लग रहा है। पिताजी ने सब कुछ निश्चित कर दिया है, इस कारण जाने के लिये लाचार हो गया हूँ।'

पुरुष जब लाचारी व्यक्त करता है तब वह कितना ठिगना लगता है! पुरुष अर्थात् शक्ति, ओज। इसीलिए मुझे हमेशा यह लगा है कि उसमे हर स्थिति को बहादुरी से झेलने की शक्ति और बुद्धि होनी ही चाहिए।

पर किशोर सचमुच लाचार था—जिस तरह से लक्ष्मणराव मेरी कमाइ पर जीने के लिए लाचार था और अब सतीश इस तरह का नित्य अनुभव करा रहा है।

बगीचे में बैठते ही किशोर ने कहा 'मुझे तुरन्त समाचार देना। मैं इसका नाम रखूगा। पालन-पोषण के लिए लक्ष्मणराव को रुपये भेजता

रहूँगा।'

'तुम सब हर समय रुपयों की ही चर्चा क्यों करते रहते हो। रुपया आदमी से ज्यादा कभी नहीं होता। आदमी की कमी रुपयों से पूरी नहीं हो पाती। तुम यहाँ नहीं रहोगे तब मुझे कितना खालीपन अनुभव होगा। तुम्हारे चले जाने पर मेरा यहाँ कौन रह जायगा? तुम्हारे यहाँ न रहने पर तुम्हारी सतान को उतना स्नेह कौन देगा? पिता के वात्सल्य की कमी कौन पूरी कर सकेगा? मेरे उजड़ते जीवन में तुम एक भीनी लहर बनकर आये थे पर उसे फिर से वीरान और खाली करके चले जा रहे हो।'

'तो मैं न जाऊँ?' उसने कहा।

'ऐसा मैं किस अधिकार से कह सकती हूँ। तुम यह जानते हो कि मैं तुम्हारे मार्ग में कभी भी बाधा नहीं बन सकती—इसीलिए ऐसा कह रहे हो?'

'ऐसी बात नहीं है, एक बार मना करके तो देखो।'

'नहीं किशोर बाबू, ऐसा न करना। जाओ। मुझे भूल जाओ। तुम्हारे भविष्य के आगे मेरी जैसी स्त्री की, उसके प्रेम की कीमत ही क्या है! हम तो रास्ते हैं जिस पर होकर लोगों को गुजर जाना है। रास्ते से भी कोई प्रेम करता है? हरेक को मंजिल की ही लगन होती है। मैं मंजिल नहीं हूँ, मार्ग हूँ। तुम्हारी मंजिल कहीं और है।'

मेरे शब्दों को सुन कर किशोर का गला भर आया था। उसने रुँधते गले कहा 'तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो।'

किशोर के उस रूमाल को मैंने आँखों में लगाया। मेरे पास ऐसी पवित्र कोई स्मृति नहीं है। आज भी किशोर के प्रेम को लेकर मेरे मन में गौरव का भाव है।

किशोर के रूमाल में बँधे हुए सभी पत्र किशोर के हैं। शादी के बाद भी उसने पत्र लिखे थे। पोटली खोल कर मैं पत्र ढूँढ़ने लगी, उसकी शादी के प्रस्ताव का। शायद यह उसका सबसे लम्बा पत्र था। वह मुझे

हमेशा 'प्रिय रमा' लिखता और अन्त मे 'एक नादान प्रेमी'।

पत्र निकाल कर मैं पढने लगी। मेरी कल्पना से परे कुछ भी नही था—किशोर को लेकर, फिर भी मैं पत्र पढ कर फूट-फूट कर रोयी। मेरी अनुभूति कुछ उसी प्रकार की थी जो अपनी चीज दूसरे को सौंपते समय होती है।

मेरा उत्तर क्या होगा यह तो किशोर जानता ही होगा। ऊँचे परिवार की अमेरिकन लडकी, जो उसके साथ पढती थी, परिचय हुआ और फिर प्रेम। किशोर ने लिखा था—

'मैं सच लिख रहा हूँ। उसी ने कहा कि अब हमे शादी कर लनी चाहिये। और तभी मैं समझ पाया कि वह मुझसे प्रेम करती है और मुझे शादी के बधन में बाँध लेना चाहती है।'

'मैंने अभी अपने सम्बन्ध की तथा प्रियगु की बात उससे नहीं की है पर अब कहूँगा। यह जान कर यदि वह मना कर दे तो अच्छा। मेरा मन शादी के लिए तैयार नहीं है। शादी करने का मुझे उत्साह भी नही है। यदि मैं उससे मना कर दूँ तो वह बहुत निराश होगी। क्या करूँ समझ मे नही आता। मुझे कोई रास्ता बताओ।'

और मैंने उसे समझाते हुए अपनी तथा प्रियंगु की शपथ दिलाकर—उस समय प्रियगु नाम नहीं रखा था—शादी कर लेने के लिए लिखा। शादी के फोटो भी भेजने के लिए लिखा।

उत्तर मे उसने क्या लिखा है यह जानने के लिए मन अधीर हो उठा था—तुरन्त लिफाफा खोलकर पत्र पढने लगी।

'तुम्हारी दिलायी शपथ का पालन करूँगा। मैंने उसके माता-पिता के सामने शादी का प्रस्ताव रखा है। उसके माता-पिता को यह अच्छा नही लगा है। यहाँ के बुजुग यह नही चाहते कि उनकी गोरी लडकी किसी इण्डियन से शादी करे किन्तु *व्यक्ति स्वातन्त्र्य* का मान रखते हैं। ऐसे सयोग मे अपने देश मे तो माता पिता ने लडकी पर अत्याचार किया होता। बलात् उसे अपनी इच्छा मानने के लिए विवश किया होता

और शादी के लिए सम्मति न दी होती। पर हमारी शादी तो होगी ही।

उससे मैंने अपने सम्बन्ध की बातें की हैं तथा तुम दोनो के फोटो भी बताये हैं। उसने सिर्फ इतना ही कहा 'तो तुम्हारी जिन्दगी में मैं प्रथम स्त्री नही हूँ। कुछ भी हो, तुम मुझे अच्छे लगते हो। तुम्हारे साथ जीवन बिताना आनन्ददायक होगा।'

मुझे भी लक्ष्मणराव की जगह किशोर मिला होता तो मेरा जीवन भी एक आनन्द यात्रा बन जाता। पर भाग्य हमारी इच्छा के अनुसार कहाँ चलता है? दैव ने मेरे गले में शिला बांधकर मुझे गहरे गढे मे धकेल दिया है और मानो कहा है 'तैर कर पार उतरो।' मन शाप दे उठता है।

आस-पास नजर दौडाती हूँ। खुली खिडकी से सामने के बंगले का मधुमालती की बेल के लाल-सफेद फूल देखती रहती हूँ। फिर नजर फिरा कर सामने की आलमारी के ऊपर टगे किशोर के फोटो को देखती हूँ। मन होता है दैव का आभार मानू। उसने इतनी तो दया की। कुछ क्षण के लिए ही सही उसने मुझे किशोर को दिया तो। दैव ने मेरी स्मृति-फलक पर रंगीन छीटे तो डाले। भले ही चित्र न अंकित किया।

पत्र आगे पढ़ती हूँ। 'मेरा वैवाहिक जीवन कैसा रहेगा इसकी शंका सताती रहती है। तुम्हें मैं भूल नही सका हूँ, भूल सकूगा—ऐसा लगता नही।'

पत्र मैंने बंद कर दिया। आँसू भर आये थे, आँखों में।

मैंने लिखा था कि मुझे भूल जाने में ही उसका श्रेय है। नवविवाहिता स्वप्नशील होती है, ये स्वप्न ही उसकी पूँजी होते हैं। उन स्वप्नों को हकीकत बनाना। तुम्हारा प्रेम पाकर वह धन्य बनी है—ऐसा उसे प्रतीत होने देना। उसकी खुशी में ही मेरी खुशी मानना। मुझे पत्र नही लिखोगे तो कोई बात नहीं। तुम्हारी पुत्री प्रियंगु मेरी पुत्री है। मैं उसे तुम्हारी अमानत मानकर रखूगी।

पूरा पत्र मुझे लगभग कठस्थ था। लिख कर न जाने कितनी बार

पढा था।

इसके बाद भी पत्र आते, पर कम। मैं उसे पत्र नहीं लिखती थी। मैं नही चाहती थी कि मेरी वेदना का ताप उसे लगे।

पत्रों को रूमाल मे लपेट कर रख दिया। संदूक को बन्द करके पलग के नीचे रख देने के लिए खडी होना चाहा पर वैसा हो नही सका। दरवाजा बन्द है या नही यह फिर से देख लिया। मेरा पागलपन कोई देख न ले।

पलग पर पूरी सदूक उलट दी। उसकी धूल उडाई। धूल के उडने से छीक आ गयी।

एक बार भोजन करते-करते किशोर को छीक आ गयी थी। मेरे मुह से उस समय सहज ही 'युग-युग जीओ' शब्द निकल पडे। किशोर मेरी ओर देखता ही रह गया।

बडी बुआजी ने एक बार इसी तरह कहा था। मा के अलावा ऐसा कौन कहे?

'मैं कह रही हूँ न!'

'मेरे लिए तुम सब कुछ हो। हर बार अलग-अलग लगती हो।'

सदूक मे शादी की साडी थी। लक्ष्मणराव ने मुझे दो वस्तुएँ दी थी। एक यह साडी और दूसरी—रीटा। मगलसूत्र दिया था पर बाद मे उसे बेच दिया।

रीटा अब अठारह की हुई होगी और प्रियगु ग्यारह वर्ष की। उनकी याद आते ही सिर दीवार से पछाडने को मन करने लगता है। मैं लक्ष्मण-राव से उन्हे न ले सकी।

रीटा जन्मी थी तब एक कपडे पर कुकुम से उसके पैरों की छाप ली थी। उस कपडे को सदूक मे सहज कर रखा है। कुकुम का रंग श्याम हो गया है पर हलका नहीं पडा है। किशोर ने इसे देखा था। इसीलिए मैंने प्रियगु की छाप भी ली थी पर वह किशोर के लिए, उसकी पहली सतान की निशानी, उसे अमेरिका भेज दी थी।

मेरे पास प्रियगु का फोटो है, रीटा का नहीं। लगता है वह लक्ष्मण-राव की बेटी थी, (शायद) इसीलिए मैंने उसके साथ फोटो नहीं खिचवाया। मैंने कितना ध्यान रखा था कि उसमे लक्ष्मणराव के अपलक्षण का एक भी अश न आने पाये पर एक दिन मेरी सारी आशा धूल मे मिल गयी थी।

आँखें बद कर इस विचार को रोक दिया। पलग से उठ कर एक ग्लास पानी पिया, खिड़की की छड पकडे सडक देखती रही।

दोपहर का समय था। लू चल रही थी, परछाइयो के न होने से मकान संकुचित से दीख रहे थे।

इस समय पुरुष घर पर नही होते। स्त्रियाँ इकट्ठी होकर या तो गप्प मारती हैं या सो जाती हैं। बच्चे इधर-उधर खेलते रहते हैं तो उन्हें डाँट-फटकार करती रहती हैं।

सामने के मकान के छज्जे पर कबूतरो ने घोंसला बनाया है। पास ही नीम का पेड है। उस पर कौए बैठे रहते हैं। मौका मिलते ही कबूतरों के अडे खा जाते हैं। कबूतरों को हमेशा ध्यान रखना पड़ता है, जरा चूके तो—

दोपहर के समय फेरीवाले आते रहते हैं। अभी एक फेरीवाला आइस-क्रीम बेचने निकला था। उसकी आवाज सभी मकानो में गूज रही थी। चार-पाँच लड़के लालसावश उसके पीछे-पीछे चल रहे थे।

मैं झटपट पलग के पास गई। सारी वस्तुएँ सदूक में ठूस कर उसे पलंग के नीचे रख दी। दरवाजा खोल दिया। बाहर सुमन बहन खड़े-खड़े कुछ पछोर रही थी। आँखें मिलीं तो मैंने हँसते हुए उनसे कहा

'सुमन बहन, आइसक्रीम वाले को बुलाओ। हम दोनों आइसक्रीम खायें।'

'आइसक्रीम तो बच्चे खाते हैं।' उन्होंने मजाक मे कहा।

'तो हम कहाँ बड़ी हो गई हैं? तुम फेरीवाले को बुलाओ, मैं पर्स ले आऊँ।' कहकर मैं अंदर गयी और पर्स ले आयी।

सुमन बहन ने आवाज लगाकर फेरीवाले को खडाकर रखा । फेरीवाले की जगह सुमन बहन ने ही पूछा 'पूरी डिश लोगी या आधी ?'

'आधी क्यो लें, पूरी ही लेंगे ।'

'भाई, एक पूरी डिश दो मेरी बहन रमा को ।' उन्होंने हँसते-हँसते फेरीवाले से कहा ।

'क्यों एक ही डिश ? आप नहीं खायेंगी ?'

'नही, ठडी चीज खाने से मेरे दाँतों में तकलीफ होती है ।' सुमन बहन ने कारण बताया ।

'अरे, कुछ नही होगा । यदि कुछ होगा तो मैं औषधि दे दूँगी । कहो, अब क्या शिकायत है ? भाई, दो डिश दो ।' मैंने कहा और पर्स मे से दो रुपये निकाल कर फेरीवाले को दिये ।

फेरीवाला हमे बाकी के पैसे लौटाकर खाली डिशों की प्रतीक्षा करता चबूतरे पर बैठ गया ।

चार लडके हमारी ओर ताक रहे थे । मैंने पूछा

'आइसक्रीम खानी है ?'

किसी अन्य की दी वस्तु नहीं खानी चाहिए—ऐसा सोचकर एक लडका तो वहाँ से चला गया मानो उसका स्वाभिमान टूटा हो । अन्य लडको को मैंने एक डिश आइसक्रीम लेकर बाँट दी ।

सुमन ने सीख देते हुए कहा 'इतनी उदार मत बनो, नहीं तो यहाँ के लडके परच जायेंगे और रोज प्राण लेंगे ।'

'रोजाना तो हम ही कहाँ आइसक्रीम खायेंगे ?' मैं हँस पडी ।

मैं समझ नही पा रही थी कि ऐसा मैं क्यों कर रही हूँ । हमने आइस-क्रीम खा ली, खाली डिश वापस कर दी । फेरीवाला चला गया ।

मैं सुमन के साथ चबूतरे पर बैठी और उससे पूछा 'दाँत तो नहीं दुख रहे हैं ?'

'दुखते भी तो तुम क्या कर लेती ?'

'तुम्हे झूठ लग रहा है ? पर मैं आधी डॉक्टर हूँ । मेरी तबियत ठीक

नहीं है इससे यहाँ हूँ, नही तो मैं यहाँ होती भला ! दवाखाने मे नौकरी न करती होती ?'

'अच्छा किया जो तुमने कहा । अब कभी भादी होऊँगी तो तुम्ही से दवा लूगी ।' कह कर सुमन हँसने लगी ।

काफी देर तक हम वहा बैठ कर बातें करते रहे । शायद उस सदूक को बद रखने का मेरे पास यही एक उपाय था—

प्रियगु का जन्म उसी हॉस्पिटल मे हुआ था जहा मैं नौकरी कर रही थी ।

सब साथी इतनी आत्मीयता से मेरी देख-रेख रख रहे थे कि मैं भावाद्र हो उठती थी । डॉक्टर और नर्सें रह-रहकर मेरा समाचार पूछ जाती थी ।

केशू भाई भी अपनी पत्नी के साथ मुझसे मिलने आ गये थे, केवल लक्ष्मणराव ही नहीं आया था । उसके आने पर आश्चर्य होता । पर अन्य लोगों को तो इस पर ही आश्चर्य था । वे तो यही समझते थे कि लक्ष्मण-राव ही इस बालिका का पिता है । हॉस्पिटल और जन्मलेखा कार्यालय में उसी का नाम पिता के रूप मे होगा ।

हॉस्पिटल की एक नर्स सुशीला से तो पूछे बिना रहा ही नही गया

'तुम्हारे मिस्टर क्यो नही आये ? लडकी के जन्म से उदास हो गये हैं क्या ?'

उसी ने मुझे बहाना दे दिया था । हँसते हुए मैंने कहा ऐसा ही होगा ! पर लडकी या लडका अपने हाथ की बात तो है नही ।'

रीटा को केशू भाई अपने घर ले गये थे । तीसरे दिन ही लक्ष्मी बहन रीटा को हॉस्पिटल लायी थी । दूर से ही मुझे देखकर रीटा ने लक्ष्मी बहन का हाथ छुडा लिया और दौडती हुई मेर पास आकर मुझसे लिपट कर रोने लगी ।

'मम्मी तुम यहाँ क्यों आ गयी हो ?'

देख, तेरी छोटी बहन !' मैंने उसे पलग पर सो रही प्रियंगु दिखाई ।

प्रियगु को देख रीटा खुश हो गयी । बहुत देर तक उसे एकटक

निहारती रही। बाद मे मुझसे पूछा
मैं उसे छू लूं ?'

'हां, हां।' मैंने कहा।

पहले तो रीटा ने उसके माथे तथा गाल पर अगुली फेरी, फिर हाथ से उसे सहलाया। उसके होठो पर रीटा की उगली फिरी तो वह अलसाती हुई जागी और होठ फडफडाये। वह मेरा आँचल ढूढ रही थी।

रीटा आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोली 'देख मम्मी, यह हिल रही है।'

लक्ष्मी बहन टेबल पर बैठी यह देख कर मुस्करा रही थीं। आते समय वे चाय-नाश्ता ले आयी थी। मैं चाय-नाश्ता खाती रही। मानो उसे एक जीवित खिलौना मिल गया हो।

पर, प्रियगु ज्यादा समय तक यह सह न सकी, वह रोने लगी। तुरन्त मुझे उसे गोद मे लेना पडा। रीटा यह आश्चर्यविमूढ सी ताक रही थी। मैंने रीटा को अपने पास बैठाया।

प्रियगु आंचल मे मुह छिपाये दुग्ध-पान कर रही थी। रीटा मेरे आंचल को उठा कर इस क्रिया को देखने लगी तो प्रियगु ने दूध पीना बद कर दिया। उसके मुंह पर दूध की धार बही हुई दिख रही थी।

रीटा बोल उठी मम्मी मम्मी, दूध गिर रहा है।'

मैं शरम के मार मरी जा रही थी पर करती भी क्या ? इस पर लक्ष्मी बहन हँसने लगी 'तू जब छोटी थी तब तू भी इसी तरह दूध पीती थी।' व बोली। लजाते हुए रीटा ने अपन मुंह पर हाथ रख लिया।

बालक को आंचल मे स्तन-पान कराते समय की अनुभूति एक माता ही जान सकती है। शरीर मे ढंके हुए अंग उसके लिए खोल देने पडते हैं। बालक उस अग को दबा कर दूध पीता है। हम उसे वात्सल्य भाव से स्तन-पान कराती हैं।

रीटा ने धीरे से मेरे कान मे कहा 'मम्मी, मैं दूध पिऊँ ?'

'धत, पागल, तू तो अब बडी हो गयी है। तुम्हें अब पीना शोभा देता है ?' मैंने कहा।

लक्ष्मी बहन ने पूछा 'क्या कह रही है रीटा ? इसे दूध पीना है ?'

मैंने आँखों से हाँ कहा। उन्होंने रीटा को इशारे से ही कहा : 'चिपक जा न ! इसमे पूछती क्या है ?'

'तुम भी लक्ष्मी बहन उसे उकसा रही हो !'

लक्ष्मी, बहन ने हँसते-हँसते रीटा को समझाया

'यहाँ ऐसा नही करते, यहा तेरी मम्मी को शरम आती है। घर जाकर एक ओर तुम और दूसरी ओर प्रियगु।'

'मम्मी इसे घर ले चलेंगे ?' रीटा ने प्रश्न किया।

'हाँ, तेरी बहन है न ? यह तो अपने घर ही रहेगी न ! क्यों तुझे अच्छी नही लगती ?'

'मुझे तो ब हुत अच्छी लगती है।' उसने हाथ फैलाकर अभिनय की मुद्रा मे कहा।

'घर जाकर तू इसे खिलायेगी न ! या मारेगी ?' लक्ष्मी बहन ने पूछा। 'यह जब बडी होगी तब तेरा खाना खा जायेगी।'

'रीटा को इसका जवाब नहीं सूझ रहा था। लक्ष्मी बहन इस परेशानी को भाँप गयी। उन्होने धीरे से कहा

'जब यह बोलने लगेगी तब तुझे क्या कहेगी—जानती है ? तुझे बडी बहन कहेगी। तरी अंगुली पकडकर घूमेगी।

लगा रीटा के मन में भविष्य का कोई चित्र खिंच रहा था। वह मुह फाडे प्रसन्नता से उनकी बात सुन रही थी। फिर धीरे से बोली

'मैं इसे अपने साथ खिलाऊँगी, भोजन कराऊँगी, इसके लिए गुड्डा गुडिया बनाऊँगी और शैतानी करेगी, या मम्मी को परेशान करेगी तो मारूंगी भी।'

हम सब हँसने लगे। इसी बीच सुशीला आयी। इन्जेक्शन तैयार करके आयी थी। आते ही कहने लगी

'तुम्हें तो मौज है ! पलंग पर पडे-पडे भोजन मिल जाता है और इस बहाने छुट्टियाँ मिलती हैं सो अलग।'

'तो तू भी ऐसा बहाना खड़ा कर न !' मैंने मजाक में कहा।

'शादी किए बिना ऐसा सुख कैसे मिल सकता है ?'

'शादी के लिए किसी को फँसा ले—यदि ऐसा मानती हो कि शादी करने में सुख है।'

'शादीशुदा मानते हैं कि कुंवारेपन में मजा है और कुंवारों के लिए शादी में ही जीवन का सुख है !' बातों में रस लेते हुए लक्ष्मी बहन ने कहा।

सुशीला ने मजाक का मजा लेते हुए कहा 'तो ध्यान रखना न। तुम्हारे ध्यान में कोई हो तो। मुझे तो एक पुरुष से मतलब !' कहते-कहते उसने इन्जेक्शन लगा दिया। रीटा ने अपना मुँह फेर लिया था। जाते-जाते सुशीला ने रीटा से पूछा 'मैं अकेली हूँ, इस बेबी को मुझे दे दे न !'

रीटा ने कंधे मटकाते हुए मना किया। सुशीला बोली 'देखा न ! छोटी सी तो है पर चालाक कितनी है ?'

सुशीला चली गयी। अँधेरा घिर आया था इसलिए लक्ष्मी बहन जाने के लिए खड़ी हुई। घर जाने का नाम लिया तो रीटा रो पड़ी।

लक्ष्मी बहन ने कहा 'तू इस तरह रोयगी तो फिर तुझे यहाँ साथ नहीं लाऊँगी। फिर तू अपनी छोटी बहन को कैसे खिलायेगी ?'

रीटा मान गयी।

जाते समय मैंने लक्ष्मी बहन से पूछा 'रीटा के पप्पा क्या करते रहते हैं ?'

'काम धंधे मे लग गये हैं। घर भोजन करने भी नहीं आते। बहुत कहा पर सुनते ही नहीं। ऑफिस मे ही रहत हैं और वहीं सो भी जात हैं।'

लक्ष्मी बहन और रीटा घर गये। मन को थोड़ी शान्ति मिली कि किसी तरह लक्ष्मणराव काम-धंधे से तो लगा।

दूसरी ओर मन में चिंता भी बनी रहती थी कि कहीं अपनी जाति पर आ जाय और मेरू भाई को डुबा दे।

इस व्यापार का एक परिणाम यह आया था कि इसके कारण बेणू भाई और उनके परिवार के साथ निकट का संबंध स्थापित हो गया था। ऐसे अच्छे लोगों का साथ भाग्य से ही मिलता है।

प्रियगु किशोर की तरह ही गोरा रंग और नाक-नक्श लिए हुए थी। सुशीला ने पूछा भी था—'यह बेबी किस पर गयी है ?'

उस समय जवाब देते नहीं बन रहा था। वैसे उससे कहा तो यही कि 'मेरे जैसी है—और किसके जैसी होगी ?' और ऐसा कहकर बात टाल दी थी। पर सारी दुनिया की आँखों को धोखा कैसे दिया जा सकता है ?

और वे लोग जिन्होंने किशोर को मेरे घर आने-जाते देखा है उन्हें यह समझने मे देर नहीं लगेगी कि यह संतान किशोर की ही है—लक्ष्मण-राव की नहीं।

और यदि कोई लक्ष्मणराव से ही पूछ बैठे तो क्या हो ? मन मे एक भय समा जाता है।

उसी समय यह निणय कर लिया था कि घर बदल दूँगी जिससे नये पडोसियों को ऐसा सोचने का अवसर ही न मिले।

मैंने बेणू भाई से घर बदलने की बात कही। उन्होंने यह बात मान ली और बोले हमारी नीचे की मंजिल खाली हुई है, तुम्हारी इच्छा है तो घर बदल डालें।'

'मेरे घर आने के महीने बाद।'

'ठीक है, मैं मकान मालिक को एडवांस दे देता हूँ।'

'भले ही दे दें।' मैंने कहा।

दसवें दिन मैं घर गयी। रीटा की खुशी का कोइ ठिकाना न था। लक्ष्मी बहन मेरे घर ही थी। एक माह तक वे हमारे साथ ही रहीं। उनकी हाजिरी मे मैं किशोर को पत्र नहीं लिख पा रही थी। किशोर को मैंने लिख रखा था कि जब तक उसे मेरा पत्र न मिले वह मुझे पत्र न लिखे।

मैं जानती थी कि किशोर इस समय कितना अधीर हो रहा होगा।

इस समय तक उसने उस अमेरिकन लडकी से शादी नही की थी। घर बदलने के बाद ही मैं उसे पत्र लिख सकी थी। बाद में उसके एक के बाद एक तीन पत्र आये और एक पासल भी आया। उसने प्रियगु के लिए वस्त्र भेजे थे। प्रियगु नाम भी उसी ने रखा था। उसने प्रियगु के साथ खिंचा मेरा एक फोटो भी मंगवाया था।

इन दिनों उसने मुझे जो पत्र लिखे उनमे मेरे प्रति उसने जो भाव व्यक्त किए थे वैसे इसके पूर्व वह नही कर पाया था। उसके पत्र मुझे अमृत-पात्र से लगते थे।

शादी के बाद उसके पत्रो का आना कम हो गया। पत्रो मे अब वह बात भी नही रह गयी थी। यदि पुरुष यह मानते हो कि स्त्रियाँ सहज-स्फुरित प्रेम और औपचारिक प्रेम के बीच का अन्तर समझ नही पाती है तो वे भूल करते हैं। सहज प्रेम की ध्वनि सच्चे रुपये जैसी होती है और औपचारिक प्रेम खोटे सिक्के की तरह बोदा बजता है।

केशू भाई ने व्यापार की सारी बागडोर लक्ष्मणराव को सौंप दी थी। मुझे यह पसद नही था। पर मैं कुछ कह नही पा रही थी।

केशू भाई ने अपनी नौकरी चालू रखी थी। सुबह शाम मार्गदर्शन देने ही वे जाते थे। व्यापार ठीक चल रहा था। केशू भाई को जो आधा लाभ मिलता था उसमे मैं अपने लाभ का अदाज लगा लेती थी और हमेशा यही आशा रखती थी कि अब लक्ष्मणराव घर की, ससार की जवाब-दारी अपने सिर पर ले ले और मैं एक गृहिणी की तरह शान्ति से जीवन बिताऊँ, बालकों को पालू-पोषू और घर सम्हालूँ।

वर्षों बीत गये पर लक्ष्मणराव ने घर मे एक कौडी भी नही दी। मैंने माँगी भी नही। अब वह घर कभी-कभी ही आता और जब भी वह आता दुर्भाग्य से मैं बच्चों के साथ केशू भाई के घर ही बैठी होती।

केशू भाई रोजाना रात मजमा लगाकर बठते और बातो के अम्बार लगाते। हम रोजाना रात देर तक उनके घर बैठे उनकी बातों का आनन्द लेते। इसी समय लक्ष्मणराव आता। वह जब भी घर आता शराब पीकर

ही आता ।

एक रात, मब को सुनाते हुए उसने मुझसे कहा 'जब भी घर आता हूँ तू वहीं बैठी होती है, अब तूने उसका घर बसाया है ?'

'तुम घर पर न रहो तो आदमी दूसरे के साथ बैठे-बोले भी नहीं ? और यदि किसी के साथ बोल-बैठ ली तो इसका यह मतलब तो नहीं कि उसे अपना शौहर बना लिया ।' मैंने क्रोध मे लाल-पीली होते कहा।

'तो इसके बगैर ही उसका फोटो घर मे लगा रखा है ?' उसने फोटो की ओर हाथ बढाते हुए कहा ।

मैंने घर मे किशोर, उसकी अमेरिकन पत्नी और केशू भाई की फोटो लगा रखा था।

'मेरे घर मे मेरा ही फोटो नहीं और ऐरे-गैरो के फोटो लटक रहे है।'

'वह तो जिसके प्रति ममता होगी उसी के फोटो लटकेंगे घर मे। किसी के मन मे ममता पैदा हो ऐसा कुछ भी कभी किया है जिंदगी में ?' मेरी जीभ की लगाम छूट गयी। 'एक तो औरत की कमाई पर तागड-धिन्ना करना और ऊपर से उसका हिसाब मागना कि वहाँ क्यो गई थी और वहाँ क्यों बैठी थी ?'

'कौन सी तेरी कमाई ? खुद कमाता हूँ और खुद खर्च करता हूँ।'

'कहाँ से आयी तुम्हारी यह कमाई ? किसकी पूजी से यह धधा किया है ? पूजी तो मेरी ही है—मेरी। और अपने धधे में से कब एक पाई भी घर मे दी है ? मुझे तो नौकरी हो करनी पड़ती है न घर चलाने के लिए !'

'तो तू ऐसा मान रही है कि कमा कर मैं तुझे रुपये दूँ ?' वह हँसने लगा।

रीटा और प्रियगु मेरी गोद मे छिप कर सिसक रहे थे। मुझे उसकी बातों से ग्लानि हो रही थी। ऊपर केशू भाई के घर वे सब सुन रहे होंगे, इसका भी डर था।

मैंने कहा 'जरा धीरे बोलो, कोई सुनेगा। रात के दस बज रहे हैं इस समय।'

'मुझे किसी के बाप का डर है जो धीरे बोलू ?' वह और जोर स बोला। एक तो नशे मे था, दूसरे जोश मे आ गया था।

'यह घर मेरा है, मैं इसका मालिक हूँ, मेरी इच्छा म आयेगा वैसे बोलूंगा और सुन ले, मैं तुझे कभी एक पैसा भी नही दूँगा। खाऊँगा, पियूगा और मौज करूँगा। तू अपन रास्ते और मैं अपने रास्ते।'

आज उसने खूब पी ली थी। इतना बोलने से उसे हिचकियाँ आने लगी। तुरन्त उस उल्टी भी हो गयी।

सारा घर शराब की दुगन्ध से भर गया था। मेरी रुआटी काँप रही थी। थोडा पानी पीकर उसने अपनी बकवास पलग पर पडे-पडे चालू ही रखी।

साले केशू भाई की खबर ले लूगा। मेरी औरत को इस तरह रख छोडा है। मैं इसकी कीमत वसूल न करूँ तो कहना। मुझे धिक्कारना। मैंने पूना का पानी पिया है। मेरी आँख में धूल झोक कर मेरे पीछे देख लूँगा।'

लगता है उस दिन की सारी बात केशू भाई सुन गये थे। दूसरे दिन उन्होंने अपनी आँखों से मुझे सान्त्वना दी थी। मैंने ही उनसे कहा 'इस आदमी का ज्यादा विश्वास न करना। सावधानी से काम करना।'

'मैं भी यही सोचता हूँ। इस आदमी को पहचानने मे लगता है मैं थाप खा गया हूँ।'

'मैं भी इसी तरह धोखा खा गयी थी और इसका हाथ पकड लिया। देख रहे हैं न, इसने कैसी दशा मे हमे पटक दिया है ?'

'चिन्ता न करना। मैं सुख-दुख में तुम्हारे साथ रहूँगा।'

किसी की आँख मे मैंने ऐसा निर्मल भाव नहीं देखा है।

तब से केशू भाई मेरा साथ देते रह हैं। इन्दौर मे, यहाँ हमेशा मुझे उनका तथा उनके परिवार का सहारा रहा है।

परन्तु सहारा, सहारा है—आधार नही । आधार तो आदमी का अपना ही हो सकता है । केशू भाई मेरे सबसे अधिक निकट के शुभचिंतक हैं । वे सदा मुझ पर स्नेह वर्षा करते रहे हैं । ऐसे निर्मल स्नेह मे अधिकार या प्रतिलाभ की गुंजाइश नही होती । इसी से लगता रहता है कि मुझ पर उनका उपकार चढता जा रहा है । आदमी उपकार का बोझ सह नही पाता है ।

लक्ष्मणराव ने सबसे पहला काम घर बदलने का किया ।

● ●

और पड़ोसी बैठे हुए थे। केशू भाई मुझे पंखा कर रहे थे।

होश लौटते ही मैं बैठने का प्रयत्न करने लगी। केशू भाई ने मुझे उठने से रोकते हुए कहा 'उठो नहीं, लेटी रहो।'

मेरी आँखों से झाँक रहे अनेक प्रश्नों को केशू भाई के एक ही जवाब ने धराशायी कर दिया।

'वह मेरा ही नहीं तुम्हारा भी सब कुछ लेकर भाग गया है।'

केशू भाई की आवाज दर्द को छिपा नहीं सकी। मैंने देखा—उनकी आँखों में आँसू भर आये थे। ऐसी स्थिति में कौन किसको धीरज बँधावा? फिर भी केशू भाई मेरे पास बैठ कर मुझे आश्वासन दे रहे थे।

मन केवल यही रट रहा था 'मेरी रीटा, मेरी प्रियंगु।'

और सब ले गया सो तो ठीक-मेरी बच्चियों को तो छोड़ जाता!

उसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया था। मेरे लिए खड़े रहने की भी जगह नहीं छोड़ी थी। केशू भाई कुछ भी कहें पर मैं शान्त कैसे रह सकती हूँ?

अन्दर तूफान मचा था। मैंने दीवारों से सिर फोड़ा। मेरे भरे-घर में केवल बाकी थी मेरी एक सन्दूक और दो फोटो।

सभी कह रहे थे यह आदमी है या राक्षस? बच्चों को माँ से छुड़ाया! सब बटोर कर ले गया?'

'मैंने सब कुछ इकट्ठा किया था—पसीना बहा-बहा कर।' कहते मेरा गला रुँध गया।

'तुम्हारे इस दुःख को देख कर मैं अपना क्या विचार करूँ?' केशू भाई ने अपने मन की बात कही। 'मेरे नाम से बाजार में उसे जो कुछ मिला, लेकर गया है। मेरी दशा तो दीवाला निकालने की हो गयी है। मेरे नाम पर उसने इतना कर्ज लिया है जिसे मेरा जैसा नौकरीपेशा वाला सारे जीवन में चुका नहीं सकता।'

कहते समय केशू भाई का मुँह दयाजनक हो आया था। मैं सहज ही बोल पड़ी 'तुम्हारा कर्ज तो मैं कमा कर चुका दूँगी, तुम चिन्ता न

करो। पर मेरा जो कुछ चला गया है उसे कौन पूरा कर सकता है? मेरी रीटा और मेरी प्रियगु '

इसका उत्तर किसी के पास नहीं था। किसी को पता नहीं था कि लक्ष्मणराव कहा गया है? केशू भाई उसे ढूढते अचानक ही घर आ गये थे। यहाँ आकर उन्होंने मुझे इस दशा मे देखा। इसके बाद ही उन्होंने घर का ताला तोडा।

ज्यो-ज्यो समय बीतता गया—लोग चले गये। अत मे केशू भाइ ने कहा 'अब इस सूने घर में रह कर क्या करोगी? चलो मेरे घर।'

मैं क्या उत्तर दे सकती थी? उन्होंने ही कहा 'तुम्हारी तबियत भी ठीक नहीं है जो अकेले रह सको और इस दु ख के समय हमे एक-दूसरे का सहारा भी रहेगा।'

मेरा मन भी यही कह रहा था। किसी के साथ के अभाव मे इस आघात को कैसे सहा जा सकेगा?

उन्होंने कहा 'और अकेले आदमी के लिए इतना किराया देना ठीक नहीं।'

केशू भाई की यह बात मेरे गले उतर गयी। अब किसी भी तरह पैसे बचाने थे। केशूभाई का कर्ज चुकाना था।

किसी तरह टूटे मन-तन को लेकर खडी हुई, केशूभाई के साथ जाने के लिए। कोई तागा ले आया था।

अपनी सदूक और दो फोटो लिए मैं अपने सूने घर को निहारती रही। मानो वह घर कोई पिंजरा हो और मैं सरकस का जानवर होऊँ। सचालन किसके हाथो था?

मेरे आचल से किसी ने अधकार बाँध दिया है। हमेशा अधकार की दिशा मे ही पैर बढ़ाने पडत हैं। मेरे आज और कल मे कोई अतर नहीं है। उस समय भी भविष्य अधकारपूण था, आज भी है।

केशू भाई ने सहारा देकर मुझे तागे मे बैठाया। पास खडे लोगो की दृष्टि मे मेरे प्रति दया झांक रही थी। मैं बेचारी और दयापात्र बन

गयी थी। उनकी दया सिर-आँखो लेकर मैं चल पड़ी।

केशूभाई के घर का सुख और समृद्धि उजाड़ने वाली मैं ही थी। मेरे ही कारण इस घर पर विपत्ति छायी थी इसलिए मैं यही सोच रही थी कि उनके घर के लोग मुझे किस दृष्टि से देखेंगे ! परन्तु लक्ष्मी बहन ने मुझे ऐसा अनुभव नही होने दिया। उनके मन मे वडवाग्नि जल रही थी पर वे समुद्र ही बनी रहीं। मुझे हृदय से लगाकर शात किया और धीरज बँधाई।

दूसरे दिन केशू भाई के मना करने पर भी मैं नौकरी पर गयी। डॉक्टर से सब कुछ बताते हुए कहा 'इस कारण मेरा मस्तिष्क शून्य हो गया है। मेहरबानी करके मुझे कोई मामूली काम दें।'

डॉक्टर मेरी बात से सहमत हुए और उन्होंने मुझे साधारण काम दिया। मैं कुछ कर नही पाती थी। मेरा रक्त किसी ने चूस लिया था।

रह-रह कर दवाखाने की गेलरी मे खडी रहती और आकाश ताका करती।

मेरी रीटा और प्रियगु कहाँ होगी ? क्या करती होंगी ? जिसकी हाजिरी उन्हे मुरझा देती थी अब वे उसी के साथ कैसे रह पाती होगी ? मेरा क्रोध कही उन लडकियो पर तो नही उतारता होगा ? बहुत से प्रश्न उफनते। इन्हे मैं मन से निकाल भी कैसे सकती थी ?

कौन माँ अपने मन से अपनी संतान की चिंता दूर कर सकती है ? संसार के नाम पर अब मेरे लिए शून्य ही बाकी रह गया था।

मैं इस द्विधा मे थी कि किशोर को इसका समाचार दूँ या नही ? उसे कैसे सूचित करूँ कि मैं तेरी प्रिय संतान को सहेज कर नही रख पायी !

किशोर को मैंने अपना नया ठिकाना लिख भेजा है। साथ ही यह भी लिखा है कि पत्र वह हॉस्पिटल के पते पर ही भेजे।

मुझे किशोर को इन हकीकतों से वाकिफ करना चाहिए था पर मैं उसे कुछ भी नही लिख पायी।

मन में एक और भी आशंका थी। अवश्य ही लक्ष्मणराव ने किशोर

को पत्र लिखा होगा जिसमे उसने इस हकीकत से उसे वाकिफ किया होगा कि अब प्रियगु उसके कब्जे म है और उसे उसके भरण-पोषण के लिए खर्च भेजना चाहिए। पर किशोर के किसी पत्र से ऐसा संकेत नही मिला। हो सकता है लक्ष्मणराव न उसे प्रियगु को लेकर धमकी भी दी हो—कि इस विषय मे वह मुझे कुछ भी न लिखे, कि जिससे मुझे उसका पता-ठिकाना लग जाय और मैं अपनी बच्चियो को वापस पा सकू।

ये सारी अनिश्चितताएँ मुझे परेशान किए हुए थी। मेरा मन अस्थिर बन गया था। डॉक्टर मुझे महीने मे दो एक बार तो उलाहना देता ही।

जिस दिन मैंने अपना पहला वेतन केशू भाई के हाथ में रखा—उस भले आदमी की आँखें भर आयी थी।

'तुमसे पैसा लेना मुझे अच्छा नही लगता पर क्या करूँ? कर्ज इतना अधिक है कि '

उस समय मुझे पिताजी की याद आयी। यदि प्रियगु मेरे पास होती और वे इस समय जीवित होते तो इतने रुपये तो मैं अवश्य उनसे ले आती।

पैसे की बडी तंगी थी। लेनदार रोजाना घर आते और लडते-झगडते। उनकी हर तरह की बातें मुझे लक्ष्मी बहन को तथा बच्चो को सुननी पडती थी। केशू भाई तो इससे बच ही कैसे सकते थे।

'हम तो तुम्हे जानते हैं तुम्हारी कपनी को जानते हैं, तुम्हारा भागीदार मर जाय या भाग जाय इससे हमें क्या लेना-देना।' कुछ कहते। कुछ लेनदारो की भाषा तो सुनी भी नही जाती थी।

केशू भाई ने पुलिस चौकी मे रिपोर्ट लिखाई थी पर इतने बड देश में पुलिस किसी एक आदमी को ढूँढे भी कहाँ? मैंने कहा था कि वह पूना के आसपास कही होगा।

शुरुआत मे तो केशू भाई अक्सर पुलिस चौकी का चक्कर लगाया करते थे पर यह सुनकर कि यदि कुछ पता चलेगा तो वे स्वय ही उन्हें सूचित कर देंगे और उन्हें बेकार चक्कर लगाने की जरूरत नही है,

उन्होंने पुलिस चौकी जाना बद कर दिया। अब उन्हें आशा भी नही रह गयी थी।

अब लक्ष्मी बहन और उनके लडके भी समय बचाकर कुछ काम करते। किसी प्रेस से थोडा काम मिल जाता था। मै भी खाली समय में कुछ काम करने लगी थी। दिन कब बीत जाता और रात कब समाप्त हो जाती किसी को खबर भी नही पडती थी। काम से सारा शरीर दुखता था।

कभी-कभी रात नीद उखड जाती और भयानक दृश्य मुझे डराते। 'मेरी रीटा, मेरी प्रियगु'—शब्द आँसुओ के सारथी बन कर आते और फिर सारी रात तकिया भीगा करता।

रात स्वप्न आते। स्वप्न मे दीखता कि लक्ष्मणराव रीटा और प्रियगु को कोडे से पीट रहा है। दीखता कि कसाई की तरह वह मेरी बेटियो को काट रहा है और उनके अंगों को बेच रहा है। उसके हाथ मे रीटा और प्रियंगु की आँखें होतीं जिन्हे वह चिल्ला-चिल्ला कर बच रहा होता—

'किसी को आँखें लेनी है आँखें ?'

मैं खिडकी से झाँक कर देखती तो उसके हाथ में मेरी बेटियो की आँखें होतीं। मैं दौडती हुई नीचे जाती तो वह मेरा हाथ पकड लेता और कहता मैं तुम्ही को ढूँढ़ रहा था। अब मैं तेरी आँखें भी बेचूँगा।' ऐसा कह वह छुरी दिखाता।

जब भी ऐसा स्वप्न देखती हूँ, चीख कर जाग पडती हूँ। मेरी चीख सुन कर सब जाग जाते हैं। सभी मेरी स्थिति को जानते हैं। कोई कुछ बोलता नही पर उनकी आँखें बोले बगैर नहीं रहतीं।

मेरी सूनी सेज हमेशा मुझे डराती है। मैं हमेशा रीटा को अपन ही पास सुलाती थी। बाद मे तो दोनो लडकियों को अपने पास सुलाती था। अब मेरी दोनों बगलें सूनी हो गयी थी। हिम वर्षा से फलों से लदी डालियाँ उजाड़ बन गयी हों—ऐसी दशा हो गयी थी।

एक स्वप्न बारम्बार आता है। पहले तो रात में ही यह स्वप्न आता

पर अब तो दिन में भी वैसा होता दीखता है।

किशोर प्लेन से उतर रहा है। मैं उसके सामने खड़ी हूँ। वह आनंदित दीख रहा है। वह मुझे वक्ष से चिपका लेता है और फिर कान में पूछता है—'प्रियगु कहाँ है?'

मैं मुँह ढँक कर रोते-रोते सब बताती हूँ। वह मुझे धीरज देते हुए कहता है 'तुम चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें दूसरी सतान दूँगा।' मैं खुश हो जाती हूँ।

लगता है मैं हास्पिटल में हूँ। प्रसूति की वेदना सह रही हूँ। मैं एक बालक को जन्म देती हूँ। सब मुझे बधाई देते हैं।

'राजकुमार जैसा बालक है। सुशीला कहती है। मैं आँखें मटकाकर खुशी व्यक्त करती हूँ और स्वप्न की अवास्तविकता खुल जाती है—मैं टूट जाती हूँ।

इन्हीं दिनों मैंने ट्रान्क्वीलाइजर गोलियाँ लेना शुरू किया था। मन से विचारों का बोझ कम ही नहीं होता। दिनभर की मजूरी ने मेरे शरीर को तोड दिया है। मन का तो कोई ठिकाना ही नहीं है।

लक्ष्मणराव को ढूँढने हम पूना भी गये। वहाँ एक सप्ताह तक रुके भी। इधर-उधर भटके। पुलिस में भी सहायता ली। ऐसे प्रयत्नों से खोये आदमी को ढूढ़ा जा सकता है छिपे आदमी को नहीं। हार थक कर हम वापस लौटे।

कोई रास्ता नहीं सूझता। दिन मानों फिसलन भरे पहाड़ हैं। हम चढ़ते रहते हैं पर फिसल-फिसल कर पीछे ही रह जाते हैं।

रात में हम सब मिलकर हिसाब करते हैं, कितने रुपये कर्ज के चुकाये जा चुके हैं और कितने अभी बाकी हैं?

हमने यह निश्चय कर लिया है कि कर्ज चुका कर किसी दूसरे शहर में रहने चल जायेंगे।

× × ×

मैंने यह निश्चित कर लिया है कि केशुभाई का कर्ज चुकते ही मैं

अलग रह सकूँगी।

पूर्ज पूरा आया तो मैंने अन्य शहरों के विज्ञापन देखना शुरू कर दिया था। बुलावे आते पर सब तुरन्त नौकरी पर हाजिर होने के लिए आग्रह करते पर मुझे तो अभी देर थी।

इन्हीं दिनों पता लगा कि यहाँ के एक आश्रम-संचालित हॉस्पिटल में एक नर्स की जरूरत है। आश्रम में रहने तथा भोजन आदि की कोई तकलीफ नहीं रहेगी यह सोच मैंने उसी दिन घर जाकर प्रार्थना-पत्र भेज दिया। मैंने यह भी लिखा था कि मेरा वतन सम्बन्धी कोई आग्रह नहीं है। मेरी ओर से शर्त सिर्फ इतनी ही थी कि मैं तीन-चार महीने बाद ही हॉस्पिटल में हाजिर हो सकूँगी।

आश्रम संचालक ने मेरी अर्जी मंजूर रखते हुए मुझे मिलनेवाली सारी सुविधाएँ मुझे लिख भेजीं।

यह सारा पत्र व्यवहार मैंने हॉस्पिटल के पते से ही किया था, इस कारण केनूभाई को इस विषय में कुछ भी मालूम नहीं था।

आश्रम में मेरी नौकरी का निश्चय हो जाने के बाद केनू भाई से सारी बात बताना जरूरी समझ एक दिन मैंने उनसे सब कुछ कहा। मेरी बात सुनते ही वे उदास हो गये।

'इसका मतलब तो यह हुआ कि मैंने कर्ज चुकाने के लिए तुम्हारा वेतन लेने के हेतु से ही तुम्हें अपने घर आश्रय दिया था ?'

'आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं है। मैं आपके ऊपर बोझ बन कर कब तक रह सकती हूँ ?' मैंने कहा।

'तुम हमारे लिए बोझ नहीं हो, हमारी शुभचिंतक हो।'

'ठीक है पर, हर पक्षी अपने घोसले में ही अच्छा लगता है।'

'मेरे घर को ही अपना घर मान लो।' केनूभाई ने कहा।

'मानना और होना अलग-अलग बातें हैं केनू भाई। आपका कुटम्ब-परिवार आपका नीड है। कुदरत ने मेरा नीड नष्ट कर दिया है तो मैं फिर से नया बनाऊँगी। सारी जिन्दगी मैं इस तरह नहीं रह सकती। कल

को तुम्हारे बच्चे बडे होंगे तब वे मेरे विषय मे क्या सोचेंगे ? दूसरे लोगों को भी तरह-तरह की बातें मिल जायेगी कहने के लिए। ऐसी बातें हो इसके पहले ही मुझे अपना ठिकाना ढूढ लेना चाहिए।'

फिर तो केशू भाई ने भी इसी शहर मे काम ढूढ लिया और एक दिन हम सब इन्दौर को अन्तिम सलाम कर यहा आ बसे।

मैं आश्रम मे रहने लगी और केशू भाई किराये का मकान लेकर रहने लगे।

केशू भाई को तो नयी जगह अनुकूल आ गयी है पर मेरा मन तो यहाँ भी बेचैन हो रहता है। धीरे-धीरे आश्रम के हॉस्पिटल का काम कठिन बनता जा रहा है। चौबीसो घंटे खड़े पैर लोगो की सेवा करना मेरे जैसी पगु कैसे कर सकती है ?

मुझे लगता है कि रीटा और प्रियगु ही मेरे दो पैर थी। ढेरो दवा खाती हूँ पर कोई फर्क नहीं पडता डॉक्टर ने भी मुझसे कहा 'तुम्हारी दशा देखते हुए तुम्हें किसी रोगी की जिंदगी कैसे सौंपी जा सकती है ?'

नर्स के हाथ मे रोगी की जिंदगी होती है। नर्स स्वय रोगी हो तो काम कैसे चल सकता है ? स्वय ही इस काम को छोड दूँ अन्यथा छोड़ने पर मजबूर किया जायगा। तो फिर, मैं करूँगी क्या ?

केशू भाई दो-चार दिन मे मेरा हाल जानने आते थे। उन्होंने हिम्मत करके मुझसे सवीश मे सहवास की बात कही और कुछ देर विचार कर मैंने डूबते को तिनके का सहारा मान उनके प्रस्ताव को मान लिया।

कटे पंख पक्षी ने आकाश मे उडना मान लिया।

● ●

बीस

शाम देर से सतीश घर आया। वह घर लौटता है तब काफी थका हुआ होता है। बावन वर्ष की जिन्दगी ने उसके शरीर को निचोड लिया है। सचमुच उसे किसी स्त्री के साहचर्य की जरूरत थी। यह जानते हुए भी मैं उसे यह दे नही पा रही थी।

यहाँ आयी हूँ तब से सोचती रहती हूँ—क्या मैं वैसी वेश्या तो नही बन गयी हूँ जैसी लक्ष्मणराव मुझे कहा करता था ?

मैं अपने शरीर के लिए कुछ भी नही चाहती और इसीलिए मैंन सतीश के प्रति अपन स्नेह को सीमित रखा है। सतीश के हाथ से बेग लेकर अंदर रखी, उसे पानी पिलाया। सतीश पहले तो कुर्सी पर बैठा पर गर्मी के कारण उठ कर उसन पखा चालू कर दिया और कपडे बदलने लगा।

उसी समय उसकी दृष्टि मेरी स-दूक पर पडी थी। वह रसोई घर मे आया और मेरे पास बैठता हुआ बोला 'सन्दूक मँगा ली है ?'

मैंने सिर हिला कर हामी भरी।'

'कौन केशू भाई ले आये ?' उसने दूसरा प्रश्न किया। मैंन फिर हाँ कहा पर इस समय मैंन उसकी ओर देखा। सतीश अतिशय प्रसन्न दीखा। मेरे कानो के पास मुँह लाकर उसन पूछा 'तुम्हें मुझ पर विश्वास बैठन लगा है न ?'

मैंन फिर हाँ कहा। उसन धीरे से मेरा हाथ पकड लिया और दबाया। मैं उसके हाथ का कप समझ सकती थी।

खिडकी के रास्ते एक चिडिया युगल कमरे मे आये। शायद रैन बसेरा करन आये होंगे। उनके पंखो की फडफडाहट कमर म गूज रही थी। रसोई में लटक रहे बिजली के बल्ब के तार पर वे बैठे। थोडी धूल उडी।

फिर वहाँ से उड़ कर वे युगल ताक पर जा बैठे। सतीश भी मेरे साथ-साथ यह देख रहा था।

उसने हाथ छोड़े बगैर ही पूछा सन्दूक मे क्या है ? चलो, सब निकाल कर देखेंगे ?'

क्या कहती सतीश से ? उसके सामने सन्दूक कैसे खोलती ? उसमे सहेज कर रखे हुए अन्य पुरुष के सस्मरण कौन पुरुष सह पायेगा ?

'मैं सोचती हूँ तुम इसे न देखो तो अच्छा। उसमे मेरी बीती जिन्दगी पड़ी हुई है—जिसे याद करने का कोई अर्थ नही है। उसमें का कुछ भी देख कर या जान कर तुम प्रसन्न नही होओगे।' मैंने कहा।

तुरन्त मुझे लगा कि ऐसा कह कर मैंने सतीश के आनन्द को चूस लिया है। वह उदास हो गया।

'फिर इसे यहाँ मँगाने की जरूरत ही क्या थी ? जिसे याद करने का कोई अर्थ नही, उसे याद करने के लिए ?'

उसका प्रश्न उचित ही था।

'यही तो आदमी की कमजोरी है। पर इससे तुम्हे बुरा लगा है ? मुझे माफ नही कर दोगे ? तुम्हे देखना ही हो तो सन्दूक खोल दूँ।'

'नही नही। तुम्हे अच्छा न लगे ऐसा मुझे कुछ भी नही करना है। मैं तो इसलिए कह रहा था कि सन्दूक मे सहेज कर रखी चीजो को दिखा कर तुम मुझे अपनी बीती जिन्दगी का भी साझीदार बना लोगी।'

'जिसकी बीती जिन्दगी अच्छी हो, प्रिय हो वह उसे कहता हुआ फिर सकता है। मेरे जैसी स्त्री का भूतकाल क्या हो सकता है ? मेरे आकाश मे बादल कभी बिखरे नहीं। उन्ही घनघोर काले बादलो को मैंने सहेज रखा है इस सन्दूक मे। मेरा प्रेम कलकित है जीवन कलकित है और मृत्यु भी कलकित ही होगी। मन मे इसी की चिन्ता है। चाहती हूँ कि ऐसा न हो। इसीलिए तो चालीस वर्ष की उम्र मे भी तुम्हारे घर आयी हूँ।'

'मेरी जिन्दगी अनत रण म सफर करने जैसी है। ऊपर अग्नि, नीचे

अग्नि और सामने भी तप्त रेत की आँधी। कभी रणद्वीप मिल जाने पर श्वास ले लेती हूँ। फिर आगे की यात्रा शुरू हो जाती है। अब सिर्फ यही इच्छा है कि तुम जैसे की छाया मे मुझे आधार मिल जाय और मेरी मौत सुधर जाय।'

'छोडो, मन में ऐसी बातें नही लाते। मैं तुम्हारा जितना भी बन सकेगा ध्यान रखूगा।'

यह कहते हुए सतीश ने वातावरण हल्का करने का प्रयत्न किया।

मुझे यह लगे बिना न रहा कि उसकी बात निष्कपट थी।

अब लगता है कि मैंने यदि किशोर और केशू भाई के फोटो न लगाये होते तो अच्छा था। सतीश के मन के किसी कोने मे ये पैठ गये हैं। मैं निगाह नीची रखती हूँ और रह-रह कर निगाह उठा कर उसके मन के भाव को पढ़ने का प्रयत्न करती हूँ जहाँ मुझे प्रश्न तैरते हुए दिखाई देते हैं।

वह पूछता है 'यह तो केशू भाई का फोटो है और ये दूसरे कौन हैं?'

'किशोर का फोटो है।' और ओठो पर शब्द आते हैं—'मेरी प्रियगु का पिता।' पर मैं इन शब्दों को पी जाती हूँ। कुछ दूसरी बात कहती हूँ जो सच तो है पर पूरी नही।

'किशोर इस समय अमेरिका मे है। उसके साथ में उसकी अमेरिकन पत्नी है। काफी वर्ष पहले वह इन्दौर में मेरा पेशेन्ट था। उसी समय हमारा परिचय बढ़ा।'

न मालूम सतीश को क्या सूझा कि उसने तुरन्त यह प्रस्ताव किया 'हम भी फोटो खिचवायेंगे?'

उसकी आँखो मे चमक आ गयी थी। यह आदमी भावुकता मे ही जी रहा था और मैं उसके साथ कदम मिला कर चल नहीं पा रही थी। उसे निभा नहीं पा रही थी।

'मुझे फोटो खिचाना पसन्द नहीं है।' मैंने कहा। 'और इस उम्र म

मेरा फोटो कैसा बेहूदा खिंचेगा ? जो भी देखेगा हम पर हँसेगा, फोटो-ग्राफर भी हँसेगा।'

'ऐसा तो कुछ भी नही है। क्या बडी उम्र के लोग फोटो खिंचवाते ही नही होंगे ? वैसे तो मेरी उम्र तुमसे भी ज्यादा है।'

मैंने सिर्फ उसे राजी करने के लिए कहा 'पर तुम्हारी उम्र इतनी नही लगती। तुम तो जवान आदमी से दीखते हो और मैं कैसी बूढी सी लगती हूँ।'

'बहाना बताए बिना कह दो न कि मैं तुम्हारे साथ फोटो खिंचवाना नही चाहती।' वह कुछ चिढ़ कर बोला और उठ कर जाने लगा।

मैंने उसका हाथ पकड कर बैठाया। और कहा

'छोटे बालक की तरह चिढ क्यों जाते हो ? तुम्हारे साथ फोटो खिंचवाने से मेरा क्या चला जायगा ? यह तो इसलिए कहा कि हमारी उम्र में लोगों को फोटो खिंचवाना अच्छा नही लगता। यदि तुम कहते ही हो तो मैं झटपट कपडे पहन कर तैयार हो जाऊँ।'

मैंने उसे खुश करने के लिए ही मुह पर प्रसन्नता ओढ ली थी। उसने भी मुझे मनाते हुए ही कहा

'फोटो नही खिंचवाना है पर तुम तैयार हो जाओ। तुम सज-धज कर इतनी सुन्दर लगती हो '

'कितना सुन्दर लगती हूँ ?'

'सतीश जवाब ढूढ रहा था। उसने नादानी से कह दिया 'बहुत सुन्दर लगती हो।'

मैं हँस पडी और हँसते-हँसते ही पूछा 'फिर यह चाय और रसोई कौन बनायेगा ?'

'ऐसा करो, चाय बना कर तैयार हो जाओ। आज हम होटल मे खा लेंगे।'

'व्यय ही खर्च होगा।' मैंने इस ओर उसका ध्यान खींचा।

'भले ही खर्च हो।' शहादत की अदा से वह बोला।

चाय पीकर मैं तैयार होने लगी। पास के कमरे मे जाकर मैं कपडे बदलने लगी कि मेरी नजर अन्दर के कमरे मे गयी।

सतीश मेरे अगो को निहार रहा था। मेरे अर्ध-नग्न शरीर को वह पी रहा था। चालीस वर्षीया के शरीर मे ऐसा देखने जैसा क्या हो सकता है? पर सतीश विह्वल-सा भान खोकर मुझे देख रहा था। लगा मेरे शरीर को देखने के लिए ही उसने मुझसे तैयार होने के लिए कहा था।

इस भाव के साथ मैं उसके सामने आ खडी हुई कि यदि उसे देखना ही है तो भले देखे। मैं उसके सामने कपडे बदलती रही और बातें करती रही

'सुमन बहन हमारी सतान के विषय में पूछ रही थी।'

'क्या जवाब दिया उन्ह?'

'क्या देती जवाब, हमारे लडके ही कहाँ हैं?'

'तुम्हारे लडके तो हैं न?'

'कैसे मना करूँ? तुम्हे हुए थ बच्चे?'

सवाल पूछने के बाद मुझे लगा कि मैंने उससे पौरुष सम्बन्धी प्रश्न कर दिया था। वह कुछ सकोच मे आ गया था। नीचे देखता हुआ जवाब ढूढ रहा था पर ढूढ नही पाया।

'सुमन बहन मुझसे क्युरेटिग करवाने के लिए कह रही थी। उस बेचारी को क्या मालूम कि मुझे दो बच्चे हैं।' मैं हँसने लगी।

'किस उम्र तक स्त्री को सतान हो सकती है? तुम नर्स हो इससे यह पूछ रहा हूँ।' संकोच करते हुए उसने पूछा।

'लगभग पैंतालीस वर्ष तक। इसके दो-चार वर्ष बाद भी सतान होती हैं पर अपवाद रूप। हजारो मे एकाध केस होते हैं ऐसे।'

'तुम तो अभी चालीस की ही हो न?' सतीश ने पूछा।

'हाँ, क्यो?'

'योही—जानने के लिए ही।' मुझे लगा वह सही जवाब टाल

रहा था।

मुझे लगा कि उसके मन में कहीं यह लालसा जरूर है कि मुझसे उसे सतान की प्राप्ति हो। वह गलत कह रहा था कि उसे मुझसे कोई अपेक्षा नहीं है। उसे मेरे माध्यम से अपने पौरुष की प्रतीति करनी थी। वह इसी इन्तजार में था कि कब मैं उसे अपना शरीर सौंपूँ। कुछ भी बोले बिना, वगैर किसी जल्दबाजी के। निश्चित रूप से उसकी यह धारणा थी कि मैं उसकी अपेक्षा पूरी करूँगी।

नहीं जानती कि मैं उसे अपने शरीर को सौंपे बिना कब तक यहाँ रह सकूँगी? उसका आधार पाने के लिए मेरे पास इसके सिवा और था भी क्या? उस शरीर के अलावा और कुछ शायद चाहिए भी नहीं था। मैं और सब कुछ देकर भी उसकी मनीषा पूरी नहीं कर सकती थी। वह कब तक मेरा इन्तजार कर सकता है? और जब वह इन्तजार करते थक जायगा तब क्या होगा? क्या मुझे फिर आश्रम में रहने जाना पड़ेगा?

उसने फिर शरमाते-शरमाते पूछा 'और पुरुष को किस उम्र तक बच्चे हो सकते हैं?'

'इसका आधार तो पुरुष की तन्दुरुस्ती पर है। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ स्वस्थ पुरुष को सत्तर वर्ष की उम्र में भी बच्चे हुए हैं। वैसे मेरे अनुभव में ऐसा एक भी केस नहीं है। पर नब्बे और सौ वर्ष की उम्र में भी पुरुष को पुत्र-प्राप्ति की बातें लोग करते हैं।' मैंने कहा।

'पर वे सब...' 'सब' पर भार देते हुए उसने कहा 'झूठ थोड़े ही बोलते होंगे। मेरे एक पड़ोसी कह रहे थे उनके गाँव के एक पचहत्तर वर्ष के बूढ़े की शादी की गयी। वैसे पचहत्तर वर्ष के आदमी में क्या शक्ति होगी पर, उस नयी पत्नी ने घर में भैंस रखी और अपने बूढ़े पति को दूध मिश्री पिला कर ऐसा तन्दुरुस्त बनाया कि उसे तीन बच्चे हुए। नब्बे वर्ष की उम्र में जब वे मरे तब अपने पीछे फलता-फूलता बगीचा छोड़ गये थे।' सतीश एक ही श्वास में कह गया।

लगता था सतीश ने ऐसी अनेक बातें अपने मन में सजा रखी थीं।

इस बात के कहते मानो उसके मुह मे पानी भर आया था। मैंने सोचा इस विषय मे उससे कुछ कहूँ पर उस समय मैंने उससे इतना ही कहा

'इन बातो मे कितना तथ्य है यह तो ईश्वर ही जानते हैं पर सुनी मैंने भी हैं। ऐसा हो भी सकता है।'

मुझे सहमत जान सतीश प्रसन्न हुआ।

मैं समझ सकती थी कि सतीश अपने आपको उस बूढे के स्थान पर रख रहा होगा और मुझे उस नयी पत्नी की तरह उसे खिलाना-पिलाना चाहिए—ऐसा उसका इशारा था।

इच्छा तो हुई कि पूछू 'तुम्हे भी दूध-मिश्री पीना है ?' पर इसका अर्थ तो यह होता कि मैं उस नव विवाहिता के स्थान को स्वीकार कर रही हूँ—उसके बालकों की माता बनने का भार उठाने की सम्मति दे रही हूँ।

यह मुझसे हो नही सकता था। मैं चुप ही रही। कुछ देर बाद मैंने उसके सामने देखा तो उसकी आखें मानो मेरे देह का मथन कर उसमे से संतान पैदा कर रही थी। वह लालसा-भरी दृष्टि से मुझे देख रहा था। मैंने उसे रोका-टोका नही।

फिर धीरे से उसे उसकी भाव विह्वलता से जगाया। मैंने उससे कहा 'चलो झटपट तैयार हो जाओ। मैं कब की तैयार हो गयी हूँ। अब तुम्ही देर कर रहे हो।'

उसने कपड़े बदले, तैयार हुआ पर उसका मन कही और ही था। वह मानो मेरी देह की गहराई में पैठता चला आ रहा था। अब उसकी आँखें मुझे गड रही थी। अब मुझसे उसकी दृष्ट सही नही जा रही थी।

हम बाहर गये तब भी वह मानो मेरे पीछे-पीछे घिसट ही रहा था।

एक मँहगे होटल में हमने भोजन किया। होटल मे हलका प्रकाश हो रहा था। भोजन करते-करते उसने अपना हाथ मेरी जाघों पर रखा और उसे जोर से दबाया। उसे जो कुछ कहना था, कह नही पा रहा था—वह सब उसके हाथ की अँगुलियाँ कह रही थी। इस भाषा

को मैं न समझूँ-इतनी नादान मैं नहीं थी पर मैं उसकी शरण नहीं जा सकती थी।

हम भोजन करके बाहर आये। उस समय वह प्रसन्न दीख रहा था। शायद इसलिए कि मैंने उसके हाथ को वहाँ से हटाया नहीं था।

अब हम रास्ते पर आ गये थे। वह हाथ पकड़ कर मुझे रास्ता पार कराता था।

देर गये रात हम घर पहुँचे। कपड़े बदलते समय मैंने फिर से उसकी निगाहों को पढ़ा। वही लालसा भरी दृष्टि मुझे चारों ओर से बींध रही थी।

बत्ती बुझा कर लेटी तो थोड़ी देर बाद मैंने उसके हाथ को हटा दिया 'सतीश, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।' मैंने कहा।

'हमें संतान हो यह तुम्हें पसंद नहीं है ?' उसकी आवाज में आजिजी थी।

'अभी यह सब विचारने जितना मेरा मन स्वस्थ नहीं है। मुझ पर दया करो। मैं ऐसा कोई काम नहीं कर सकती जिससे मेरे मन को उद्वेग हो और बाद में मुझे पछताना पड़े। यह सब मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था।'

'मेरे साथ से तुम्हें कभी भी पछताना नहीं पड़ेगा। मैं तुम्हारा पूरा ख्याल रखूंगा।'

उसने फिर मुझे थामने के लिए अपना हाथ फैलाया। मैंने कठोर शब्दों में कहा

'यदि तुम ऐसा करोगे तो हम साथ नहीं रह सकेंगे। मुझे चला जाना पड़ेगा। मैंने अपने शरीर के लिए तुम्हारा सहवास नहीं चाहा है। मुझे इतनी हीन मत बनाओ। मुझे माफ करो।'

सतीश मुझसे दूर जा कर सो गया।

मैं जानती हूँ कि सतीश के मन पर इसका कैसा असर हुई होगा पर यदि मैं उसे शरीर सौंप दूँ तो इसका अर्थ होगा—मैंने शरीर बेचा है।

शरीर के लिए यदि मैं किसी की शरण चाहती हूँ तो मैं एक वेश्या ही बन जाती हूँ।

सारी दुनिया के सामने हलका बन कर रहा जा सकता है। पर अपनी ही निगाहों में गिर कर जीने का आधार ही नहीं रह पाता।

आदमी को जीने के लिए सिर पर छप्पर हो, कुटुम्ब-परिवार हो, इतना ही जीवन का आधार नहीं है, आत्मगौरव भी जरूरी है उसके लिए।

● ●

इक्कीस

केशू भाई की बेबी की वषगाठ थी। उन्होंने हम दोनों को भोजन पर आमन्त्रित किया था। मैं घर से सीधी वहाँ जाने वाली थी तथा सतीश आफिस से सीधा वहा आने वाला था। मैं तो समय पर वहाँ पहुँच गयी पर सतीश नहीं आया। काफी देर तक हम उसका इन्तजार करन बैठे रहे।

मैं झुंझला रही थी कि यदि उसे नही आना था तो आने के लिए सहमति क्यों दी थी ?

'कोई काम आ पडा होगा। नौकरी के साथ अनेक तरह की मुसीबतें होती हैं। आदमी अपने काम को ही नहीं कर पाता। मुझे तो अनुभव है।' केशू भाई उसका व्यथ बचाव कर रहे थे।

आखिर मे हम भोजन करके विदा हुए। घर आयी तो देखा कि दरवाजे पर ताला लटक रहा है। मन मे अनेक शका-कुशकाएँ जन्म लेने लगी। ताली सुमन बहन के घर थी। दरवाजे पर लटक रहा परदा हटा कर उनके कमरे मे घुसी तो देखती हूँ कि सुमन बहन और सतीश बातें करते-करते झूला झूल रहे हैं। मेरा पिछला पैर जमीन नहीं छोड रहा था। जब मैं बिजली का शॉक लेती थी उस समय भी मेरी दशा ऐसी ही हो जाती थी। मुझे देखते ही दोनो के मुँह पर हवाइयाँ उडने लगी।

मेरा रोष बेकाबू हो रहा था। मैंने जरा ऊँची आवाज मे पूछा 'कब के आये हो ?'

हाल ही आये हैं। ताली लेने आये थे, मैंने ही चाय, पीने के लिए बैठा लिया।' सुमन बीच मे बोल उठी।

'मैं तुमसे नही पूछ रही हूँ। हम दो के बीच में तुम्हारे बोलने की क्या जरूरत है ?' मैंने सुमन से कहा।

मुझे जोर से बोलते देख सतीश तुरन्त खड़ा हो गया और बोला 'ये ठीक ही कह रही हैं। तुम्हें कुछ कहना हो तो मुझसे कहो। सुमन बहन के साथ चाहे जैसे बोलना अच्छा लगता है ?'

'क्या बोलना अच्छा लगता है और क्या नहीं, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। उन्हें बुरा लगा होगा तो अब से तुम्हें अपने घर नहीं बैठायेगी।'

'बोलने में कुछ शरम लग रही है या नहीं ? सब तुम जैसी बेशरम नहीं होती। अपना मुहँ छिपाकर घर मे बैठो। ज्यादा बोलोगी तो सुनना भी पड़ेगा। मुझे छेड़ने म मजा नहीं है। मैं सब खोल कर रख दूँगी। मुझसे तुम्हारा कुछ भी छिपा नहीं है, समझीं ?'

उसका एक-एक शब्द मेरे शरीर मे छुरी की तरह पैठ रहा था। उसने चाभी मुझे पकड़ा दी। उसके दरवाजे से मेरे दरवाजे की सात फुट की दूरी सातवें पाताल जितनी लगी।

आखिर क्योंकर सतीश ने मेरा सारा कच्चा चिट्ठा इसके सामने खोला होगा। मुझे उसकी नजरो मे हलकी बनाकर उसे क्या मिलेगा ? सुमन की सहानुभूति ? सुमन की शैया ?

मैं तो एक सीढ़ी थी जिस पर पैर रखकर वह सुमन तक पहुँचना चाह रहा था—और मैं तो यूही सूनी रहने के लिए जन्मी थी।

दरवाजा खोल कर कमरे मे आयी। लगा आज सब कुछ घूम रहा है—पलंग, कुरसी, बल्ब, कोने में बैठी चिड़िया-चिरौंटा। कहाँ है पलग का सिरहाना ? कहाँ है ? मैं पलंग तक पहुँची और उस पर बिखर गयी।

सतीश मेरे पीछे-पीछे ही अदर आया था। दरवाजा बंद कर वह मेरे समीप आया, पलंग पर बैठा और मुझसे बोला 'तबियत ठीक नहीं है ?'

मैं जोरों से रो पड़ी। वह मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगा। उसके हाथ को तिरस्कार से हटाते हुए मैं बोली 'खबरदार, जो मेरे शरीर को छुआ भी तो।'

'तुम व्यर्थ ही वहम कर रही हो।'

हाँ हाँ ठीक है। मैं ही झूठी हूँ और तुम सब सच्चे हो। केशू भाई के घर आन का समय नही मिला और यहाँ उसके साथ झूला झूल रहे थे। मैं सब जान गयी हूँ।'

'तुमने जो भी जाना है—गलत है। सुमन बहन के विषय में ऐसा सोचना ठीक नही है। मुझे यह बिलकुल पसंद नहीं है।'

'तुम्हे जैसा ठीक लगे वैसा ही करने के लिए मैं बंधी हुई नहीं हूँ। मैं तुम्हारी रखैल नहीं हूँ, समझे ?'

'पर तू मेरे साथ मेरे घर पर तो रहती है न!' अब वह तू-तडाक पर उतर आया था। 'मेरे घर मे मेरी मरजी ही चलेगी—इसे अच्छी तरह समझ ले।'

'तुम्हारी ऐसी खोखली धमकी से मैं घर छोड कर चली जाने वाली नही हूँ। फिर तो तुम्हारा काम बन ही जाय! शायद यह तुम्हारी योजना है कि किसी तरह मैं चली जाऊँ तो तुम्हारे रास्ते का काटा दूर हो।'

अब वह शान्त हो गया था।

'तुम छोड कर चली जाओ इसके लिए मैं तुम्ह यहाँ नहीं लाया हूँ। तुम हो तो मेरा घर है। तुम वहम करती रहती हो और खुद ही परेशान होती हो। मैं जानता हूँ कि सुमन से मेरा घर नहीं बनेगा।'

'इसीलिए उसके साथ बैठकर झूला झूल रहे थे ?'

'मुझे झूलना अच्छा लगता है। वह मेरे पास आकर बैठ गयी तो इसमें कौन सा गजब हो गया ? चलो, छोडो इस बात को और कुछ खाना बनाओ, मुझे भूख लगी है।'

'इस समय मैं कुछ भी बनाने वाली नहीं हूँ। मैं तुम्हारी लौंडी नहीं हूँ। केशू भाई के घर भोजन करने क्यों नहीं आये ?'

'सारे दिन केशू भाई केशू भाई—इसके सिवा और कुछ सूझता ही नही ! क्यों आता मैं तुम्हारे केशू भाई के घर ? वह कौन होता है मेरा ? साफ-साफ कहूँ तो मुझे केशू भाई बिलकुल अच्छे नहीं लगते। उनका

यहाँ आते ही रहना भी मुझे अच्छा नहीं लगता। यहाँ तुमने उनका फोटो लटका रखा है यह भी मुझे पसंद नहीं है। कौन-सा ऐसा निकट का संबंध है उनके साथ, जो उनका फोटो यहाँ लटका रखा है? कोई आये और पूछे तो मैं क्या जवाब दूँगा? यह कहूँगा कि तुम्हारे मित्र हैं? और ऐसा कहने पर लोग क्या सोचेंगे? मित्र का क्या अर्थ होता है?'

'भाड़ में जाय तुम्हारे लोग। मुझे लोगों की चिंता नहीं है। मुझे केशू भाई की चिंता है। उन्होंने मुझे सुख-दुःख में साथ दिया है। मैं जहाँ भी रहूँगी, केशू भाई वहाँ रहेंगे और उनका फोटो भी रहेगा। कहो, अब तुम क्या कहना चाहते हो?'

'मैं कहे देता हूँ—मुझसे मेरे घर में अन्य लोगों के फोटो लटकाना सहा नहीं जाता और तुमने तो एक नहीं ऐसे दो-दो फोटो लटका रखे हैं—मेरी छाती पर! इन्हें गड्ढा खोद कर दफना दो तभी हम दोनों शान्ति से जी सकेंगे।'

'यह नहीं हो सकता मुझसे। शायद मैं इसके बिना जी भी नहीं सकती।'

'तो मेरे बिना जीना पड़ेगा।' मैं सोच सकती थी कि ऐसा उत्तर वह दे सकता है पर वह कुछ नहीं बोला।

वह कपड़े बदल कर रसोई में जाकर कुछ उठा पटक करने लगा था। मन कर रहा था कि जाकर उसके लिए रसोई बना दूँ पर उठने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। मैं वैसे ही पलंग पर पड़ी रही और आज नींद भी जल्दी आ गयी।

सुबह जल्दी जाग गयी तो देखा सतीश घर में नहीं है। बाहर शत-रंजी बिछा कर सो गया था।

घर के बाहर इस तरह क्यों सोया होगा? शायद सारी रात सुमन के घर सोया होगा और दिखावे के लिए इस समय यहाँ आकर सो गया होगा?

मैं उसे देख रही थी, उसके मुँह पर निरा भोलापन झलक रहा था।

सुमन की बात मन से एकदम निकाल देने की इच्छा हुई। शायद मैं काल्पनिक तरंगो मे उड गयी थी। और एक बार तरंगो मे फस जाने के बाद उसके साथ-साथ बहते ही जाना पडता है।

सतीश यदि किसी स्त्री को आकर्षित कर सका होता, उसे स्नेह के बन्धन मे बाध सका होता तो कब का किसी के साथ बध गया होता। मेरे पास आया ही क्यो होता ? तरगो में बह कर मुझे अपना यह अंतिम आधार खो नहीं देना चाहिए।

सारी जिंदगी बहता रहा मेरा स्नेह का झरना सतीश के पास आकर सूख गया है ? मैं उसके तन मन को क्यो नहीं तर कर पाती ?

झटपट चाय तैयार की और उसके पास जाकर उसके कान मे धीरे से कहा 'सतीश।'

वह चौंक उठा। उसने मुझे सामने खडे पाया। मैं हँस पडी थी। वह भी हँस पडा। मैंने उससे धीरे से कहा

'जागो मोहन प्यारे, भोर भई रे।'

दूसरी पंक्ति मन मे ही बोली। 'तकिये के नीचे मेरी चीर दबी रे।'

तुरन्त मन में विचार आया 'मेरी नहीं सुमन की चीर दबी होगी।

मरो, दबी हो तो, मुझे क्या ? कह कर विचार को धक्का दे दिया और बोली 'चाय तैयार है। हाथ मुँह धोकर पहले चाय पी लो।'

हम दोनो ने आमने-सामने बैठ कर चाय पी। जब वह स्नान करने बैठा तो मैंने ही पूछा :

'लाओ, सिर मल दूँ ?'

हाँ कहे या ना की स्थिति मे वह मुझे देख रहा था। मैंने उसका सिर मल दिया। सिर पर का फेन उसके मुँह पर भी मल दिया। फिर मल-मल कर स्नान कराया। पीठ पर हाथ फिरता है और दृश्य सामने आ आकर खडे होने लगते हैं।

लक्ष्मणराव, रीटा, किशोर, प्रियगु और अब सतीश। कितनों के देह साफ किए हैं। पर मुझे तो मैल ही मिला है। जिसका शरीर साफ किया

उसने कब अपना मन साफ रहने दिया ? मेरे नसीब में तो मैल साफ करना ही लिखा है—जो करते जाना है ।

नहा धोकर सतीश तैयार हुआ । मैंने उसका सिर पोछा और तल लगाया ।

'आज शरीर कितना हलका हो गया है । तुम रोजाना ऐसा कर दिया करो तो कितना अच्छा ।'

'तो रोज कर दिया करूँगी । मुझे भी अच्छा लगता है । लगता है अपना पुराना काम—नर्स का—कर रही हूँ ।' मैं हँस पड़ती हूँ ।

कुछ देर बाद याद आया कि सतीश का बिस्तर अभी बाहर ही है । उस उठाया तो तकिए के लिहाफ से चाँदी की एक पिन निकली । मैं तो जूड़ा बाधती नहीं हूँ, इसलिए मुझे तो पिन की जरूरत ही नहीं पड़ती । मेरे पास चाँदी की पिन है भी नहीं । सुमन जूड़ा बाधती है यह पिन उसी की होनी चाहिए ।

शतरजी और तकिए को वही छोड़ मैं सुमन के घर गयी । जाते समय यह निश्चय कर लिया था कि कुछ भी नहीं बोलूगी । लग रहा था किसी ने अन्दर दाग दिया हो । सारा शरीर जल रहा था । अपने आपको किसी तरह वश मे रखकर बोली

'सुमन, बहन यह चाँदी की पिन तुम्हारी है ?'

'हाँ कहाँ पड़ी मिली ?'

अपने आप पर पूरा काबू रख कर मैं उसके मुह की सारी रेखाओ को पढ़ लेना चाह रही थी । फिर भी जवाब देते समय व्यंग्य कूद ही पड़ा

'बाहर मिली है, वे बाहर सोये थे न, उन्ही के तकिये मे फँसी रह गयी थी ।'

उसके मुह को इस जवाब को सुन काला पड़ते देख मुझे सतोष हुआ । वहाँ से लौटते मैंने यह भी कहा 'शायद हवा से उड़ कर उनके तकिये में चिपक गयी होगी ।'

एक बनावटी और ऐंठ स्मित मुह पर ओढे उसने पिन भूले पर रख दी। मैं शतरजी और तकिया लेकर घर आ गयी।

सतीश ने मुझसे पूछा न होता तो यह बात मैं उससे कहना नही चाह रही थी। पर घर मे घुसते ही उसने पूछा 'वहाँ किसलिए गयी थी ?'

'आपके तकिये मे सुमन बहन की पिन फँस गयी थी सो उन्हे देने गयी थी। मेरी आवाज बदल गयी थी 'मैं आपसे कहे देती हूँ, हमे यह घर खाली करके दूसरी जगह चला जाना चाहिए। यहा हम सुख से नहीं रह सकेंगे। लगता है इस घर मे अच्छे मुहूत मे नहीं आये है।'

सतीश का मुँह उतर गया था। वह मेरे पास आया और मेरे कधे मे हाथ रख कर रुँधे गले से बोला

'समझ मे नहीं आता यह सब क्या हो रहा है। समझ नही पा रहा हूँ कि सुमन बहन की पिन मेरे तकिये मे कैसे आ फँसी ? हम दोनो परस्पर मे विश्वास पैदा करने का प्रयत्न करते हैं और बीच म ही कुछ ऐसा हो जाता है जो हमारे सम्बन्धो मे अवरोध पैदा कर देता है। मेरे पास इसका कोई खुलासा नही है, सिवाय कि मैं कसम खाकर कहूँ कि सुमन बहन के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे वहम है कि कही सुमन हमे लडाने के लिए तो ऐसा नही कर रही। मेरा बिस्तर बाहर पडा देख ईर्ष्यावश उसने ऐसा कुचक्र किया हो जिससे तुम्हारे मन मे शका पैदा हो।'

सतीश की बात मे सच्चाई झलक रही थी। उस पर सहज ही अविश्वास नही किया जा सकता था। दूसरी ओर यह भी लग रहा था कि कोई स्त्री इस हद तक कैसे आ सकती है। सुमन ने यदि ऐसा किया है तो क्यों किया होगा ? हमारे सम्बन्ध में विक्षेप डाल कर उसे क्या मिलेगा ? सतीश कोई ऐसा आदमी नही जिसे पाकर कोई अपने आपको भाग्यशाली माने। क्या उसे इसी में रस था कि हम एक दूसरे से अलग हो जायें ?

उसने कब अपना तन साफ रहने दिया ? मेरे नसीब में तो मैल साफ करना ही लिखा है—जो करते जाना है।

नहा धोकर सतीश तैयार हुआ। मैंने उसका सिर पोंछा और तल लगाया।

'आज शरीर कितना हलका हो गया है। तुम रोजाना ऐसा कर दिया करो तो कितना अच्छा।'

'तो रोज कर दिया करूँगी। मुझे भी अच्छा लगता है। लगता है अपना पुराना काम—नर्स का—कर रही हूँ।' मैं हँस पड़ती हूँ।

कुछ देर बाद याद आया कि सतीश का बिस्तर अभी बाहर ही है। उसे उठाया तो तकिए के लिहाफ से चाँदी की एक पिन निकली। मैं तो जूडा बाधती नही हूँ, इसलिए मुझे तो पिन की जरूरत ही नही पडती। मेरे पास चाँदी की पिन है भी नहीं। सुमन जूडा बाधती है यह पिन उसी की होनी चाहिए।

शतरंजी और तकिए को वहीं छोड मैं सुमन के घर गयी। जाते समय यह निश्चय कर लिया था कि कुछ भी नही बोलूगी। लग रहा था किसी ने अन्दर दाग दिया हो। सारा शरीर जल रहा था। अपने आपको किसी तरह वश में रखकर बोली

'सुमन, बहन यह चाँदी की पिन तुम्हारी है ?'

'हाँ कहाँ पडी मिली ?'

अपने आप पर पूरा काबू रख कर मैं उसके मुँह की सारी रेखाओं को पढ़ लेना चाह रही थी। फिर भी जवाब देते समय व्यग्य कूद ही पडा

'बाहर मिली है, वे बाहर सोये थे न, उन्हीं के तकिये मे फँसी रह गयी थी।'

उसके मुह को इस जवाब को सुन काला पडते देख मुझे संतोष हुआ। वहाँ से लौटते मैंने यह भी कहा 'शायद हवा से उड कर उनके तकिये मे चिपक गयी होगी।'

एक बनावटी और ऐंठ स्मित मुह पर ओढे उसने पिन भूले पर रख दी। मैं शतरजी और तकिया लेकर घर आ गयी।

सतीश ने मुझसे पूछा न होता तो यह बात मैं उससे कहना नहीं चाह रही थी। पर घर मे घुसते ही उसने पूछा 'वहाँ किसलिए गयी थी ?'

'आपके तकिये मे सुमन बहन की पिन फँस गयी थी सो उन्हे देने गयी थी। मेरी आवाज बदल गयी थी 'मैं आपसे कहे देती हूँ, हमे यह घर खाली करके दूसरी जगह चला जाना चाहिए। यहा हम सुख से नहीं रह सकेगे। लगता है इस घर म अच्छे मुहूत मे नहीं आये है।'

सतीश का मुँह उतर गया था। वह मेरे पास आया और मेरे कधे मे हाथ रख कर रुँधे गले से बोला

'समझ मे नहीं आता यह सब क्या हो रहा है! समझ नही पा रहा हूँ कि सुमन बहन की पिन मेरे तकिये मे कैसे आ फँसी ? हम दोनों परस्पर मे विश्वास पैदा करा का प्रयत्न करते हैं और बीच मे ही कुछ ऐसा हो जाता है जो हमारे सम्बन्धो मे अवरोध पैदा कर देता है। मेरे पास इसका कोई खुलासा नहीं है, सिवाय कि मैं कसम खाकर कहूँ कि सुमन बहन के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे वहम है कि कहीं सुमन हमें लडाने के लिए तो ऐसा नहीं कर रही। मेरा बिस्तर बाहर पडा देख ईर्ष्यावश उसने ऐसा कुचक्र किया हो जिससे तुम्हारे मन मे शका पैदा हो।'

सतीश की बात मे सच्चाई झलक रही थी। उस पर सहज ही अविश्वास नहीं किया जा सकता था। दूसरी ओर यह भी लग रहा था कि कोई स्त्री इस हद तक कैसे आ सकती है! सुमन ने यदि ऐसा किया है तो क्यों किया होगा ? हमारे सम्बन्ध मे विक्षेप डाल कर उसे क्या मिलेगा ? सतीश कोई ऐसा आदमी नहीं जिसे पाकर कोई अपन आपको भाग्यशाली माने। क्या उसे इसी मे रस था कि हम एक दूसरे से अलग हो जायें ?

'कुछ भी हो, हमे मकान बदल ही देना है ।' मैंने अपना निश्चय सुना दिया ।

'मैं स्वीकार करता हूँ पर इस तरह इतनी जल्दी मकान बदलना इतना सरल नही है । मकान मिलते ही कहाँ हैं ? और हर जगह तो हम जा भी नही सकते । जहाँ मैं पहले रह चुका हूँ वहाँ तुम्हे लेकर रहना सम्भव नहीं है ।'

'इसका मतलब यह कि सारे ससार म हमारे लिए रहने लायक जगह सिर्फ यही है ? बहाने क्यो करते हो ? साफ-साफ कह दो न कि सुमन को छोड कर जाने की इच्छा नहीं है।'

मुझे लगा मैं अपने आप पर काबू खो रही हूँ । तुरन्त रसोई घर मे चली गयी । थोडा पानी पिया और गोली खायी ।

'मैं घर ढूढूँगा पर तब तक तो यहाँ रहना ही पडेगा ।'

उसने मुझे शात करते हुए आजिजी भरे लहजे मे कहा । मैं आँखो से ही उसकी बात मानते हुए रसोई बनाने में लग गयी ।

उस रात मैं सो न सकी । सतीश ने गर्मी के कारण दरवाजा खुला रखा था । सोने का नाटक किए मैं बिस्तर पर जागती ही पडी रही समय किसी भी तरह बीत नही रहा था ।

आधी रात गये दरवाजे के पास किसी की आहट लगी । क्या होता है—इसकी प्रतीक्षा में चुपचाप पडी रही ।

मुझे लगा किसी ने सतीश के ऊपर फूल बरसाये हैं । वह सतीश को जगाना चाहता है पर सतीश तो भर निद्रा में सोया पडा है । झटपट मैं बैठ गयी । बत्ती जलाकर दरवाजे के पास जा आयी । कहीं कोई नही था । सुमन के दरवाजे बद थे । सतीश के पलंग पर देखा पर वहाँ कुछ भी नही दीखा ।

क्या मेरे मन का वहम ही था ? समझ मे नही आ रहा था कि क्या हो रहा है ? प्रकाश ने सतीश को जगा दिया था । मुझे इधर-उधर करते देख उसने पूछा 'क्या है ?'

'कुछ नहीं, नींद नहीं आ रही ।'

'मन की तरंगों को सुला दो तो नींद आये।' उसने कहा, और हाथ के इशारे से मुझे अपने पास बुलाकर पलंग पर लिटा दिया।

'यहाँ सो जाओ तुम। मैं बैठा हूँ। तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ। बहुत पहले कांपिल्य नाम की एक नगरी थी। वहाँ ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा राज्य करता था।'

'क्या कहा ? फिर से कहो। मुझे कहानी याद कर लेनी है।' मुझे कहानी में मजा आ रहा था।

'कांपिल्य नाम की नगरी और ब्रह्मदत्त नाम का राजा।'

फिर उसने कहना शुरू किया।

'राज्य में हर तरह की सुख शांति थी पर एक ब्रह्मराक्षस ऐसा परच गया था कि लड़कों को उठा कर ले जाता था। जिसके घर से लड़के को उठा जाना होता उसके घर एक दिन पहले राख की ढेरी लग जाती। लोग फिर सारी रात जागते पर आधी रात गये ठंडी हवा चलती और ब्रह्म-राक्षस अपनी माया से सबको सुला देता। फिर बालक को उठाकर ले जाता। दूसरे दिन आंगन में बच्चे की हड्डियाँ पड़ी मिलतीं।

नगर-जनों ने मिलकर राजा के सम्मुख शिकायत की। राजा ने सभा बुलायी। बीड़ा उठाने को कहा। किसी ने बीड़ा नहीं उठाया। अंतःपुर में बैठी राजकुमारी ने यह देखा। वह सोलह वर्ष की कन्या थी पर तलवार बाँधकर निकलती थी। हाथ में धनुष, कंधे पर तीर लटके रहते थे। उसने बीड़ा उठा लिया। राजसभा में हाहाकार मच गया। वीर पुरुषों के मुँह उतर गये। रानी कल्पांत करने लगी। राजा परेशानी में पड़ गया। इस कुमारी का नाम था बकुलावलि। वह बोली 'आठ दिन के अन्दर मैं इस ब्रह्मराक्षस को अपने राज्य से भगा दूँगी। अन्यथा जल समाधि ले लूँगी।'

मैंने हँस कर कहा 'मैं राजा होती तो फरमान निकालती कि आज से सारे पुरुष चूड़ी पहनेंगे। सोलह वर्ष की लड़की ने जो बीड़ा उठाया

था वह कोई पुरुष नही उठा सका ।'

'कहानी सुननी है या चर्चा करनी है ? आगे तो बड़े रस की बात है ।'

उसका उत्साह टूट न जाय इसलिए मैंने हाँ कहा ।

'उस रात बकुलावलि नगर के समीप अंबिका वन के अंबिका मंदिर मे गयी । अखड दीप जलाकर देवी की आराधना शुरू कर दी। भूखे-प्यासे उसे चार दिन हो गये ।'

'पानी पिये बिना आदमी इतने दिन जिन्दा नहीं रह सकता ।' मैं बोल पड़ी ।

'यह तो पहले के समय की बात है । उनमें हमसे ज्यादा शक्ति थी ।'

'मैं मन ही मन हंस रही थी । उसने आगे कहा

'पाँचवें दिन देवी प्रसन्न हुइ । और बकुलावलि को रक्षा कवच दिया ।' ''इसे पहनेगी तो तेरा कोई कुछ बिगाड़ नही पायेगा ।'' देवी ने उसकी आँखो में दिव्य अजन लगा दिया जिससे उसे सब कुछ दीखे और एक खड़ाऊँ दी जिस पर पैर रख कर वह जहा भी चाहे उड कर चली जाय ।'

'बस, बस, अब बात समझ मे आ गयी । इतना अधिक देवी ने दिया हो तो ब्रह्मराक्षस को मारना कितना सरल था । ब्रह्मराक्षस से बगैर वरदान के लड़ी होती और विजय प्राप्त की होती तो जानती ।'

'ब्रह्मराक्षस से क्या खाली हाथ लड़ा जा सकता है ?'

'तब इसमे उसकी क्या बहादुरी ?

मन तो कहता है कि हरएक को खाली हाथ, रक्षा कवच के बगैर ही लड़ना पड़ता है । देवी प्रसन्न होकर किसी को वरदान नहीं देतीं ।

'यह कहानी अच्छी नहीं लगी ? चलो, दूसरी देवरानी-जिठानी की कहानी कहूँ । बहुत मजा आयेगा ।' सतीश ने पूछा ।

लग रहा था मैं हँस पड़ूगी । पलग से उठकर खड़ी होते हुए कहा 'मुझे नींद आ रही है, चलो सो जाँय ।' और अपने बिस्तर पर जा कर सो गयी ।

● ●

बाईस

कुछ दिनो बाद एक रात सतीश काफी देर से घर आया। कुछ दिनो से वह बदला हुआ दीख रहा था। मैं उसे समझ नही पा रही थी। उसकी बोल-चाल, व्यवहार सब कुछ अब पहले जैसा नहीं था।

काफी देर तक मैंने उसका इन्तजार किया। पास के लैम्प का प्रकाश सामने के बगले के बादाम के वृक्ष पर पड रहा था और हवा के हलके थपेडे से ही वह झूम पडता था। मुझे काफी भूख लगी थी पर मैं उसकी प्रतीक्षा करती रही। थोडी झुंझलाहट भी थी।

वह जब घर आया, मैं खिडकी मे खडी थी। मुझसे, उसके आते ही, पूछे बिना न रहा गया 'इतनी देर क्यो हुई ?'

उसने कहा 'आफिस के मित्रों के साथ गप-शप मे देर हो गयी।'

मुझे लग रहा था आज उसने नशा किया है। वह इधर-उधर की बाते बके जा रहा था, बोलता ही जा रहा था—अश्लीलता से भरा हुआ, वह उसके स्वभाव मे नहीं था।

भोजन से हम निवृत्त हुए तो वह उठा और बाहर का द्वार बद कर आया। इसके बाद उसने अपनी बेग में से एक पुस्तक निकाली और मुझे दिखायी। पुस्तक अश्लील थी। अंदर अनेक गंदे कुरुचिपूर्ण चित्र थे। पुस्तक देखते ही मेरा मन खिन्न हो गया।

मैं जरा जोर से बोली 'ऐसी गदी किताब कहाँ से उठा लाते हो ? मैं नहीं जानती थी कि इतनी उम्र में भी तुम्हारे मन में ऐसे विकार पड़े हैं।'

'इसमें क्या हुआ ? सब ऐसी पुस्तकें पढ़ते देखते हैं। पति-पत्नी के बीच इस विषय मे शर्म किस बात की ?' वह कुछ बेशरमी से बोल

रहा था।

मुझे लगता है सतीश ने अपने आफिस के किसी साथी से सारी बातें कही होंगी और उसी ने यह सब करने के लिए इनसे कहा होगा। शायद सतीश को बेवकूफ बनाने के लिए भी उसने ऐसा किया हो।

इतने में ही उसने मुझे अपनी बाहों मे लपेट लिया और बोला 'मेरी जान, अब तो मेरी हो जा। मैं तुम्हें दिलोजान से मोहब्बत करता हूँ।'

यह बाजारू भाषा में बोलने लगा था। एक ओर मुझे उसके नाटक पर हँसी आ रही थी, दूसरी ओर उस पर दया।

मैंने उसके हाथ को हटा दिया और उससे दूर जा बैठी। मैंने कहा 'यह क्या पागलपन है। इस उम्र में यह सब अच्छा नहीं। थोडा लजाओ।

मैंने उसे पलग पर सुला दिया। बत्ती बद कर मैं भी जा सोयी।

मेरे सामने लक्ष्मणराव और सतीश एकाकार हो रहे थे। उसके आज के व्यवहार से मैं बहुत दु खी हुई थी। इसकी यदि ऐसी ही दशा रही तो क्या होगा ? मैं इसी चिंता मे डूबने-उतराने लगी।

मुझे स्पष्ट लग रहा था कि सतीश मुझे पाने के लिए अब हर कोशिश करने पर उतारू था। उसे मेरा नारी देह चाहिए था।

मन मे इस बात की चिन्ता भी थी कि यदि मैंने उसकी इच्छा पूर्ति नही की तो रहा-सहा यह आधार खो जायेगा।

पर मैं इसको स्वीकार भी नही कर सकती थी। केवल सतीश को लेकर ही ऐसा नहीं था, अब मैं किसी भी पुरुष के आगे आत्म समर्पण नही कर सकती थी। किशोर के आगे भी अब नही। इस प्रकार आधार पाकर रहने से तो मृत्यु भली।

मन विचारो मे डूबा है। बिस्तर पर पडी हूँ, नींद नहीं आ रही है। आँखें बद थी पर मन गुथा जा रहा था।

पलग के हिलने-डुलने की आवाज आयी तो आँखें खोलीं। सतीश उठकर बैठ गया था। वह मेरे पास आकर बैठ गया। और मेरे शरीर पर

तरह नहीं ।'

सतीश बिलकुल शान्त था । वह करवट बदल कर सोने का ढोंग कर रहा था । मुझे लगा अब वह ठंडा पड़ गया है । वह सचमुच डर गया था कि मैं उसका गला दबा दूँगी और मार डालूगी ।

सारी रात वह सोया नही था । मुझे भी कैसे नीद आती ? कुछ देर बाद वह धीरे से बोला 'मेरी भूल हो गयी है । माफ करो मुझे । लोगों ने मुझे ऐसा करने के लिए उकसा दिया था ।'

मेरा खून तप गया था । नसें तर्रा रही थी । आँखें बद करना चाहती थी पर नही कर पा रही थी । अब क्या करूँ ? यहां रहा जा सकेगा ? यह आदमी इस तरह रहने देगा ? और रखेगा भी तो कब तक ?

आँखों मे अँधेरा छा रहा था । गला रुँध गया था ।

सुबह उठी उस समय साढे आठ बज चुके थे । शायद तड़के नींद आ गयी थी ।

सबसे पहले नजर पलग पर गयी । सतीश नही था वहाँ । खड़ी हुई, रसोई घर में देखा पर वहाँ भी वह नही था । उसके कपड़े और चप्पल भी नही दीखे । लगा वह बाहर चला गया है ।

नौ बजे तक उसकी बाट देखी पर वह नहीं आया । नहाये-धोये, भोजन किए बिना वह कहाँ चला गया होगा ?

कान मे मानो कोई कह रहा था 'सतीश नही लौटेगा तो क्या होगा ? मेरे पैर उठ नहीं रहे थे ।'

बेमन से उठी और काम में लग गयी । चाय बना कर पी । पर भोजन बनाने की इच्छा नही हुई ।

सुमन आयी 'क्या कर रही हो रमा बहन ?'

'बैठी हूँ ।' मैंने कहा । चाहा, मुह की उदासी वह पढ न पाये तो अच्छा ।

'आज तो वे जल्दी चले गये हैं ।' वह बोली ।

'एक काम से बाहर जाना था ।'

'इसीलिए तुम उदास बैठी हो ?'

'नहीं नही, यो ही बैठी हूँ।'

पर इतने से ही उसने बात छोडी नहीं। कुछ रहकर उसने फिर पूछा 'रात देर तक बातें हो रही थीं।'

'बाहर जानवाले थे न, इसीलिए।'

'रुकेंगे यहां ? सामान तो खास साथ था नही ?'

'इसे क्यो इतनी पडी है ?' मन मे गुस्सा आ रहा था। फिर भी जवाब दना पडा

'निश्चित नहीं है, रुकना भी पड जाय।'

'तुमने तो आज रसोई भी नही की !'

'खाने की इच्छा ही नही है आज।'

ऐसे कैसे चलेगा ? काम हो तो बाहर जाना पडता है। इसमे भोजन न करें तो कैसे चलेगा। मेरे घर भोजन कर लेना।'

'सच, भोजन करने की इच्छा नही है। नहीं तो मैं बना लेती ?'

मैं उसके साथ लडी थी, बोलती भी नही थी फिर भी वह मेरे घर आती। भगवान् ने ऐसे बेशरम आदमी क्यो बनाये होंगे ?

सुमन चली गयी। मैंने दरवाजा बद कर लिया और पलग पर जा लेटी।

मैं किसी कगार के किनारे खडी थी। सामने गहरी खाडी थी और पीछे अटपटी पगडडिया—जिन्होने मुझे यहा पहुँचाया है। अब मैं कही नहीं जा सकती।

उस रात सुमन खाना दे गयी 'मुझे मालूम है तुमने सुबह से कुछ नही खाया है।'

मन मे एक दुष्ट विचार कौंधा—कही सतीश ने मिलकर खाने मे जहर न मिला दिया हो ! कुछ टोना टुटका कर दिया हो !

जो होना हो, हो। मर जाऊँ तो छुट्टी मिले।' सारे विचारो को धकेल मैंने खाना खा लिया।

सिर भारी है। रो भी नही पाती। मन करता है दीवार से सिर टकरा दूँ, कुछ तोड-फोड डालूँ। मैं चीख पडती हूँ।

सुमन और आसपास के लोग इकट्ठे हो जाते हैं और मुझे पलंग पर लिटा देते हैं।

'क्या हुआ रमा बहन ?' सब पूछते हैं।

मैं उन्हें ताकती रहती हूँ। कुछ भी बोल नहीं पाती। पखा छत से गिर रहा हो, सुमन मुझे काटने को दौड रही हो—ऐसा लगता है।

दो दिन पलंग पर पडी रही। सुमन भोजन दे जाती थी। केशू भाई आते रहते हैं पर पिछले कुछ दिनों से नही आये।

तीसरे दिन उठकर काम-काज मे लग जाती हूँ।

एकाएक विचार आया। सतीश के आफिस जाकर पता लगाना चाहिए। पता मेरे पास था ही।

ग्यारह बजे तैयार होकर निकलती हूँ। मन मे भय है कि कही रास्ते में चक्कर खाकर गिर पडी तो पर, पक्का विचार करके आगे बढ़ती हूँ।

ऑफिस मे दो-चार लोगो से पूछा। पता लगा कि तीन दिन से सतीश ऑफिस नही आया है।

'तो कहाँ गया होगा वह ?'

आफिस के बाबू मुझे घेर लेते हैं। मैनेजर मुझे अपनी केबिन मे बुलाते हैं।

'सतीश से तुम्हें क्या काम है ? कुछ कहना हो तो मुझसे कह दें। वे आयेंगे तो उन्हें समाचार दे दूँगा।

उनसे कहें—तीन दिन से घर नही गये हो—घर मे चिंता हो रही है।'

'आप उनकी पत्नी हैं ?' मैनेजर ने पूछा।

'नही, पर मैं उनके साथ रहती हूँ। मुझे छोड वे चले गये हैं।'

'आप उनकी पत्नी नहीं है और साथ रहती हैं ?'

'हाँ, ऐसा ही है, पर अब मुझे अकेला छोड दिया है। अब मैं कहाँ

जाऊँ ? मेरा खर्च कैसे चलेगा ? मकान का किराया दूध के पैसे और भी सारे खर्च हैं। मेरे पास तो एक पाई भी नहीं है। इस तरह कोई किसी को छोड़ कर जाता होगा ?'

मैनेजर मेरी बातें अरुचि से सुन रहा था और उसी तरह उसने जवाब दिया 'ये सारी तुम्हारी व्यक्तिगत बातें हैं। तुम्हें इस तरह यहाँ नहीं आना चाहिए। फिर भी ये बीस रुपये लेती जाओ—खर्च के लिए जरूरत पड़ेगी। सतीश आयेगा तब उससे बात करूँगा।'

उसने बीस रुपये दिए। मैंने ले लिए। सतीश के रुपये मैं क्यों न लेती ?

सतीश के आफिस से सीधी केशूभाई के घर गयी।

उनसे सारी बातें कहीं तो वे मुझी से लड़ने लगे।

'तुम्हें उसके ऑफिस मे नहीं जाना चाहिए था। उसकी कितनी बदनामी होगी। यह तुमने बहुत बुरा किया।'

'मेरे उसके ऑफिस जाने से बदनामी होगी ? मैं उसकी बदनामी का कारण हूँ ?'

'मैं सतीश से मिल लूंगा। तुम यहीं रहो अब।'

'नहीं, वे आयेंगे भी तो लौट जायेंगे। मैं सुमन को ही ताली दे आयी हूँ।'

ठीक, तो जाओ। मैं उसका पता लगाऊँगा। तुम चिंता न करो। वह यदि नहीं आता है तो तुम मेरे घर आ जाना।'

'नहीं अब मैं तुम्हारे घर नहीं आऊँगी। सतीश जरूर आयेगा। वह दगाखोर आदमी नहीं है।'

'हाँ, हाँ सतीश दगाखोर नहीं है। चलो मैं तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ।'

'मैं अकेली ही जाऊँगी। मुझे क्या डर है ? सतीश आ जायगा। शाम तक तो आ ही जायेगा।'

केशूभाई लक्ष्मी बहन को बुलाते हैं। वे मेरा हाथ पकड़ लेती हैं केशू

भाई मुझे घर तक पहुँचाने आते हैं।

घर पहुँचते ही मैं सुमन से पूछती हूँ

'वे आये तो नहीं थे ?'

सुमन के कान में केशुभाई कुछ कहते हैं। मुझे लगा उन्होंने मेरा ध्यान रखने के लिए ही कहा होगा।

भले आदमी, मेरा क्या ध्यान रखना है !

● ●

अपनी आबरू बढ़ जाय ।

'रमा भी खूब है। अभी से लड़के उस पर मरने लगे हैं ।'

मीठी सुपारी खाने के लिए तो सभी लड़कियां 'मुझे दे न रमा, तू तो मेरी खास सखी है न !' कहतीं ।

इन्स्ट्रूमेन्ट बॉक्स से सुपारी निकाल कर सबको बाँटू। मेरी बराबरी कौन कर सकता है ?

'माँ, स्कूल मे सब कहते हैं कि रमा की बराबरी कोई नहीं कर सकता।'

'ऐसा कहने से क्या होता है ? तेरी विधवा माँ को कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं ? पढ़ने मे तो आगे तू है नहीं । इस उम्र में तू यह सब करती है यह ठीक नही।'

'तुझे क्या मालूम माँ, स्कूल में मेरी कितनी शान है !'

हास्पिटल में भी रुतबा तो केवल रमा का ही । डाक्टर रमा को फूल भेंट करें । और सारी नर्सें देखती ही रहें । डॉक्टर कहें 'तुम्हे गुलाब के फूल बहुत पसद हैं न ?'

गुलाब की आदत लक्ष्मणराव ने डाल दी थी। तकिया के नीचे गुलाब रख कर सोना कितना अच्छा लगता है ! चारों ओर सुगध ही सुगध । सिर महकने लगे ।

'गुलाब के गुच्छे सिर मे खोंसना और ऐसे नखरे करना रांडों जैसा लगता है। अब भी तू सीधे ढग से नहीं रहेगी तो स्कूल भेजना बद कर दूँगी ।'

'पुराने जमाने में राजकुमारियाँ गुलाब की शैय्या मे सोती थी।'

'करम तो फूटे हुए हैं और बनना है राजकुमारी !'

जरूर बिल्ली रसोई घर में घुस गयी है और कुछ गिरा रहा है। मैं उठ कर बत्ती जला कर देखती हूँ। कहीं कुछ नहीं दीखता।

बिल्ली नहीं होगी, शायद सतीश होगा। पर दरवाजा तो बंद है ! वह आयेगा कहाँ से ?

खिडकी की छडो के बीच से आ जाय और ताक पर छिपकर बैठ जाय। मेरी गैरहाजिरी मे रमा क्या करती है यह जानने के लिए।

सतीश मेरा तीसरा पति ! ताक पर छिपकर बैठा हो। वह होता तो बिल्ला होता। वह मेरा होठ चाटता। 'मेरे होठ कितने मीठे हैं ?'

मैं कहती 'चाय पी थी इसी कारण।'

'सतीश, तू एक दिन भी मेरे लिए गुलाब नही लाया !'

सतीश मेरा तीसरा पति !

नहीं-नही, सतीश, मैं किशोर की परिणीता हूँ। किशोर मेरा दूसरा पति है। किशोर ही मेरा असली पति है।

और यह लक्ष्मणराव ?

कौन, लखिया ? वह तो मुझे पूना से उठा लाया था। कुछ दिन पूना मे ही रख कर इन्दौर ले आया था।

देखना न, उसके रोम-रोम में कीडे पडेंगे। पर मेरी रीटा को कुछ नही होगा। इसमे उसका क्या दोष ? इच्छा होती है कोई मुह पर जोर-जोर से थप्पड मारे। केशू भाई मारें तो कितना अच्छा ?

नही, केशू भाई नहीं मारेंगे। मुझे तो लखिया ही मारेगा। वह तो चाकू भी दिखा सकता है। पान में जहर खिला दे—वह तो लखिया है—लक्ष्मणराव।

बिल्ला बन कर वह यहाँ छिप गया होगा तो रात मे होठ नही चाटेगा—काटेगा।

'छि छि, चल निकल यहाँ से। सफेद बिल्ली सी बहू है किशोर की। भूरी आँखों वाली बिल्ली ! उसमें लुभाने जैसा क्या था ? क्या देख कर शादी की होगी ? मेरे साथ शादी की और फिर भूल गया। अपनी बेटी की माँ को भूल गया और किसी दूसरी के साथ शादी कर ली। चल, निकल यहाँ से।'

नीद क्यों नही आती ? ट्राक्वीलाइजर की गोलियाँ ले लेती हूँ। मैं गोली निगलती हूँ, उसी तरह कोई दिन निगल जाता है।

सतीश को लेकर केशू भाई आये हैं। केशू भाई काफी झुँझलाये हुए हैं।

केशू भाई, रहने दो इन बातों को सब समाप्त हो गया है। आखिर करके किसी के साथ रहा जा सकता है? मैं आश्रम मे चली जाऊँगी। आप कहें तो इन्दौर चली जाऊँ। किसी मन्दिर मे चली जाऊँ। आदमी को जीने के लिए क्या चाहिए? एक तिनका जितना आधार या और कुछ? वह तो मिल ही जायगा, नही तो जो होना होगा हो लेगा।

'तुमने मेर ऑफिस में आकर मेरी बदनामी करायी है।'

'भले आदमी, मैं तुम्हारे ऑफिस मे गयी इसमे तुम्हारी क्या बदनामी हो गयी? तुम्हारे साथ तुम्हारे घर मे रहती हूँ इससे तो तुम्हारी बदनामी हुई नही और ऑफिस में गयी तो तुम्हारी बदनामी हो गयी। जाओ, मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। ईश्वर ने ही मुझे लूटा है, फिर तुम मेरी क्या रक्षा करोगे? यह एक और तमाशा होना था सो हो गया। यहाँ तुम्हारा जो कुछ भी हो लेकर मेरी नजर के सामने से दूर हो जाओ। मुझे अपना मुँह न दिखाना। सिर पर भूत सवार हो जाये और मैं कुछ कर बैठू। मेरा मन ठिकाने नही है।'

सतीश केशू भाई से झगडता है। मुझे रुलाई आती है इच्छा होती है चीख पड़ू। केशू भाई सतीश को बुरी तरह फटकारते हैं। सतीश अपना सामान लॉरी मे लाद कर चला जाता है। किराये की जवाबदारी केशू भाई उठाते हैं।

मैं केशू भाई के साथ नही जाऊँगी। यह मेरा घर है। यहाँ से मैं कही भी नहीं जाऊँगी। हर स्त्री का अपना घर हो तो मेरा क्या न हो? मैं एक पूर्ण स्त्री हूँ।'

मैं एक पूर्ण स्त्री हूँ।

पर ये लोग मुझे कहाँ ले जा रहे हैं? आँगन में गाडी खड़ी है, सफेद गाडी।

'मुझे कहाँ ले जा रहे हो?'

'हम सतीश के पास जा रहे हैं।' केशू भाई कहते हैं।

'मुझे सतीश के पास नहीं जाना है। वह मेरा कौन है जो मैं उसके पास जाऊँ ? मैं किशोर के पास जाना चाहती हूँ। नहीं, नहीं, सतीश मेरा तीसरा पति है। मैं क्यों न जाऊँ उसके घर। लाओ कपाल पर बिन्दी लगा लूँ।'

'बिन्दी तो लगी हुई ही है।'

'नहीं, यह बिन्दी तो लक्ष्मणराव की है। लो, इसे पोछ देती हूँ। नहीं, बहन, नहीं। लक्ष्मण तो केन्डी खिलाता था। पान खिलाता था। साइकिल के पीछे बैठाता था। सीटी बजा कर बुलाता था। उसी से मैंने सीटी बजाना सीखा था। पूना में नहीं, इन्दौर में। भाग कर हम इन्दौर आ गये थे न ! देखो, मैं सीटी बजा रही हूँ। मुझे बजाना आता है। उसकी तरह आँख मारना नहीं आता। औरतों को भला यह कहां से आये ? यह तो गंदी बात है। मुझे बहुत घृणा होती है। नहीं बहन, मैं ऐसा कभी न करूँ।'

मोटर स्टार्ट होती है। सब घेरे हुए देख रहे हैं। केशू भाई मेरे सामने बैठे हैं। वह कह रहे हैं 'ठीक से पकड़ कर बैठना।'

'ठीक से ही बैठी हूँ।'

केशू भाई कहते हैं 'पर पकड़ कर बैठो। आगे लम्बी ढलान आती है।'

●●

उपसहार

एम्बुलेन्स में बैठा कर रमा को मेन्टस हॉस्पिटल मे भर्ती कर दिया गया।

हास्पिटल में वह अभी भी कहती है 'मरा किशोर ज्यॉर्जटाउन अमेरिका से आन वाला है। मरी रीटा और प्रियंगु की शादी है।'

हॉस्पिटल मे डॉक्टर केशू भाई से रीटा आदि के बारे में पूछते हैं

'कहाँ हैं य सब ? इनसे कौन होते है ?'

'कहाँ है इसकी मुझे कोई खबर नहीं हैं।

'सम्बन्धिया से मिल पाती तो तबियत थोडी सुधरती।'

किशोर का एक वर्ष पुराना पता मिला है। उसे पत्र लिख रहा हूँ। इसके अलावा समाचार पत्रों में सूचना देना चाहता हूँ।'

'ठीक है।' डॉक्टर ने कहा।

केशू भाई ने घर जाकर नोटिस का मसौदा तैयार किया

एक खास सूचना

'रमा बहन नाम की एक स्त्री, जिसकी उम्र हाल चालीस के आस-पास है, मूल पूना की रहने वाली है जो लक्ष्मणराव नाम के किसी व्यक्ति के साथ भाग गयी थी—लगभग बीस वर्ष पूर्व। उनकी रीटा और प्रियंगु नाम की दो कन्याएँ थी। उनकी मानसिक स्थिति ठीक न होने से पागलों के अस्पताल मे भर्ती किया गया है। उनके परिचित रिश्तेदार निम्न पते पर मिलें।'

केशू भाई ने अपना पता लिखा था।

मसौदा केशू भाई ने विज्ञापन संस्था को बताया पर उसका भाव सुन कर—'विचार करके कहूँगा' कह कर लौट आये।

दूसरे दिन उन्होंने विज्ञापन दे दिया। तब से वे रोज रमा बहन के सगे-सम्बन्धियों की बाट देख रहे हैं।

मानो, किशोर, रीटा प्रियंगु आते हैं और रमा बहन उन्हे पहचान लेती हैं। किशोर ने एक हाथ से रमा को तथा दूसरे से प्रियंगु को पकड रखा है। रमा अपना एक हाथ रीटा के कंधे पर रखे हुए है।

सूर्य के प्रचंड ताप में सारा दृश्य विलीन हो जाता है। ● ●

डॉ० पिनाकिन दवे

जन्म : १० जून, १९३२

जन्म स्थान रूपाल, जिला गाँधीनगर (उत्तर गुजरात)

शिक्षा एम० ए०, एल-एल० बी० (गुजरात विश्वविद्यालय) तथा 'सिद्धसेन दिवाकर' पर पी एच० डी० की उपाधि (बाम्बे विश्वविद्यालय)

सम्प्रति : विवेकानन्द कालेज, अहमदाबाद मे अध्यापन कार्य

प्रकाशित कृतियाँ : उपन्यास

विश्वजित (गुजरात राज्य द्वारा पुरस्कृत)

अनुबंध (गुजरात राज्य द्वारा पुरस्कृत)

विवर्त (हिन्दी में 'सूखे छिलके')

छाया

आधार

ऊर्ध्वबाहु

अनिकेत

तृप्ति (कहानी संग्रह—गुजरात राज्य द्वारा पुरस्कृत)

•